



# दोपहर का सूरज

राजन स्वामी

# दोपहर का सूरज

लेखक

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

[www.spjin.org](http://www.spjin.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित

© २००७, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१८

## अनुभूमिका

मेरे राज रसिक! मेरे श्याम श्यामा! कब आओगे,  
कब आओगे? मेरे प्राण वल्लभ! मेरे प्राण प्रीतम! कब  
आओगे, कब आओगे?

मुगलकालीन भारत अपने धार्मिक और सांस्कृतिक  
अस्तित्व के लिए छटपटा रहा था। मूलतः भारतीय  
संस्कृति तो वैदिक थी, लेकिन समय-समय पर होने  
वाली विकृतियों ने उसे जर्जरित कर दिया था।

महाभारत काल के पश्चात् सच्चे विद्वानों एवं ज्ञानियों  
के अभाव ने वाममार्गियों को पूरी तरह से फलने-फूलने  
का अवसर दे दिया। बुद्ध से पूर्व तो धार्मिक क्षेत्र में इन्हीं  
का साम्राज्य था। यजुर्वेद के पहले अध्याय के पहले मन्त्र  
में लिखा है – "यजमान! पशुन पाहि।" अर्थात् हे

यजमान! तू पशुओं की रक्षा कर। लेकिन मद्य-माँस के सेवन से मुक्ति पाने का उद्धोष करने वाले वाममार्गी भला उल्टी राह चले बिना कैसे रह सकते थे? उन्होंने गोमेध, अश्वमेध, और नरमेध आदि यज्ञों में गायों, घोड़ों, और मनुष्यों की बलि देकर उनके माँस की आहुति देने का प्रचलन कर दिया। यह कार्य पूर्णतया वेद-विरुद्ध था, लेकिन वेद के ज्ञान से अनभिज्ञ हो चुके जनमानस में उन्होंने अपने अन्याय व पाप का डंका बजा ही दिया।

गौतम बुद्ध व महावीर स्वामी ने इन हिंसात्मक यज्ञों का विरोध किया और वेदों का वह आध्यात्मिक ज्ञान, जो उपनिषदों में मुखरित हुआ है, प्रचारित किया। किन्तु इसमें भी भूल यह हुई कि आस्तिकता का लोप हो गया, तथा बुद्ध व तीर्थंकरों का व्यक्तित्व सर्वोपरि हो गया।

सर्वत्र नास्तिकतावाद छा जाने पर कुमारिल भट्ट

तथा आदि शंकराचार्य ने अपने ज्ञान-बल से नास्तिकता के किले को ढहा तो दिया, लेकिन अल्पायु में शंकराचार्य जी के देह-त्याग हो जाने के कारण वेदों का ज्ञान उस समय भी शुद्ध रूप में नहीं फैल सका था। "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" के उद्घोष ने देश में अकर्मण्यता और आलस्य का बीज बो दिया, जिसके परिणामस्वरूप पौराणिकवाद का प्रचलन हुआ। इन पौराणिकों ने देववाद तथा अवतारवाद का पोषण किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि देश में सैंकड़ों सम्प्रदाय खड़े हो गये। एक अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म की भक्ति प्रायः लुप्त हो गयी। अनेक देवी-देवताओं की पूजा ने धार्मिक समाज में द्वेष तथा विघटन को जन्म दिया। अब ज्ञान-ध्यान की कोई भी उपयोगिता नहीं रह गयी। केवल बड़े-बड़े मन्दिर और मठ बन गये, जिनमें धर्म के नाम पर होने वाले

कर्मकाण्डों ने भारतीय जनमानस को ज्ञान से रहित कर दिया। पण्डों, पुजारियों, और महन्तों के इस वर्चस्ववादी युग में प्राचीन ऋषियों के ज्ञान-भक्ति वाले युग की मात्र कल्पना थी। देव प्रतिमाओं को खुश करने के लिये देवदासियों का नृत्य होता था। सम्पूर्ण भारत में देवदासी प्रथा थी। सोमनाथ का वह विश्व प्रसिद्ध मन्दिर, जिसमें देवदासियों और पण्डे-पुजारियों का वर्चस्व था, महमूद गजनवी के द्वारा तोड़ा गया, और इस कार्य में सहयोगी बना था मुख्य पुजारी का वह लड़का, जो वहाँ की सबसे सुन्दर देवदासी पर आसक्त था।

इस पौराणिक युग में भारतवर्ष अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप को खो चुका था। वह अध्यात्म शक्ति से रहित हो चुका था। इसी समय अरब में इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके अनुयायियों ने सारे विश्व



में इस्लाम धर्म का परचम फहराने की प्रतिज्ञा की। मुहम्मद बिन कासिम से ७१२ ई० में जो इस्लामी आक्रमण प्रारम्भ हुआ, वह हजार वर्षों तक चलता रहा। महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर लंग, व बाबर के आक्रमणों को झेलने की शक्ति अब नहीं रह गयी थी। भारतीय समाज अथर्ववेद के इस कथन—

*अयम् में हस्तो भगवान् अयम् में भगवत् तरः।*

*अयम् में हस्तो विश्व भेषजो अयम् शिवाभिर्मर्षनः॥*

तथा गीता के इस उद्धोष—

*हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।*

*तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय नैव पापम् अवाप्स्यसि॥*

को पूर्णतया भूल चुका था। इस्लाम के एकेश्वरवाद के सम्मुख पौराणिकों का बहुदेववाद नहीं ठहर पाया। कोढ़

में खाज की तरह दिन पर दिन स्थिति और बिगड़ती ही गयी। विनाश की पराकाष्ठा तो उस समय और बढ़ गयी.....।

जब औरंगज़ेब ने अकबर, जहांगीर, और शाहजहां की राह छोड़कर कट्टरता की सीमा पार कर दी और सम्पूर्ण भारत के जबरन इस्लामीकरण की प्रतिज्ञा कर ली। अब भारतीय जनता में "त्राहिमाम्-त्राहिमाम्" करने के सिवाय कोई भी चारा नहीं था।

ऐसे समय में प्रकटन हुआ श्री प्राणनाथ जी का, जिनके तन का नाम था "मिहिरराज"। परब्रह्म के साक्षात्कार के पश्चात् इन्हें कहा जाने लगा "श्री प्राणनाथ", "श्री जी"। "महामति" भी इन्हीं की आत्मा की शोभा का नाम है। इनके प्रकटन से गुजरात की धरती धन्य-धन्य हो गयी।



श्री मिहिरराज जी के सद्गुरु थे श्री निजानन्द स्वामी। इनका भी मूल नाम था "श्री देवचन्द्र"। इन्होंने चालीस वर्ष की उम्र तक कठोर साधना करके सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार किया। अपने अलौकिक तारतम्य ज्ञान से इन्होंने क्षर-अक्षर से परे स्वलीला अद्वैत एक सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान करायी।

पुराण संहिता ३४/४३ में दो तनों में परब्रह्म द्वारा लीला करने का वर्णन है। "सहायम् इन्दिरायाः लब्ध्वा कार्यं करिष्यति।" इसी ग्रन्थ में लिखित १६ श्लोकों से एक श्लोक बनता है—

*सुन्दरी चेन्दिरा नामाभ्यां चंद्र सूर्ययोः।*

*मायान्धकार विनाशाय प्रति बुद्धे भविष्यतः कलौयुगे॥*

अर्थात् चन्द्र और सूर्य नाम वाले तनों में परब्रह्म की

शक्ति विराजमान होगी तथा अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करेगी। "मिहिर" शब्द का अर्थ होता है सूर्य।

स्पष्ट है कि "श्री देवचन्द्र" तथा "श्री मिहिरराज" – इन दो तनों से अलौकिक ब्रह्मज्ञान का फैलाव होना था।

श्री प्राणनाथ जी ने वि.सं. १७३५ में हरिद्वार के महाकुम्भ पर्व पर सभी आचार्यों पर शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की और उन आचार्यों ने सर्वसम्मति से उन्हें "श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध" के रूप में स्वीकार किया तथा उनके नाम की "बुद्ध जी शाका" भी प्रचलित की।

श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप ज्ञान की दोपहरी का वह सूरज है, जिसके उग जाने पर अध्यात्म जगत में किसी भी प्रकार का अन्धकार रूपी संशय नहीं रहता। वेदों की ऋचायें जिस अक्षर-अक्षरातीत को खोजती हैं, दर्शन

ग्रन्थ जिस सत्य को पाना चाहते हैं, गीता और भागवत जिस परम लक्ष्य उत्तम पुरुष की ओर संकेत करते हैं, कुरान की आयतें जिस अल्लाह तआला का वर्णन करना चाहती हैं, बाइबल जिस प्रेम के स्वरूप का वर्णन करने का प्रयास करती है, और सन्तों की वाणियाँ जिस सत्य की ओर सन्केत करती हैं, उसकी पूर्ण प्राप्ति श्री प्राणनाथ जी की वाणी में निहित है।

इसी प्रकार दिल्ली में औरंगज़ेब की शरियत के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठायी। औरंगज़ेब के पास भेजे गये अपने बारह शिष्यों के माध्यम से उन्होंने उसे सही मार्ग पर लाने का प्रयास किया। आन्तरिक रूप से औरंगज़ेब बहुत प्रभावित हुआ, लेकिन शरियत के दबाव में वह सत्य को ग्रहण नहीं कर सका।

औरंगज़ेब को भेजे गये सन्देश में वेद – कतेब के

एकीकरण और कियामत का प्रसंग था। उसका मूल उद्देश्य यह था कि यदि औरंगज़ेब की आत्मा सत्य ज्ञान द्वारा जाग्रत हो जाती है, तो हिन्दुओं पर होने वाला अत्याचार रुक जायेगा।

उन्होंने कुरआन के पारा २२ सूरः ३४ आयत ३०, पारा २८ सूरः ५९, तथा पारा ७ सूरः ६ आयत ३६ द्वारा कियामत और आखरूल इमाम मुहम्मद महदी का जाहिर होना सिद्ध किया।

श्री छत्रसाल जी को अपनी कृपा दृष्टि से उन्होंने महाराजा छत्रसाल बनाया। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड पर महाराजा छत्रसाल जी का अधिकार हो गया। पन्ना की धरती हीरा उगलने लगी। छत्रसाल जी की चमत्कारिक तलवार, जिसमें श्री प्राणनाथ जी की कृपा छिपी थी, से उन्होंने बड़े-बड़े युद्धों में विजयश्री प्राप्त की। छत्रसाल

जी ने एक ऐसे राज्य की स्थापना की, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर कोई भेद नहीं था। सभी खुशहाल थे।

महाराजा छत्रसाल जी बाह्य रूप से एक महान योद्धा प्रतीत होते थे, किन्तु उनका हृदय एक ब्रह्ममुनि परमहंस का हृदय था। उन्होंने श्री प्राणनाथ जी की कृपा से उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त किया और उनके मुखारविन्द से अवतरित ब्रह्मवाणी को देश में दूर-दूर तक फैलाया। धर्मरक्षक, धर्मवीर, उस नरवीर केशरी महाराजा छत्रसाल जी के प्रयासों से ब्रह्मवाणी की गूँज चारों ओर सुनायी पड़ने लगी।

श्री लाल दास जी द्वारा लिखित इस सम्पूर्ण सत्य घटनाक्रम (बीतक) को संक्षिप्त एवं सरल रूप में लिखने का एक लघु प्रयास किया गया है। अक्षरातीत श्री राज

जी, एवं सद्गुरु महाराज श्री राम रतन दास जी की कृपा, तथा सरकार श्री की प्रेरणा से यह ग्रन्थ आपके कर कमलों में प्रस्तुत है। आपसे निवेदन है कि आप इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर हमें भी सूचित करने का कष्ट करेंगे एवं सत्य के प्रसार में आशातीत योगदान करेंगे।

आशा है, यह ग्रन्थ आपको रुचिकर लगेगा।

आपका

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा

## (१)

अन्धेरी निशा, भयानक स्तब्धता। वृक्षों और पक्षियों का कहीं भी नामोनिशान नहीं, फिर भी लगभग १६ साल का एक किशोर रेतीली धरती पर तेजी से अपने कदम बढ़ाते चला जा रहा है। कौन है यह? इतनी छोटी सी आयु में यह क्या पा लेना चाहता है?

इस समय सारा संसार जब निद्रा के आगोश में डूबा हुआ है, तो इस छोटे से किशोर में वह कौन सा ज्वालामुखी दहक रहा है, जो अपने प्राण हथेली पर लिये हुए अकेले ही निकल पड़ा है?

इस मोह-सागर में करोड़ों मनुष्य पानी के बुलबुले की तरह पैदा होते रहते हैं और भोगों में फँसकर अपने सिर पर कर्मों का बोझ ढोते रहते हैं। वे कभी भी यह



जान नहीं पाते कि वे कौन हैं और उनका प्रियतम कौन है?

किन्तु, यह किशोर संसार के अन्य सभी प्राणियों से अलग है। इसके अन्दर अपने प्राणवल्लभ को पाने की अदम्य प्यास है, जिसके कारण वह इस भयानक रात्रि में अकेले ही निकल पड़ा है।

अचानक सामने से एक तेजोमय व्यक्ति आते हुए दिखायी पड़ा। घनी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूंछें, रोबीला चेहरा, कमर में तलवार, और हाथों में भयंकर बरछी।

उसे देखकर किशोर का कोमल मन धक् रह गया। भय से प्राण सूख गये। बिल्कुल नजदीक आ जाने पर उसकी जोश भरी आवाज सुनायी पड़ी—

".....रे बालक! अपनी तलवार मुझे दे दे।"

कोई चारा न देखकर चुपचाप अपनी तलवार सौंपनी पड़ी। पुनः गठरी भी उसने ले ली।

सिपाही वेश में उस पठान जैसे व्यक्ति ने कहा –  
"लेट जा.....।"

ये शब्द सुनते ही बालक को ऐसा लगा, जैसे जीवन की यह अन्तिम घड़ी है। भय से उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

किन्तु, यह कैसा चमत्कार! तप्त रेगिस्तान के बीच बहने वाले झरने की भांति उस अजनबी के हृदय से स्नेह का प्रवाह बह चला।

उसने अपना पाँव बालक की बायीं जाँघ के मूल पर रख दिया, जिससे अत्यधिक दौड़ने के कारण होने वाला पेट का दर्द समाप्त हो गया। यही प्रक्रिया उसने दूसरी

जाँघ के पर भी की। फलतः पेट का सारा दर्द समाप्त हो गया।

तब तो हृद ही हो गयी, जब उसने अपनेपन की भावना से बालक की गठरी भी अपनी पीठ पर लाद ली तथा अपनी पिछौड़ी उसकी कमर में बाँध दी। कमर में पिछौड़ी के बँधते ही उस बालक को ऐसा लगा जैसे कि उसके अन्दर एक अलौकिक सी शक्ति आ गयी हो। शरीर भी रुई की तरह हल्का सा प्रतीत होने लगा।

दोनों ही अपनी राह में चल पड़े। साथ ही साथ बातें भी करते जाते थे—

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"देवचन्द्र।"

"पिता का नाम क्या है?"

"मतू मेहता।"

"वे क्या करते हैं?"

"व्यापार करते हैं।"

"रहने वाले कहाँ के हो?"

"उमरकोट के।"

"इतनी रात गये अकेले कहाँ जा रहे थे?"

"उमरकोट के राजकुमार की बारात कच्छ में जा रही थी। मुझे भोजनगर अति आवश्यक कार्य से जाना है। मेरे पास कोई सवारी न होने से बारात वाले साथ नहीं ले गये। इसलिये मैं अकेले ही चल पड़ा।"

"इसका आशय यह है कि तुम बारात वालों से मिलना चाहते हो।"

"जी! यदि वे मिल जायें तो मुझे अपने गन्तव्य तक पहुँचने में बहुत सुविधा होगी।"

"उमरकोट के राजा और मन्त्री का व्यवहार कैसा है?"

"बहुत अच्छा।"

इस प्रकार बातें करते हुए चलते-चलते वे बारात वालों के नजदीक पहुँच गये। उस समय तक थोड़ी सी रात्रि बची थी। उषाकाल होने वाला था।

सिपाही वेशधारी उस व्यक्ति ने श्री देवचन्द्र जी की कमर से अपनी पिछौड़ी (पीठ पर ओढ़ा जाने वाला कपड़ा) वापस ले ली तथा उनकी गठरी और तलवार वापस करते हुए कहा- "ये देखो! वे बारात वाले लोग ही तो खड़े हैं।"

देवचन्द्र जी बारातियों को पहचानने की कोशिश करने लगे। कुछ पलों के बाद जैसे ही उन्होंने सिपाही को कुछ कहने के लिये नजर डाली तो चौंक पड़े। सिपाही का तो दूर-दूर तक कहीं भी नामोनिशान नहीं था।

भावातिरेक में श्री देवचन्द्र जी के कोमल गालों पर आँसुओं के मोती ढुलक पड़े। अन्तरात्मा पुकार उठी।

रेगिस्तान की इस भयानक रात्रि में, अपनी पीठ पर मेरी गठरी लादकर लगभग ४० कोस तक पहुँचाने वाला कौन हो सकता है? मैंने तो उन्हें पुकारा भी नहीं था। क्या इतना प्रेम कोई मनुष्य, ऋषि, सिद्ध, या देवता कर सकता है? नहीं, कदापि नहीं।

यह स्पष्ट है कि मैं जिस प्रियतम परब्रह्म की खोज में निकला हूँ, उन्होंने ही यह लीला की है। लगता है, वह

प्रेमी छलिया मेरी आँखों पर पर्दा डाल गया। किन्तु, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जब मेरी आत्मा का प्रियतम पल-पल मेरे सिर पर है, तो अवश्य ही मैं उन्हें खोज निकालूँगा, भले ही इस कार्य में कितने ही कष्ट क्यों न हों।

कुछ क्षणों के उपरान्त श्री देवचन्द्र जी बारातियों के पास पहुँचे और अपना परिचय दिया। बारातियों का सरदार (प्रमुख) भी श्री देवचन्द्र जी को अचानक अपने पास उपस्थित हुआ देखकर सन्न रह गया और बोला – "तुम उमरकोट से कब निकले थे?"

"आप लोगों के निकलने के पश्चात्।"

"हमारे पास तो यहाँ तक पहुँचने के ऊँट आदि साधन हैं, किन्तु तुम यहाँ तक कैसे आ पहुँचे?"



"मैं आप लोगों के पीछे - पीछे हवा की तरह आ पहुँचा हूँ।"

"देवचन्द्र! तुम यहाँ तक पैदल ही कैसे पहुँच गये? इस पहेली को मैं अब तक सुलझा नहीं पाया हूँ। ऐसा तो परमात्मा की कृपा के बिना सम्भव ही नहीं है। चलो! जो कुछ हुआ, ठीक ही हुआ। हम लोगों का भोजन तैयार हो रहा है और तुम्हें हमारे साथ ही भोजन करना है।"

"क्षमा करें! मेरी विवशता है कि मैं स्वयं का ही बनाया हुआ भोजन करता हूँ और घर से भोजन की सारी सामग्री भी साथ लेकर आया हूँ।"

"प्रिय देवचन्द्र! मैं भी तुम्हारी ही जाति - बिरादरी का हूँ। यदि तुम हमारा बनाया हुआ भोजन नहीं कर सकते, तो हमसे भोजन बनाने का सारा सामान अवश्य ही लेना

पड़ेगा, अन्यथा हमें बहुत दुःख होगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

श्रद्धापूर्वक भोजन बनाने के पश्चात् श्री देवचन्द्र जी के अन्दर ये भाव उठने लगे— "ग्यारह वर्ष की उम्र में मेरे मन में यह विचार आया कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ तथा मेरी आत्मा का प्रियतम् कौन है? यह जानने के लिये मैंने अनेकों से सत्संग किया, राधा-कृष्ण की मूर्तियों की दण्डवत् परिक्रमा भी बहुत समय तक की, किन्तु जड़ मूर्ति क्या बोलती।"

"अपने प्राणवल्लभ की खोज में मैं यहाँ तक आया हूँ। संसार के लोग कहते हैं कि परमात्मा कण-कण में समाया है। आखिर, उसका स्वरूप क्या है? मैं इस समय किसको भोग लगाऊँ?"

"जो बिन बुलाये, बिन जाने, बिन पहचाने पठान सैनिक के वेश में यहाँ तक पहुँचा गया है, निःसन्देह वह ही मेरी आत्मा का प्रियतम है। मुझे एकमात्र उसी का ही भाव लेकर भोग लगाना चाहिए।"

यह सोचते हुए श्री देवचन्द्र जी ने अपने इष्ट को प्रेमपूर्वक भोग लगाया। बारात के लोगों ने भोजन के पश्चात् आराम करके यात्रा प्रारम्भ की और अपने ऊँट पर श्री देवचन्द्र जी को भी बिठा लिया। सभी लोग कच्छ प्रान्त में पहुँचे। बाराती तो अपने माया के काम में लगे और श्री देवचन्द्र जी उस सच्चिदानन्द परब्रह्म की खोज में लग गये, जिसके विषय में बड़े-बड़े मनीषियों ने हार मानकर "नेति" – "नेति" कहते हुए मौन धारण कर लिया है।

## (२)

अपने प्राणवल्लभ को खोजने की जिज्ञासा ही इस १६ वर्षीय किशोर को जगह-जगह घुमा रही है। जिसके अन्दर यह प्यास जग जाती है, वह लौकिक कष्टों की थोड़ी भी परवाह नहीं करता। श्री देवचन्द्र जी कच्छ में एक मन्दिर में पहुँचे।

मन्दिर में चहल-पहल तो थी, लेकिन चर्चा-सत्संग का नामोनिशान नहीं था। उन्होंने मुख्य पुजारी को प्रणाम करके पूछा—

"क्या यहाँ कुछ चर्चा-सत्संग नहीं होगा।"

"चर्चा-सत्संग का उद्देश्य होता है, परमात्मा को जानना। किन्तु, जब यहाँ साक्षात् परमात्मा ही विराजमान हैं, तो आप किसकी चर्चा सुनना चाहते हैं?"

"किन्तु, यह तो मूर्ति है।"

"भाव ही सर्वोपरि है। यदि इस मूर्ति में आप परमात्मा का भाव लेंगे, तो यह साक्षात् परमात्मा के रूप में ही दर्शन देगी।"

श्री देवचन्द्र जी लम्बे समय तक मूर्ति-पूजा का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। प्रतिदिन तीन-तीन घण्टे की दण्डवत् परिक्रमा भी उन्हें शान्ति नहीं दिला सकी थी। वहाँ से चल देना ही उन्होंने अच्छा समझा।

इसके पश्चात् वे उन सन्यासियों के पास गये, जो अपनी आकर्षक धार्मिक वेश-भूषा से सामान्य जनता को अपने मोह-पाश में बाँधे हुए थे। श्री देवचन्द्र जी ने उनका सादर अभिवादन करके पूछा- "मुझे परमात्मा के साक्षात्कार का मार्ग बताइये।"

"देखो! परमात्मा सत्, चित्, आनन्द, अजर, अमर, निर्भय, निर्विकार, अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, और निराकार है। एक दिन में ही परमात्मा का साक्षात्कार तो होगा नहीं। इसके लिये तुम्हें हमारा शिष्यत्व स्वीकार करना होगा तथा श्रद्धा भाव से सेवा करनी होगी।

धीरे-धीरे हम तुम्हारी पात्रता के अनुसार अष्टांग योग का उपदेश देंगे। यदि तुम सच्चे हृदय से हमारी सेवा करते हुए ध्यान-साधना करोगे, तो गुरु-कृपा से तुम्हें समाधि अवस्था में उस अलौकिक ब्रह्म का साक्षात्कार हो जायेगा।"

दीर्घ काल तक ध्यान-समाधि के अभ्यास के पश्चात् भी जब श्री देवचन्द्र जी को उस सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हुआ, तो वे नाथ पन्थ के अनुयायी योगियों के पास गये। ये लोग राजगुरु कहलाते थे तथा

हठयोग की क्रियाओं से इन्होंने अनेक सिद्धियों की प्राप्ति कर ली थी। सारे समाज में इनकी धाक थी। श्री देवचन्द्र जी ने उनके सान्निध्य में जाकर हठयोग की सारी प्रक्रियाएँ सीखी।

"मैं उस परम सत्य का साक्षात्कार करना चाहता हूँ। कृपया मुझे मार्ग दर्शायें।"

"प्रिय देवचन्द्र! हम आपको नेती, धोती, वस्ती, त्राटक, कपालभाती, महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, जालन्धर बन्ध, उड्डियान् बन्धादि के साथ-साथ ध्यान-समाधि का भी अभ्यास करायेंगे, जिससे आपको ऋद्धि-सिद्धियों के अतिरिक्त परमात्मा का भी दर्शन हो जायेगा।"

"गुरुदेव! यह तो आपकी महान कृपा होगी। किन्तु,



मैं सिद्धियाँ नहीं चाहता। मैं तो एकमात्र अपने प्रियतम का ही साक्षात्कार चाहता हूँ।"

हठयोग एवं राजयोग की क्रियाओं से उन्हें करोड़ों सूर्यों के समान तेजोमयी ज्योति का दर्शन हुआ। इसके अतिरिक्त शून्य समाधि में उन्हें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध से रहित निरूपाधिक आनन्द का भी अनुभव हुआ।

किन्तु, सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म के साक्षात्कार का तो अन्य ही मार्ग है, जिसके लिये उनकी आत्मा जल से अलग हुई मछली की तरह तड़प रही थी।

इन साधनाओं में श्री देवचन्द्र जी ने अपने शरीर को क्षीण कर दिया था। जब उन्होंने नाथ गुरुओं से शून्य समाधि से आगे का ज्ञान पूछा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया

कि हमारे मत में ज्ञान की सीमा यहीं तक है। यदि आप इससे आगे का मार्ग जानना चाहते हैं, तो संसार में उसकी खोज कीजिए। हमारी शुभकामनायें आपके साथ हैं।

लगभग १४ मास तक योगियों के सान्निध्य में कठोर योग साधना करने के पश्चात् श्री देवचन्द्र जी कापड़ी वैरागियों के पास गये। ये लोग देवी की भक्ति करते थे। पन्द्रह दिन तक इनकी संगति करने के पश्चात् जब श्री देवचन्द्र जी को कोई सार तत्व नहीं मिला, तो वे निराश होकर मुल्ला जी के पास गये।

अल्लाह तआला के दीदार के लिये मुल्ला जी ने पाँच चीजों पर बल दिया – १. कलमा २. नमाज ३. रोजा ४. हज ५. जकात।

उनकी मान्यता के अनुसार इन पाँचों का पालन किये बिना उस रब्बिलआलमीन अल्लाह तआला की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त उन्होंने खुदा को निराकार-निर्गुण भी कहा तथा मुहम्मद साहब से उनकी वार्ता होने का भी जिक्र किया।

श्री देवचन्द्र जी ने पूछा कि जब खुदा की कोई सूरत ही नहीं है, तो मुहम्मद साहब ने उनसे बातें कैसे कर लीं? क्या मात्र शरीयत के द्वारा ही उस परवरदिगार की प्राप्ति की जा सकती है?

मुल्ला जी स्पष्ट रूप से कुछ भी कह नहीं सके। अन्त में श्री देवचन्द्र जी ने आगे की राह पकड़ी।

(३)

सागर की गहराइयों में डुबकी लगाने वाला ही मोती पा सकता है। डूबने के भय से किनारे बैठा रहने वाला हाथ मलते रहने के सिवाय और क्या कर सकेगा।

भौरे को तो पराग और सुगन्धि चाहिए। वह किसी विशेष फूल की सीमा-रेखा से स्वयं को नहीं बाँधता। अध्यात्म के चरम लक्ष्य को पाने का इच्छुक भी किसी सम्प्रदाय विशेष की संकीर्ण मान्यताओं और एक गुरु से बन्धने में विश्वास नहीं करता। गुरु दत्तात्रेय जी ने भी तो २४ गुरु किये थे।

अनेक मत-पन्थों में सत्य की खोज की आकांक्षा पाले श्री देवचन्द्र जी अन्ततोगत्वा भोजनगर आये। वहाँ उनका मिलन हुआ हरिदास जी से हुआ, जो गोपीभाव से

राधा-कृष्ण की भक्ति में लगे हुए थे। वे मत्तू मेहता जी के गुरुदेव भी थे।

हरिदास जी में श्रद्धा, समर्पण, और सेवा की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। श्री देवचन्द्र जी ने अपने को उनकी सेवा में झोंक दिया। उनकी निष्ठा देखकर हरिदास जी ने देवचन्द्र जी को दीक्षा मन्त्र देने का निर्णय किया। एक निश्चित तिथि पर सिर मुड़ाये हुए देवचन्द्र जी हरिदास जी के सामने बैठे। हरिदास जी ने पूछा—

"क्या इसके पहले तुमने किसी और से भी दीक्षा मन्त्र लिया था?"

"हाँ गुरुदेव! सन्यासियों से गायत्री महामन्त्र की दीक्षा ली थी।"

"मेरा दिया हुआ मन्त्र तभी पूर्ण रूप से फलितार्थ

होगा, जब तुम सन्यासियों से लिये हुए मन्त्र को किसी कागज में लिखो और रोट्टी आदि में छिपाकर उन्हें वापस कर दो।"

"यद्यपि आपकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है, गुरुदेव! फिर भी मेरा कथन यह है कि यदि आपका मन्त्र मेरे पहले वाले मन्त्र से अधिक शक्तिशाली है, तो मेरे हृदय से वह स्वतः ही निकल जायेगा। किन्तु, यदि मेरा पूर्व वाला दीक्षा-मन्त्र आपके दिये हुए मन्त्र से अधिक शक्तिशाली हुआ, तो वह मेरे हृदय से कदापि नहीं निकल सकेगा।"

श्री हरिदास जी इस प्रकार का उत्तर सुनकर गदगद हो गये। उन्होंने अति स्नेहपूर्वक "अखण्ड रास बिहारी श्री कृष्ण" का मन्त्र दीक्षा के रूप में दिया।

हरिदास जी से देवचन्द्र जी का पता पाकर उनके माता-पिता भी भोजनगर आकर बस गये थे। देवचन्द्र जी की वैराग्य भावना देखकर वे उन्हें विवाह-बन्धन में बाँधना चाहते थे। विवाह का बन्धन इतना मजबूत होता है कि बड़े-बड़े ज्ञानी-तपस्वी भी इसकी सुनहरी रस्सी को काट नहीं पाते हैं। यहाँ तक कि विरक्त वेष धारण कर तप करने वाले भी प्रायः किसी न किसी रूप में इसके बन्धन में आ ही जाते हैं।

संयोगवश, जिस दिन श्री देवचन्द्र जी ने दीक्षा मन्त्र धारण किया था, वही दिन उनके विवाह का भी निश्चित था। देवचन्द्र जी के लाख मना करने के उपरान्त भी पिताश्री नहीं माने थे और जबरन विवाह की तिथि निश्चित कर दी थी।

विवाह के शुभ मुहूर्त पर देवचन्द्र जी को सिर मुंडाये



देखकर पिताश्री का पारा सातवें आकाश तक जा पहुँचा। उन्होंने देवचन्द्र जी पर कर्कश शब्दों की बौछार कर दी—

"देवचन्द्र! ज्योतिष के आधार पर मैंने यह शुभ मुहूर्त निकलवाया था, लेकिन तुम्हारी मूर्खता ने मेरी इच्छाओं का गला घोट दिया।"

"पिताश्री! मैंने अपराध क्या किया है, जो आप इतने क्रोधित हो रहे हैं?"

"एक तो मेरे जीवित रहते ही सिर मुंडाया, दूसरे यह कार्य विवाह के शुभ अवसर पर हुआ है। कहाँ मैं तुम्हारे सिर पर विवाह का मुकुट देखना चाहता था और कहाँ तुमने यह सन्यासियों का वेश धारण कर लिया है।"

"मैंने आपको बार-बार मना किया था कि मेरा मन रञ्चमात्र भी संसार में नहीं है। जब तक दो दिलों की

व्यक्तिगत इच्छा न हो, तब तक जबरन विवाह कराना घोर अन्याय है। आज जो स्थिति बनी है, आपके अड़ियल रवैये की ही देन है।"

"तू मेरा एकमात्र पुत्र है। मैं तो यह किसी भी कीमत पर सहन नहीं कर सकता कि तू मेरे जीते जी बाबा बनकर इधर-उधर घूमता रहे।"

'विवाह वह बन्धन है, जिसमें फँसने के बाद गृहस्थी की चक्की में पिसना पड़ता है। परिवार के उत्तरदायित्वों को पूरा करते-करते ही आधी से अधिक उम्र निकल जाती है। इन झूठे रिश्तों में फँसकर आत्मा के प्रियतम के प्रति अपना पूरा प्रेम नहीं हो पाता।"

"तू मेरा पुत्र होकर मुझे ही उपदेश देने चला है। मेरा निर्णय अन्तिम है। इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं हो

सकता।"

"आपका मेरे शरीर पर ही तो अधिकार है, मेरी आत्मा पर नहीं। आप मेरे झूठे शरीर का ही विवाह रचा सकते हैं। मैंने तो आज ही अपनी आत्मा का विवाह अपने प्रियतम से कर लिया है। आप अपने अहं की तृप्ति के लिये मेरे शरीर का विवाह कर सकते हैं, लेकिन यह निश्चित है कि मेरा मन घर-परिवार में जरा भी नहीं लगेगा।"

लीलबाई जी के साथ परिणय हो जाने के पश्चात् भी श्री देवचन्द्र जी का मन घर-परिवार में नहीं लगता था। वे मात्र तीन घण्टे (रात्रि १२-३) ही घर पर रहते। शेष सारा समय हरिदास जी की सेवा, मन्दिर की परिक्रमा, तथा चर्चा-सत्संग में व्यतीत करते थे।

एक दिन परिक्रमा करते हुए श्री देवचन्द्र जी को हरिदास जी ने देख लिया। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर पूछा— "देवचन्द्र! मेरे पास से तो तुम १२ बजे रात्रि को घर गये थे। इस समय तीन बज रहे हैं। क्या घर पर जरा भी आराम नहीं करते हो?"

"गुरुदेव! मुझे ऐसा लगा कि प्रातःकाल हो गया है। इसी भ्रम में चला आया।"

किन्तु, यह तो प्रतिदिन का ही नियम था। श्री देवचन्द्र जी सेवा-भक्ति तो अपने आत्मिक सुख के लिये करते थे, इसलिये उसे छिपाकर ही करते थे।

एक दिन दोनों ही अपने इष्ट की सेवा में तल्लीन थे, अचानक.....चार आदमी एक ऐसे व्यक्ति को लाये, जो बिच्छू के विष से बेहोश हो गया था। उन्होंने

कातर स्वर में गुहार लगायी—

"महाराज जी! यह बेहोश हो गया है। बिच्छू के विष से इसकी प्राण-रक्षा आप ही कर सकते हैं।"

आवाज सुनकर श्री हरिदास जी बाहर आये। उसकी दयनीय स्थिति देखकर उन्होंने मन्त्र पढ़ा और अपनी मुँछों पर हाथ फेरा। इससे कुछ शान्ति मिली। यह प्रक्रिया दूसरी और तीसरी बार दोहराते ही विष पूर्णतया उतर गया तथा वह व्यक्ति चंगा हो गया।

सभी कृतज्ञ भाव से श्री हरिदास जी के चरणों में लोट गये। उनके नेत्र, हृदय, और वाणी से आदर के भाव झलक रहे थे।

"महाराज जी! आपकी महिमा को हम शब्दों में नहीं कह सकते। आपने ही अपनी मन्त्र-शक्ति से इसे जीवन

दान दिया है। हम आपके इस उपकार से कभी भी उन्नत नहीं हो सकते हैं।"

उनके चले जाने के बाद हरिदास जी बोले—

"देवचन्द्र! तुमने मन्त्र-शक्ति का चमत्कार तो देखा।"

"हाँ, गुरुदेव!"

"यदि वह थोड़ी और देर कर देता, तो उसका बचना सम्भव नहीं था। मैं चाहता हूँ कि तुम भी इस मन्त्र को सीख लो, ताकि दूसरों का उपकार हो सके।"

"यह तो ठीक है, किन्तु आपने जो मुझे अखण्ड योगमाया का मन्त्र दिया है, उससे जीव इस भवसागर से पार हो जाता है। जन्म-मरण के चक्र में तो लाखों बिच्छुओं का कष्ट है। उससे मुक्त करने वाला मन्त्र जब आप मुझे दे ही चुके हैं, तो मैं और दूसरा मन्त्र लेकर

क्या करूँगा?"

"देवचन्द्र! तुम्हारे इस कथन से मैं गदगद हो गया हूँ। तुम्हारी बुद्धि जितनी महान है तथा जितने श्रेष्ठ विचार हैं, उतने मेरे नहीं हैं। तुम धन्य हो।"

अचानक एक दिन, हरिदास जी ने फिर देखा कि देवचन्द्र जी रात्रि के तीन बजे के लगभग मन्दिर के बाहर परिक्रमा कर रहे हैं। वे अब समझ गये कि यह तो इनका नित्य क्रम है।

हरिदास जी का मकान एवं मन्दिर दोनों ही संयुक्त रूप में थे। मन्दिर की परिक्रमा करने पर उनके मकान की भी परिक्रमा होती थी। हरिदास जी को यह पसन्द नहीं था कि इष्ट के साथ-साथ कोई उनकी भी परिक्रमा करे। इतनी बड़ी सेवा का बोझ सम्भालना उन्हें कठिन

प्रतीत होने लगा। निदान, उन्होंने यह निर्णय लिया कि उनके पास जो दो मूर्तियाँ बाल मुकुन्द तथा बाँके विहारी की हैं, उनमें से एक श्री बाल मुकुन्द जी की मूर्ति देवचन्द्र जी को सौंप दें, ताकि वे घर पर ही अपनी सेवा पूजा कर सकें।



## (४)

जब श्री हरिदास जी प्रातःकाल सेवा हेतु मन्दिर में पहुँचे तो बाल मुकुन्द (बाल रूप श्री कृष्ण) की मूर्ति दिखायी नहीं पड़ी। उन्होंने मन्दिर का कोना-कोना छान मारा, लेकिन कहीं भी पता न चला।

उन्होंने घर के सभी सदस्यों से भी पूछताछ की। सबका यही कथन था कि यहाँ भला कौन आ सकता है? जब मन्दिर और मकान के दरवाजे बन्द थे, तो मूर्ति कहाँ चली गयी? क्या मूर्ति के भी पँख होते हैं?

हरिदास जी ने बाँके विहारी (किशोर स्वरूप श्री कृष्ण) की विधिवत् सेवा-पूजा की। श्री देवचन्द्र जी भी इस समाचार को सुनकर बहुत दुःखी हुए।

हरिदास जी के मन में यह बात खटक रही थी कि

कहीं देवचन्द्र जी यह न समझ लें कि मैं उनको मूर्ति देना ही नहीं चाहता। यह बात उन्होंने प्रकट भी कर दी, किन्तु श्री देवचन्द्र जी ने स्पष्ट कह दिया कि गुरुदेव! मैं ही अभी इसके योग्य नहीं हूँ। आपने तो मुझे संकल्प रूप से दे ही दिया था।

हरिदास जी ने बाँके विहारी जी की विधिवत् सेवा-पूजा की, किन्तु उन्होंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक बाल मुकुन्द जी की मूर्ति नहीं मिलेगी, तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा।

अनायास ही श्री देवचन्द्र जी और हरिदास जी सहित परिवार के सभी लोग उपवास करने लगे। हरिदास जी मध्य रात्रि में चिन्तन में डूबे थे कि श्री बाल मुकुन्द जी ने साक्षात् दर्शन दिया।

चरणों में प्रणाम करते हुए हरिदास जी बोले – "हे प्रभो! आप कहाँ थे? आपको खोजते-खोजते हम बहुत दुःखी हो गये।"

"मैं तो वहीं बैठा था।"

"तो आपने हमें दर्शन क्यों नहीं दिया?"

"तुम मुझे श्री देवचन्द्र जी के यहाँ पधराते थे। इसलिये मैं अन्तर्धान हो गया था। तुम्हें इनकी महिमा नहीं मालूम है। ब्रज लीला में श्री कृष्ण जी के तन में परब्रह्म की शक्ति ने लीला की थी तथा राधा जी के तन में इनकी आत्मा थी। मैं किसी भी प्रकार से इनसे अपनी सेवा नहीं करवा सकता। मैं तो इनकी कृपा से उद्भूत भी नहीं हो सकता हूँ।"

यदि श्री देवचन्द्र जी दुःखी हों, तो रास विहारी जी

के वस्त्रों की सेवा उन्हें दे देना, किन्तु मेरी मूर्ति कदापि नहीं देना।"

"प्रभो! कृपा करके यह बताइये कि इस समय आपकी मूर्ति कहाँ पर है?"

"मेरी मूर्ति तो वहीं सिंहासन पर ही विराजमान है। मैंने तो तुम्हें दृष्टि-बन्ध कर दिया था।"

हरिदास जी मन्दिर में जाकर देखते हैं कि मूर्ति तो सिंहासन पर विराजमान है। उन्होंने आनन्दित होकर बार-बार अपने इष्ट के चरणों में प्रणाम किया।

हरिदास जी को अपनी अनजानी भूलों पर बहुत अधिक पश्चाताप हो रहा था। आज तक तो वे श्री देवचन्द्र जी को अपना शिष्य ही समझते रहे। न जाने कितनी बार देवचन्द्र जी ने उनके घर के जूठे बर्तन भी

धोये होंगे। न जाने कितनी बार झाड़ू लगाया होगा। पता नहीं कितनी बार उनके चरण दबाये होंगे।

इस भयंकर अपराध का एक ही प्रायश्चित्त हो सकता है कि उनके चरणों में लोटकर अपनी भूल की क्षमा माँगी जाये।

यह सोचते हुए श्री हरिदास जी मार्ग में जा रहे थे कि सामने ही देवचन्द्र जी दिखायी पड़ गये। हरिदास जी दौड़ते हुए उनके चरणों में लोट गये। श्री देवचन्द्र जी यह दृश्य देखकर हक्का-बक्का हो गये। उन्होंने अपने दोनों हाथों से हरिदास जी को उठाते हुए कहा—

"गुरुदेव! मैं तो आपका शिष्य हूँ। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?"

"मैं आज तक आपके स्वरूप की पहचान नहीं कर

पाया था। मैं आपको अपने शिष्य के ही रूप में मानकर अपनी सेवा करवाता रहा। पता नहीं, मेरे इस अपराध का प्रायश्चित्त होगा या नहीं।

"बीती मध्य रात्रि को बाल मुकुन्द जी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर मुझे बताया कि श्री देवचन्द्र जी के अन्दर रासेश्वरी राधा जी की आत्मा है। मैं उनसे अपनी सेवा नहीं करवा सकता। उन्होंने मुझे आपको बाँके विहारी जी के वस्त्रों की सेवा सौंपी है।

"इतने वर्ष मुझे दोनों स्वरूपों श्री बाल मुकुन्द और बाके विहारी की सेवा करते हुए बीत गये थे, लेकिन कभी भी इस तरह प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुआ था। श्री देवचन्द्र जी! आपकी कृपा से ही मुझे श्री बाल मुकुन्द जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं आपके इस ऋण को कभी भी पूरा नहीं कर सकता।"

"गुरुदेव! क्या बाल मुकुन्द जी की मूर्ति मिल गयी?"

"हाँ! चलो तुम्हें दर्शन कराते हैं।"

दोनों ने दर्शन करके भोजन ग्रहण किया। श्री देवचन्द्र जी ने बाँके विहारी जी के वस्त्रों की सेवा अपने घर पर पधरायी तथा अटूट निष्ठा के साथ सेवा और चितवनि करने लगे।

वे स्वयं अपने हाथों से रसोई में चौका देते, पानी भरते, तथा भोग तैयार करते। यदि जल लाते समय किसी की छाया भी पड़ जाती, तो उसे गिराकर दूसरा जल लाते। भोग लगाने के पश्चात् अखण्ड ब्रज-रास का ध्यान लगाते।

एक दिन उनकी पत्नी लीलबाई जी बहुत दुःखी होकर उनसे बोली- "पतिदेव! पड़ोस की सभी स्त्रियाँ

मुझे ताना मारा करती हैं कि तुम कैसी पत्नी हो कि तुम्हारे पति तो अपने हाथों से चौका देवें, भोजन तैयार करें, और पानी भी भरें, तथा तुम बैठे-बैठे आराम करो। इस तरह की बातें सुनते-सुनते मेरे कान पक गये हैं।"

श्री देवचन्द्र जी ने स्नेहपूर्वक समझाया – "तुम मेरे माता-पिता की सेवा करो। मैं उसी से खुश हूँ। जिस प्रकार मैं तुम्हारे शरीर का पति हूँ, उसी प्रकार मेरी और तुम्हारी आत्मा का पति एक ही परब्रह्म है, जिनकी मैं सेवा करता हूँ।

"मैं जिस स्वरूप की सेवा करता हूँ, उनकी तुम्हें पहचान नहीं है। बिना पहचान के सेवा नहीं हो पाती। जल भरते समय या किसी अन्य सेवा में यदि तुम्हारा मन दुःखी हो गया, तो सेवा-धर्म नष्ट हो जायेगा। सेवा-धर्म बहुत कठिन है। इसलिये अपने इष्ट की सारी सेवा मैं



स्वयं ही करूँगा। तुम इस सम्बन्ध में थोड़ी भी चिन्ता न करो।"

एक दिन ध्यान में श्री देवचन्द्र जी को अपने प्रियतम का दर्शन हुआ। उनका ध्यान अखण्ड ब्रज में पहुँचा, जहाँ माता यशोदा जी दूध गर्म कर रही थीं। राधा रूप में श्री देवचन्द्र जी उनके सम्मुख खड़े हुए। यशोदा जी ने स्नेह भरे स्वर में पुकारा—

"आओ राधा रानी! यहाँ आकर भोजन करो।"

"माते! मैं कुछ जल्दी में हूँ। यह बताइये, कन्हैया कहा हैं? मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।"

"उस नटखट का स्वभाव तो तुम जानती ही हो। वह भला शान्ति से कहाँ रह सकता है? वन में ग्वाल—बालकों के साथ खेल रहा होगा।"

"मैं अभी वहीं जाना चाहती हूँ, क्योंकि मेरा मन तो उनमें ही लगा हुआ है।"

"यह मिठाई लो और दोनों मिलकर खा लेना। श्री देवचन्द्र जी राधा रूप में ग्वाल-बालों के पास पहुँचते हैं और पूछते हैं—

"श्री कृष्ण जी कहाँ हैं?"

"कौन से कृष्ण जी? यहाँ तो हर टोली में श्री कृष्ण नाम वाले बालक हैं।"

"नन्द लाल श्री कृष्ण जी।"

"यहाँ तो अनेक श्री कृष्ण हैं, जिनके पिता का नाम नन्द है।"

"माता यशोदा के पुत्र श्री कृष्ण।"

कन्हैया खड़े-खड़े सारी लीला देख रहे थे।

मुस्कराते हुए बोले- "आओ-आओ राधा रानी! मैं तो यहीं पर खड़ा-खड़ा तुम्हारी ही बाट देख रहा हूँ।"

"आपकी प्रेमभरी छल वाली लीला समझ में नहीं आती है। मैं इतनी देर से ढूँढ-ढूँढ कर परेशान हूँ और आपको हँसी आती है।"

"मैं तो तुम्हारे बिना पल भर भी नहीं रह सकता। तुम तो मेरी प्राणेश्वरी हो।"

दोनों बातें करने लगे। घूँघरी बाँटी जाने लगी तो यशोदा जी द्वारा भेजी हुई मिठाई भी बाँटने के लिये दे दी गयी। श्री कृष्ण जी ने कह दिया कि हमारे लिये दो-दो भाग देना।

श्री देवचन्द्र जी ने अति प्रेम में भरकर जैसे ही अपना हाथ भोजन करने के लिये उठाया, त्योंहि उनका ध्यान

टूट गया। ध्यान में उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था। ध्यान टूटते ही दर्शन लीला बन्द हो गयी।

दर्शन देने वाले इस स्वरूप को अपना प्रियतम मानकर अटूट आस्था के साथ सेवा और चितवनि में तल्लीन हो गये।

## (५)

और अधिक आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करने हेतु श्री देवचन्द्र जी नवतनपुरी (जामनगर) आये, साथ में माता-पिता भी आ गये। इस नगर में वल्लभाचार्य मत का बहुत अधिक प्रचार था।

श्री कृष्ण जी के मन्दिर में कान्ह जी भट्ट श्रीमद्भागवत् की कथा किया करते थे। श्री देवचन्द्र जी निष्ठाबद्ध होकर भागवत की कथा का रसपान करने लगे। वे प्रातःकाल जलपान तभी करते थे, जब वे कथा का श्रवण कर लेवें।

कुछ समय के पश्चात् कथा श्रवण में आने वाले धनवान और अग्रगण्य लोगों में ईर्ष्या का दावानल धधक उठा। ईर्ष्या की अग्नि से कोई विरला ही बच पाता है।

एक दिन वे सभी एकत्रित होकर कान्ह जी भट्ट से

अपने मन की कटुता व्यक्त करने लगे—

"आपका देवचन्द्र जी से क्या सम्बन्ध है कि जब तक वे आये नहीं, आप कथा का प्रारम्भ ही नहीं करते? क्या वे आपको कुछ विशेष धन भेंट करते हैं? मन्दिर आते-आते हमारी इतनी उम्र बीत गयी, लेकिन हम आपके उतने प्रिय नहीं बन पाये, जितने कि यह नव आगन्तुक देवचन्द्र।"

"मैं किसी से धन की कोई भी आशा नहीं करता। मैं तो अपने इष्ट कन्हैया के सामने भागवत की कथा करता हूँ। देवचन्द्र जी तो गरीब हैं, बेचारे वे मुझे क्या दे सकते हैं?"

लेकिन, जितनी निष्ठा से वे भागवत सुनते हैं, उतनी निष्ठा से आप लोग नहीं सुनते। यदि मैं कोई श्लोक

आगे-पीछे कह दूँ, तो आप लोगों को कुछ भी पता नहीं चलता, जबकि देवचन्द्र जी छोड़े हुए श्लोक को सुनने हेतु मेरे घर पहुँच जाया करते हैं और मुझे उनकी इच्छा पूरी करनी पड़ती है।"

यह बात सुनकर सभी में चुप्पी तो छा गयी, लेकिन अन्दर का क्रोध नहीं गया। अज्ञानता का शिकार होने से कर्मकाण्ड ही इनके लिये सर्वस्व था।

यदि नियति में खोट हो तो विवाद करने के सैंकड़ों बहाने बन जाते हैं। ईर्ष्या और अहंकार विवाद की अग्नि में हवा और घी का काम करते हैं।

शीघ्र ही उन्हें एक बहाना भी मिल गया। उन्होंने देखा कि देवचन्द्र जी एकादशी को भरपेट भोजन करते हैं तथा द्वादशी को कुछ भी नहीं खाते। इसके विपरीत हम लोग

एकादशी को उपवास रखते हैं तथा द्वादशी को भण्डारा करते हैं। हमारी मान्यता के विपरीत देवचन्द्र जी को उल्टी गंगा बहाने का क्या अधिकार है?

एक दिन वे पूरी तरह से तैयार होकर सभा में आये और अपना रोष शिकायत के रूप में प्रकट करने लगे। उन्होंने कान्ह जी भट्ट से कहा—

"हमारे लिये और देवचन्द्र जी के लिये अलग-अलग नियम क्यों हैं? यह किस शास्त्र में लिखा है कि एकादशी को भोजन किया जाये और द्वादशी को उपवास रखा जाये? इस तरह का धर्म विरुद्ध कार्य आपके सबसे अधिक प्रिय देवचन्द्र जी ही करते हैं। हमें इसका स्पष्टीकरण चाहिए।"

कान्ह जी भट्ट ने उत्तर दिया— "मुझे विश्वास है कि



देवचन्द्र जी धर्म विरुद्ध कुछ भी कार्य नहीं कर सकते , किन्तु यदि आप लोगों का ऐसा ही कहना है तो मैं उनसे पूछकर ही पूर्ण उत्तर दे सकूँगा।"

इसी बीच देवचन्द्र जी भी सभा में आ पहुँचे। कान्ह जी भट्ट ने पूछा – "देवचन्द्र जी! यहाँ उपस्थित सभी लोगों का कहना है कि आप एकादशी को तो भोजन करते हैं, जबकि द्वादशी को उपवास करते हैं। क्या यह सच है? वैसे मुझे यह विश्वास है कि आप धर्म के विरुद्ध कोई भी आचरण नहीं कर सकते।"

देवचन्द्र जी का सीधा-सपाट उत्तर था – "यह बात पूर्ण रूप से सत्य है। मैं ऐसा ही करता हूँ।"

"हम यह जानना चाहते हैं कि आप ऐसा क्यों करते हैं? एक ही भागवत ग्रन्थ को हम सभी मानने वाले हैं।

फिर भी, हमारे सिद्धान्तों में इतना टकराव क्यों है?

"हमारी यह मान्यता है कि भागवत रूपी वृक्ष की एक-एक डाल के पत्ते-पत्ते की रग-रग में आपकी दृष्टि है, जबकि अन्य कोई तो किसी एक डाल तक भी बहुत मुश्किल से पहुँचता है।"

"मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जब तक मैं भागवत कथा के श्रवण से अपनी आत्मा को आहार नहीं दूँगा, तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा।

"द्वादशी को भागवत चर्चा का आयोजन न होने से मुझे आत्मिक आहार नहीं मिलता, इसलिये मैं भोजन नहीं करता। इसके विपरीत, एकादशी को बहुत श्रद्धापूर्वक भागवत कथा होती है, इसलिये आत्मिक आहार पूर्ण मिलने से शरीर को भी मैं पूर्ण आहार देता हूँ।

इस श्रीमद्भागवत् ग्रन्थ में परब्रह्म द्वारा की गयी ब्रज लीला का वर्णन है। करोड़ों एकादशी के व्रत का फल परब्रह्म के प्रसाद के एक कण के बराबर भी नहीं है।

"एकादशी व्रत द्वारा केवल स्वर्ग आदि की ही प्राप्ति हो सकती है, जो महाप्रलय में लय हो जाने वाले हैं। मैं नश्वर लोकों का झूठा सुख नहीं चाहता।"

कान्ह जी भट्ट ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा कि देवचन्द्र जी ने आपके प्रश्नों का उत्तर दे दिया। अब आप लोगों को जो कुछ भी कहना हो उसे कहिए। सभी ने एक स्वर में स्वीकार किया कि श्री देवचन्द्र जी धन्य-धन्य हैं। हमसे बड़ी भूल हुई, जो इनके प्रति ऐसे विचार रखते थे।

## (६)

अटूट निष्ठा के साथ जब भागवत का श्रवण करते करते १४ वर्ष व्यतीत हो गये, तब उनकी उम्र ४० वर्ष की हो गयी।

कसौटी पर खरा सिद्ध होने के पश्चात् ही सफलता का भवन तैयार होता है। प्रत्येक महान आत्मा कसौटियों से गुजरकर ही संसार के सामने उच्च आदर्शों की स्थापना करती है।

श्री देवचन्द्र जी को बुखार लगने लगा, जिसके कारण उन्होंने लगभग दस-बारह दिन भोजन नहीं किया। तीव्र बुखार भी उनकी कथा श्रवण में बाधा नहीं डाल सका। उनकी दिनचर्या पूर्ववत् चलती रही।

एक दिन पिताश्री वैद्य जी को बुला लाये। वैद्य ने

औषधि देते हुए कहा- "इस औषधि का सेवन करने के पश्चात् खुली हवा में नहीं घूमना चाहिए, अन्यथा स्थिति गम्भीर हो सकती है।"

माता कुँवरबाई बोली- "यह भला थोड़े ही मानने वाले हैं। यह तो लाख मना करने के बाद भी नहीं मानेंगे और भागवत सुनने अवश्य जायेंगे।"

वैद्य ने अपनी दी हुई दवा वापस ले ली और स्पष्ट रूप से कहा- "जो तीव्र ज्वर की अवस्था में घूमेगा, उसे सन्निपात ज्वर हो सकता है। यदि ये संयम नहीं बरत सकते, तो मैं इनकी चिकित्सा नहीं कर सकता। कोई बुरी घटना होने पर मेरी चिकित्सा की गरिमा गिरेगी।"

मत्तू मेहता बोले- "आप चिन्ता न कीजिए। हम पूर्ण रूप से आपके निर्देशों का पालन करेंगे। यदि ये कुछ दिन

भागवत नहीं सुनेंगे, तो क्या अन्तर पड़ेगा।"

देवचन्द्र जी ने कहा – "धर्म है तो सब कुछ है, यदि धर्म नहीं तो मेरे लिये इस शरीर और संसार का कोई भी महत्व नहीं है। चाहे परिणाम कुछ भी हो, मैं तो भागवत कथा का श्रवण करने अवश्य ही जाऊँगा। मुझे इस कार्य से कोई भी रोक नहीं सकता।"

"बिना शरीर के धर्म का आचरण कैसे होगा? 'शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्।' ज्वर से ग्रसित शरीर जब तक स्वस्थ नहीं हो जाता, तब तक तुम्हें कथा-श्रवण के लिये बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।"

वैद्य जी सन्तुष्ट होकर चले गये। उनके जाने के बाद श्री देवचन्द्र जी को काढ़े के रूप में दवा दी गयी, किन्तु जैसे ही भागवत कथा आरम्भ होने का समय हुआ, श्री

देवचन्द्र जी के अन्दर जाने की तड़प पैदा हो गयी। उन्होंने अपने सिर और कानों को कपड़ों से ढका और लाठी के सहारे चल पड़े। माता-पिता ने समझाकर रोकना चाहा।

"पुत्र! यदि तुम एक दिन कथा सुनने नहीं जाओगे, तो क्या अन्तर पड़ जायेगा? भागवत सुनते-सुनते तो १४ साल बीत ही गये हैं।"

"नहीं! मैं तो अवश्य जाऊँगा। बिना कथा श्रवण किए मैं नहीं रह सकता।"

"मैं देखता हूँ, तुम कैसे चले जाते हो। हमारी बातों का तुम्हारे पर कोई असर ही नहीं हो रहा है।"

यह कहते हुए मत्तू मेहता जी ने मकान का बाहरी दरवाजा बन्द कर दिया। जबरन रोकने की इस प्रक्रिया

से देवचन्द्र जी मर्माहित हो उठे।

जब दय में कथा-श्रवण का ज्वालामुखी धधक रहा हो, तो उसे माता-पिता के मोह का जल भला कैसे बुझा सकता था? निःसन्देह, "धर्म निष्ठा" शरीर की चिन्ता से अधिक श्रेष्ठ होती है।

जबरन रोके जाने से व्यथित देवचन्द्र जी बोल पड़े—  
"मुझे इस प्रकार बलपूर्वक रोकना आप लोगों की नासमझी है। यदि मैं कथा-श्रवण में जाता हूँ, तो यह निश्चित है कि मेरी मृत्यु नहीं होगी, किन्तु यदि मुझे रोका जायेगा, तो भी मेरी आत्मा वहाँ अवश्य जायेगी। हाँ! आप लोगों के पास मेरा शरीर मृतक पड़ा हुआ मिलेगा।"

कुछ देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब किवाड़ नहीं खोला गया, तो दुःखी देवचन्द्र जी बेहोश होकर



जमीन पर गिर पड़े।

माँ की निश्छल ममता का वर्णन करने में कवियों के पास शब्दों का अभाव होता है। बड़े-बड़े मनीषी भी माता की ममता की गहराई नहीं माप पाते।

भला, माता कुँवरबाई को यह कैसे सहन हो सकता था कि उनके हृदय का टुकड़ा बेहोश पड़ा रहे। उन्होंने भावावेश में अपने पतिदेव को भी कठोर शब्द कह दिया। दरवाजा खोलकर दोनों ने देखा कि देवचन्द्र जी की आँखें तो मूँदी हुई थीं, चेहरा पीला पड़ चुका था। अचानक मत्तू मेहता जी कान के पास जोर से बोले—

"बेटे देवचन्द्र! कथा सुनने जाओ।"

लेकिन, न तो देवचन्द्र जी की आँखें खुलीं और न ही उन्होंने किसी को पहचाना।

फिर पिताश्री ऊँची आवाज में बोले – "देवचन्द्र! भट्ट जी की ओर से बुलावा आया है। तुम चले जाओ। अब तुम्हे कोई भी नहीं रोकेगा। कहो तो मैं भी तुम्हें पहुँचाने चलता हूँ।"

कुछ देर के पश्चात् देवचन्द्र जी को होश आया और वे उठ बैठे। कमजोरी के कारण उनका मुख सफेद हो गया था। मत्तू मेहता पुनः बोले—

"अब तुम्हें कोई भी मना नहीं करेगा। तुम खुशी – खुशी जाकर भागवत कथा का श्रवण करो।"

जब श्री देवचन्द्र जी लाठी पकड़कर खड़े हुए, तो पिताजी ने कहा— "कहो तो मैं तुम्हे वहाँ तक पहुँचा आऊँ।"

वे कुछ भी नहीं बोले और लाठी के सहारे चुपचाप

धीरे-धीरे श्याम जी के मन्दिर की तरफ चल दिए।

अपने प्रियतम के प्रति अटूट निष्ठा ने कसौटी पर उन्हें खरा सिद्ध करा दिया। भागवत सुनकर जैसे ही वे घर आये, ज्वर उतर गया।

स्वस्थ होने के लगभग १०-१५ दिन बाद श्याम जी के मन्दिर में सबसे महत्वपूर्ण घटना हुई - अपने प्राणवल्लभ का भौतिक नेत्रों से दर्शन-

श्याम जी के मन्दिर में प्रातःकाल का समय है। व्यासासन पर विराजमान कान्ह जी भट्ट भागवत कथा कर रहे हैं। श्रोतागण आनन्दरस में विभोर हैं। उनमें श्री देवचन्द्र जी भी बैठे हुए हैं। अचानक श्री देवचन्द्र जी को एक तेजपुन्ज दिखायी पड़ता है, जिसके मध्य से एक अति सुन्दर किशोर स्वरूप प्रकट होता है।

श्री देवचन्द्र जी मन्त्रमुग्ध होकर एकटक देखे जा रहे हैं। उफ! कितना सुन्दर स्वरूप है? मुस्कराता हुआ मुखारविन्द, घुँघराले बाल, सेंदुरिया रंग की पाग, श्वेत रंग का बागा, केसरिया रंग की इजार, आसमानी रंग की पिछौरी, नीले-पीले रंग का पटुका, हृदय कमल पर आये हुए पाँच हार.....।

एक मधुर मुस्कराहट के साथ वह स्वरूप बोल उठता है— "देवचन्द्र! क्या तुम मुझे पहचानते हो, जो इस तरह से बेसुध होकर मुझे देखे जा रहे हो।"

"मैं आपको पूर्ण रूप से तो नहीं पहचानता। बल्कि, मेरी अन्तरात्मा से इतनी ही आवाज आ रही है कि आप मेरे प्रियतम हैं।"

"तो बताओ, तुम्हारा निज घर कहाँ है?"

"मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।"

"तुम अब तक अपने को राधा मानते रहे हो तथा मुझे रास विहारी श्री कृष्ण, लेकिन यह सर्वांश सत्य है कि न तो तुम देवचन्द्र या राधा हो और न मैं रास विहारी श्री कृष्ण।

"यह सच है कि ब्रज और रास में मेरी ही आवेश शक्ति ने श्री कृष्ण की भूमिका निभायी थी। उस लीला में तुम अवश्य राधा के रूप में थे। मैं तो अक्षर से भी परे सच्चिदानन्द अक्षरातीत श्री राज हूँ तथा तुम मेरी आनन्द शक्ति श्यामा हो। तुम्हारी आत्मा ने इस माया में देवचन्द्र नामक तन धारण कर रखा है।"

"मेरे प्राणवल्लभ! यदि मैं आपकी आह्लादिनी शक्ति हूँ, तो आपने मुझे इस झूठी माया में क्यों डाल रखा है ?

मुझे तो अब निज घर ही ले चलिये।"

"तुम इस खेल में अकेले नहीं हो , बल्कि तुम्हारे साथ वे सभी आत्माएँ हैं, जो ब्रज और रास में थीं। ब्रज में तुम्हारे साथ ११ वर्ष तथा ५२ दिन तक लीला हुई। इसके पश्चात् निराकार से परे योगमाया के ब्रह्माण्ड में महारास की लीला की गई।

"तुमने परमधाम में मुझसे माया का खेल देखने की इच्छा प्रकट की थी। उसे पूर्ण करने के लिये ही मैंने तुम्हें ब्रज और रास दिखाया था। अब इस तीसरे जागनी के खेल में तुम्हें ज्ञान द्वारा जाग्रत होना है , तभी तुम परमधाम चल सकोगे। परमधाम में ही तुम्हारे मूल तन हैं। वहाँ अनन्त प्रेम और आनन्द की लीला होती है। वहाँ हमारा और तुम्हारा अखण्ड नूरमयी अद्वैत स्वरूप है।

"मैंने तुम्हे संक्षेप में सब कुछ बता दिया है। यदि कुछ और पूछना चाहते हो तो पूछ लो, क्योंकि इस तरह से प्रत्यक्ष दर्शन तुम्हें पुनः नहीं होगा।"

"तो आप कहाँ रहेंगे?"

"मैं तुम्हारे धाम हृदय में विराजमान हो जाऊँगा , अर्थात् तुम्हारे हृदय में निवास करूँगा तथा सबको जागृत करूँगा।"

"जब आप पल-पल मेरे हृदय धाम में ही निवास करेंगे, तो मुझे चिन्ता किस बात की है?"

इसके साथ ही वह मनमोहक स्वरूप ओझल हो गया। श्री देवचन्द्र जी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी इस दृश्य या वार्ता की भनक उस समय नहीं लग सकी।

अपने हृदय धाम में प्रियतम के विराजमान हो जाने

के पश्चात् श्री देवचन्द्र जी की ब्राह्मी अवस्था हो गयी। वे त्रिकालदर्शी हो गये। उनकी आत्मिक नजर अखण्ड ब्रज, रास, तथा परमधाम को देखने लगी।

उन्हें स्पष्ट विदित हो गया कि वे पूर्वकाल में चन्द्रवंशी देवापि थे, जो हिमालय पर्वत में सिद्ध पुरुषों के गोपनीय स्थान कलाप ग्राम में रह रहे थे। देवापि शान्तनु के भाई थे। रोग ग्रसित होने के कारण उन्हें गद्दी का अधिकारी नहीं समझा गया, इस कारण वे जंगल में तप करने चले गये। महाभारतकालीन भीष्म शान्तनु के ही पुत्र थे। देवापि के साथ सूर्यवंशी राजा मरु भी रह रहे थे। उनके तन में श्यामा जी ने प्रवेश किया है तथा मरु द्वारा धारण किये गये तन का नाम मिहिरराज है, जिसमें परमधाम की इन्द्रावती (इन्दिरा) आत्मा ने प्रवेश किया है।

जीव आदिनारायण का अंश है। वह ८४ लाख



योनियों में कर्मफल भोगता रहता है। आत्मा अक्षरातीत के आनन्द रूपी सागर की लहर है। वह गर्भ में नहीं जाती, बल्कि जीव के उपर बैठकर मायावी खेल को देखती है। वस्तुतः वह परब्रह्म की अर्धांगिनी है।

गीता, भागवत, तथा अन्य धर्मग्रन्थों के सभी रहस्य उन्हें स्पष्ट रूप से विदित हो गये। तीन पुरुष, उनके तीन धाम (वैकुण्ठ, अक्षरधाम, तथा परमधाम), तीन लीला, तीन सृष्टि आदि के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से अल्प मात्र भी संशय नहीं रह गया।

जिस शब्दातीत परमधाम तथा अक्षरातीत परब्रह्म के नूरी युगल स्वरूप की उन्हें अनुभूति हो रही थी, उसका ज्ञान दूसरों को देने के लिये उनका हृदय तड़प रहा था। इसी सन्दर्भ में उनकी भेंट गाँगजी भाई से हुई, जो नगर के एक प्रतिष्ठित एवं धनवान व्यक्ति होने के साथ-साथ

भागवत कथा में उनके साथी की भूमिका भी निभाते थे।

मार्ग में दोनों ही खड़े होकर बातें करने लगे—

"देवचन्द्र जी! मैं देख रहा हूँ कि कई दिनों से आप भागवत कथा का श्रवण करने नहीं आ रहे हैं।"

"हाँ, मैं कुछ कारणवश नहीं जा सका हूँ। मैं भागवत के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें कहना चाहता हूँ।

"भट्ट जी कहा करते हैं कि पाँच तत्व , तीन गुण, तथा चौदह लोक का महाप्रलय में नाश हो जाता है।

"किन्तु, वे यह भी कहते हैं कि व्रज और रास की लीला अखण्ड है और अनन्त काल तक होती रहेगी। प्रश्न यह है कि वे लीलायें कहाँ हो रही हैं ? इस चौदह लोक के ब्रह्माण्ड के अन्दर या परे?"

"यह तो बहुत ही रहस्यमयी बात है। मैंने तो इसके

बारे में कभी सोचा ही नहीं।"

"वेद, गीता आदि सभी ग्रन्थों का यह स्पष्ट कथन है कि सच्चिदानन्द परमात्मा तो अक्षर से परे अक्षरातीत है। अक्षर के स्वप्न में ही यह क्षर का सारा ब्रह्माण्ड खड़ा है। प्रिय गाँगजी भाई! तुम्हीं बताओ, यह दुनिया कितने भ्रम में पड़ी है, जो उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को इस असत्, जड़, और दुःखमय क्षर संसार के कण-कण में माने बैठी है?"

"हाँ! आपका यह कथन तो बिल्कुल सत्य है।"

"गाँगजी भाई! यह संसार इतना नादान है कि श्री कृष्ण की त्रिधा लीला को भी नहीं समझता। ब्रज में ११ वर्ष ५२ दिन तक अक्षरातीत ने लीला की। ११ दिन, जिसमें सात दिन गोकुल में तथा चार दिन मथुरा में

लीला बाँके विहारी की शक्ति ने की, तथा ११२ वर्ष की लीला वैकुण्ठ विहारी विष्णु भगवान ने की। अलग-अलग समय में अलग-अलग शक्तियों के होने के कारण, १०० वर्ष विरह में तड़पने के बाद भी न तो गोपियाँ मथुरा या द्वारिका गयीं और न श्री कृष्ण जी ही स्वयं आये।"

"भट्ट जी से कथा सुनते हुए इतने वर्ष बीत गये, लेकिन उन्होंने तो इस प्रकार की कोई बात ही नहीं की। मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है कि आपको इस प्रकार का अलौकिक ब्रह्मज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ है?"

इतने में एक पानी भरने वाली स्त्री वहाँ से गुजरी। इसके पहले दो बार वह गुजर चुकी थी। तीनों बार उसने यही देखा कि ये दोनों महानुभाव खड़े होकर ही सत्संग कर रहे हैं। अन्त में उससे रहा नहीं गया और बोल पड़ी—

"मैं तीन बार आप लोगों के पास से गुजर चुकी हूँ। तीनों बार मैंने आप दोनों को खड़े-खड़े ही बातें करते हुए देखा है। आप दोनों सत्संग में इतने मस्त हैं कि आपको शरीर की थकान या समय की अधिकता की कोई चिन्ता ही नहीं है।"

किन्तु, इस कथन का उन दोनों के ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वे पूर्ववत् अपने सत्संग में मस्त रहे।

दूसरे दिन भी मार्ग में उनका सत्संग प्रारम्भ हो गया। श्री देवचन्द्र जी ने कहा – "गाँगजी भाई! यह सारा हृद का ब्रह्माण्ड क्षर है। इसके नियामक आदिनारायण हैं, जो अक्षर ब्रह्म के मन के स्वप्न के स्वरूप हैं। अक्षर ब्रह्म क्षर से परे हैं। उनकी लीला बेहद में होती है। अक्षरातीत का स्वरूप अक्षर से भी परे है। उनकी लीला परमधाम में

होती है, जहाँ के कण-कण में प्रेम, आनन्द, और परब्रह्म का असीम सौन्दर्य लीलामग्न है।"

"इस तरह का अलौकिक ब्रह्मज्ञान तो मैंने कभी सुना ही नहीं था। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने इसे कैसे पाया?"

"लगभग १६ वर्ष की उम्र में कच्छ जाते समय मुझे पठान सैनिक के वेश में प्रियतम परब्रह्म का दर्शन हुआ था। कच्छ में मैंने अनेक मत-पन्थों में खोज की, अनेक प्रकार की कठोर साधनायें भी की, लेकिन दीदार नहीं हुआ।

"तत्पश्चात् मैं भोजनगर आया, जहाँ मैं हरिदास जी की सेवा में रहकर अखण्ड ब्रज-रास का ध्यान करने लगा। वहाँ ध्यानावस्था में मुझे एक दिन प्रियतम परब्रह्म

ने श्री कृष्ण के रूप में दर्शन दिया।

"२६ वर्ष की उम्र में मैं नवतनपुरी धाम (जामनगर) आया। यहाँ पर मैंने निष्ठाबद्ध होकर १४ वर्ष तक भागवत कथा का श्रवण किया तथा चितवनि (ध्यान) की। प्रियतम ने एक दिन प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दिया। मुझे अपने स्वरूप की पहचान देकर मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये। उसके बाद मेरे मुख से जो ब्रह्मज्ञान की वर्षा हो रही है, वह मैं नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मेरे अन्दर से स्वयं परब्रह्म ही कह रहे हैं।"

"जब आपके अन्दर सच्चिदानन्द परब्रह्म की आवेश शक्ति विराजमान है, तो मेरे लिये आपका भी स्वरूप प्रियतम श्री राज जी का ही है। अग्नि में तपने के बाद लोहा भी तो अग्नि का ही स्वरूप बन जाता है।

"मेरी यही चाहत है कि मैं आपको सपरिवार अपने घर ले चलूँ तथा जी भरकर आपकी सेवा करूँ। वहाँ पर रहकर आप अपने ब्रह्मज्ञान का अमृत सबको पिलाइये। ऐसा होने पर मैं अपने को धन्य-धन्य समझूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरे अनुरोध को ठुकरायेंगे नहीं।"

"जैसी आपकी इच्छा।"



## (७)

गाँगजी भाई के घर पर ब्रह्मज्ञान की वर्षा होने लगी। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से अलौकिक ज्ञान सुनने के लिये परमधाम की आत्माओं की भीड़ बढ़ने लगी।

गाँगजी भाई तन, मन, धन से सेवा में पूर्ण रूप से समर्पित थे। अनेक प्रकार की चमत्कारिक लीलाएँ भी शुरू हो गयीं। श्री देवचन्द्र जी ने परमधाम की नूरमयी, चेतन जल वाली यमुना जी की शोभा का जैसे ही वर्णन किया, वैसे ही यमुना जी का श्वेत जल खिलखिलाता हुआ बह निकला। सबने उस जल का पान किया और स्नान भी किया।

जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी चर्चा करते थे, तो

उनके अन्दर से परब्रह्म का आवेश प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देता था। श्री राज जी सबको दर्शन देकर भोजन भी करते थे तथा प्रेमपूर्वक बातें भी करते थे। एक बार सोने की कँसेड़ी भी उन्होंने दी।

इस प्रकार की असम्भव सी लगने वाली चमत्कारिक क्रियाओं की चर्चा सारे नगर में फैल गयी। ब्रह्मज्ञान के रस में सराबोर आत्माओं ने पहचाना कि इस तन में साक्षात् परब्रह्म की आवेश शक्ति ही लीला कर रही है। सबने उन्हें "श्री निजानन्द स्वामी" या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में स्वीकार किया। श्री देवचन्द्र जी की शरण में आने वाले "सुन्दरसाथ" कहलाये।

श्री देवचन्द्र जी ने जिन हरिदास जी से दीक्षा ली थी, वही हरिदास जी श्री निजानन्द स्वामी के चरणों में आकर सपरिवार तारतम्य ज्ञान ग्रहण किये।

सम्पूर्ण विश्व में यह अनोखी घटना है , जिसमें एक गुरु अपने शिष्य के चरणों में आकर ब्रह्मज्ञान ग्रहण करे और उसे ब्रह्मस्वरूप माने।

सत्य के फैलाव में माया हमेशा ही बाधाएँ खड़ी करती है। चुगलखोर को चुगली करने में ही संसार का सबसे बड़ा सुख प्रतीत होता है।

एक चुगलखोर ने नगर के कोतवाल से जाकर यह चुगली कर दी कि गाँगजी भाई के घर स्त्री-पुरुष साथ-साथ बैठा करते हैं। इसकी जाँच होनी चाहिए कि कहीं इन लोगों की नीयत में कुछ खोट तो नहीं है।

कोतवाल ने दो सिपाहियों को वास्तविकता का पता लगाने हेतु भेजा। चुगलखोर ने उन्हें गाँगजी भाई के मकान का पता बता दिया। एक सिपाही को गाँगजी भाई

के मकान में दीपक जलता हुआ दिखाई दिया। जैसे-  
जैसे वह दीपक के निकट पहुँचने की कोशिश करता,  
दीपक उतनी ही दूरी पर हमेशा दिखायी पड़ता। वह  
दीपक के बिल्कुल पास तक पहुँच नहीं पाया। वह सारी  
रात चलता रहा। प्रातःकाल उसने स्वयं को जामनगर से  
१२ कोस दूर धरोल में पाया। एक पानी भरने वाली स्त्री  
से उसने पूछा-

"यह कौन सा गाँव है?"

"यह तो धरोल है।"

"क्या यह जामनगर नहीं है?"

"नहीं, जामनगर से १२ कोश दूर मोहबड़जी का गाँव  
धरोल है। लगता है तुम भटक गये हो।"

"उस चुगलखोर के झाँसे में आने के कारण ही आज

मेरी यह दुर्दशा हुई है। अब मेरे पास वापस लौटने के सिवाय अन्य कोई भी चारा नहीं है।"

दूसरा सिपाही गाँगजी भाई के मकान से पूर्व ही एक कुँए की किनार पर परिक्रमा देता रहा। सवेरा होने पर उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने सोचा यदि अन्धेरे में उसका पाँव फिसल जाता तो वह कुँए में गिर पड़ता। ऐसी अवस्था में सुनसान रात्रि में उसे कौन बचाता?

दोनों सिपाहियों ने कोतवाल के पास आकर कहा – "उस चुगलखोर ने तो हमें मौत के ही मुख में डाल दिया था। उसकी नीयत हमें मरवाने की थी। परमात्मा की कृपा से ही हम जीवित बच पाये हैं। यदि वह चुगलखोर मिल जाये तो तलवार से हम उसकी गर्दन उड़ा देंगे।"

इस प्रकार श्री निजानन्द स्वामी द्वारा जामनगर में बहुत सी चमत्कारिक लीलायें की गयी, किन्तु उनके अन्दर विराजमान परब्रह्म की आवेश शक्ति को कुछ विरले ही पहचान पाये।

इसी नवतनपुरी में एक लोहाणा (सूर्यवंशी) क्षत्रिय केशव राय का परिवार भी रह रहा था। श्री केशव जी जामनगर रियासत के दीवान (प्रधान मंत्री) थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम धनबाई था।

श्री केशव जी के पाँच पुत्र थे – १. हरिवंश २. श्यामल ३. गोवर्धन ४. मिहिरराज ५. उद्धव।

यह वही मिहिरराज जी हैं, जिनके अन्दर परमधाम की इन्द्रावती आत्मा ने प्रवेश किया तथा स्वयं परब्रह्म श्री राज जी ने विराजमान होकर लीला की है। एक दिन

इन्हीं के चरणों में सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति मिलनी है।

हरिवंश जी की पत्नी का नाम मेघबाई था। उनकी भतीजी थी अजबाई, जो गाँगजी भाई के सुपुत्र श्याम जी को ब्याही थी।

अजबाई हरिवंश के यहाँ जब भी आती थी, तो अपने यहाँ धनी की आवेश लीला का वर्णन करती थी। यह सुनकर मेघबाई ने अपने देवर गोवर्धन को सच्चाई का पता लगाने के लिये कहा। गोवर्धन ने स्वयं न जाकर अपनी पत्नी पद्मा को कहा। पद्मा द्वारा चमत्कारिक लीला का वर्णन किये जाने पर गोवर्धन अपनी आत्मा की जाग्रति के लिये श्री निजानन्द स्वामी जी की शरण में गये।

गोवर्धन जी गाँगजी भाई के सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के चरणों में समर्पित हो चुके थे। वहाँ पर आवेश लीला के समय जो अक्षरातीत श्री राज जी का दर्शन होता था, उसे घर आकर सबको सुनाया करते थे।

श्री मिहिरराज जी की आत्मा इस प्रसंग को सुनकर सद्गुरु महाराज के चरणों में आने के लिये बहुत तड़पती थी, लेकिन १२ वर्ष की छोटी अवस्था होने के कारण गोवर्धन जी अपने साथ नहीं ले जाते थे।

एक दिन मिहिरराज अपने भाई गोवर्धन जी के पीछे-पीछे चल पड़े। गाँगजी भाई के मकान में अपने साथ वे मिहिरराज जी को नहीं ले गये, बल्कि हाथ छुड़ाकर चले गये। अकेले मिहिरराज द्वार के बाहर खड़े रोते रहे।

अन्दर जाकर गोवर्धन जी ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र



जी के चरणों में प्रणाम किया और बोले - "सद्गुरु महाराज! मेरा छोटा भाई बहुत दिनों से आपके चरणों में आने का इच्छुक है। उसकी छोटी आयु के कारण मैं उसको नहीं लाता था, किन्तु आज मेरे पीछे-पीछे आया है और दरवाजे के बाहर खड़ा होकर रो रहा है।"

"तुम उसे अवश्य लाओ। छोटी उम्र में हृदय बहुत निर्मल होता है, जिससे भक्तिभाव प्रगाढ़ हो जाता है। जब ध्रुव को मात्र पाँच वर्ष की ही उम्र में भगवान के चरण कमल प्राप्त हो गये थे, तो उसे तुम क्यों नहीं ला रहे हो?"

गोवर्धन अपने भाई मिहिरराज को लेकर श्री निजानन्द स्वामी के चरणों में आए। मिहिरराज को देखते ही सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने पहचान लिया कि अरे! यह तो परमधाम की वही इन्द्रावती की आत्मा है,

जिसके द्वारा आगे की सारी लीला होनी है।

जैसे ही श्री मिहिरराज जी ने सद्गुरु महाराज के चरणों में शीश झुकाया , उनके हृदय में जाग्रत बुद्धि विराजमान हो गयी।

एकान्त में श्री निजानन्द स्वामी ने मिहिरराज जी को बताया- "तुम्हारे तन में परमधाम की आत्मा (इन्द्रावती) है। मेरे तन की लीला पूर्ण होने के बाद परब्रह्म तुम्हारे अन्दर विराजमान होकर लीला करेंगे।

"तुम्हारे तन से परमधाम की ब्रह्मवाणी उतरेगी। सभी लोग तुम्हें परब्रह्म का स्वरूप समझेंगे। तुम हिन्दू धर्मग्रन्थों में वर्णित विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप के रूप में जाहिर होंगे। इसी प्रकार कतेब परम्परा वाले तुम्हें आखरुल इमाम मुहम्मद महदी के रूप में जानेंगे।

"परमधाम की दो आत्मायें शाकुण्डल तथा शाकुमार राजघराने में आयी हुई हैं। जब वे दोनों जाग्रत हो जायेंगी, तो माया का यह खेल समाप्त हो जाएगा। इस सम्पूर्ण जागनी का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है।"

श्री मिहिरराज जी ने सद्गुरु महाराज के वचनों को अन्तर्मन में बसा लिया।

गोवर्धन जी तथा मिहिरराज में अटूट स्नेह था। इसका कारण यह था कि लौकिक रीति से वे सगे भाई तो थे ही, इन दोनों के अन्दर परमधाम की आत्मा भी थी। दोनों ही श्री निजानन्द स्वामी के चरणों में बैठकर चर्चा सुनते तथा साथ-साथ ही घर आते-जाते। किन्तु, एक दिन.....

चर्चा सुनकर लौटने पर बड़े भाई श्यामल जी बरस

पड़े- "तुम दोनों बिगड़ चुके हो। तुम दोनों को घर के किसी भी काम की कोई चिन्ता नहीं रहती है। दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह पिसने के लिये क्या मैं ही हूँ? तुम्हारी उपस्थिति तो केवल भोजन के समय ही होती है।

"यदि भविष्य में तुम दोनों ने गाँगजी भाई और अपने गुरुजी का साथ नहीं छोड़ा, तो पिताश्री से कहकर उन दोनों को ही इस नगर से निकलवा दूँगा।"

अपने सद्गुरु के प्रति इस प्रकार के कठोर वचन भला दोनों भाई कैसे सहन कर सकते थे? उन्होंने अपनी तलवारें निकाल लीं और अपने सगे भाई श्यामल जी को मारने के लिये दौड़े। श्यामल जी घर की तरफ भागे। उन्हें माता धनबाई जी ने छिपा लिया।

पिता श्री केशव जी के आने पर यह सारा वृत्तान्त उनके पास पहुँचा। उन्होंने दोनों भाइयों को बुलाकर कहा—

"जिस देवचन्द्र जी से तुम दोनों भागवत की कथा सुनते हो, उन्होंने १४ वर्षों तक श्री कान्ह जी भट्ट से श्याम जी के मन्दिर में कथा सुनी है। इसलिये तुम दोनों को मात्र कान्ह जी भट्ट से ही भागवत की कथा सुननी चाहिए।"

"यदि वे हमारे प्रश्नों का उत्तर दे देवें, तो हम अवश्य ही उनकी चर्चा सुनेंगे।"

पिताश्री दोनों भाइयों को साथ लेकर भट्ट जी के पास जाकर बोले— "भट्ट जी! मेरे दोनों बच्चे भागवत के कुछ प्रश्नों का समाधान चाहते हैं। आप ध्यानपूर्वक इनके

प्रश्नों को सुनकर उत्तर देने का कष्ट करें।"

दोनों भाइयों ने पूछा – "भट्ट जी! कितने गुण हैं? कितने लोक हैं? कितने तत्व हैं और कितनी प्रकार की प्रलय हैं?"

भट्ट जी ने उत्तर दिया – "सत्व, रज, तम के अतिरिक्त कोई चौथा गुण नहीं है।

"आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कोई छठा तत्व नहीं है।

"चौदह लोक के अलावा अन्य कोई पन्द्रहवाँ लोक नहीं है तथा चार प्रकार की प्रलय हैं— १. नित्य प्रलय २. नैमित्तिक प्रलय ३. प्राकृत प्रलय ४. महाप्रलय।"

"जब महाप्रलय होती है, तब परब्रह्म कहाँ रहते हैं?"

"महाप्रलय में परब्रह्म क्षीर सागर में अक्षयवट वृक्ष के

ऊपर अंगुष्ठ के बराबर रूप धारण करके रहते हैं।"

"जब महाप्रलय में तीन गुणों, पाँच तत्त्वों, तथा १४ लोकों का नाश हो जाता है, तो स्पष्ट है कि क्षीर सागर भी अस्तित्व में नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में परब्रह्म का अक्षयवट वृक्ष के ऊपर निवास करना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह वृक्ष भी तो नहीं रहेगा।"

भट्ट जी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या उत्तर दें। अन्त में उन्होंने थक-हारकर कहा— "इन बच्चों के प्रश्नों का उत्तर तो ब्रह्मा जी के पास भी नहीं है।"

अपने बच्चों के अलौकिक ज्ञान को देखकर पिताश्री केशव जी गदगद हो उठे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि अब तुम्हें घर के सम्बन्ध में कोई भी चिन्ता करने की

आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी जहाँ भी इच्छा हो, वहाँ जाकर प्रसन्नतापूर्वक ज्ञान चर्चा का लाभ उठा सकते हो।



(८)

श्री मिहिरराज जी के मन में यह बात हमेशा कौंधती रहती थी कि हम जब परमधाम से आये हैं, तो वह दिखायी क्यों नहीं देता ? हम अपने मूल तनों को भी क्यों नहीं देख पा रहे हैं?

उन्होंने अपने मन में विचारा कि हमारे मन एवं इन्द्रियों में अवगुण हैं, जिसके कारण परमधाम नहीं दिखायी देता। यदि मैं अपने अवगुणों को निकाल दूँ, तो अवश्य ही परमधाम दिखायी देने लगेगा।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से भी उन्होंने प्रार्थना की कि आप मेरी इन्द्रियों के अवगुणों को निकाल दीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हारे अन्दर परमधाम की आत्मा है, इसलिये तुममें किसी भी प्रकार का अवगुण

नहीं है।

किन्तु, इस उत्तर से मिहिरराज जी को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने अपने मन पर नियन्त्रण करने के लिये आहार को धीरे-धीरे इतना घटा दिया कि भोजन की मात्रा दो पैसे के वजन के बराबर ही रह गयी।

उनका शरीर बहुत शिथिल होकर पीला पड़ गया। परमधाम की चर्चा सुनने पर उनके नेत्रों से विरह के आँसू निकलते रहते थे।

धन-सम्पत्ति को माया का स्वरूप मानकर उन्होंने अपनी पत्नी के सभी आभूषण उतरवाकर सद्गुरु महाराज के चरणों में सौंप दिये तथा यह प्रार्थना की कि मेरे अवगुणों को आप निकाल दीजिए। मार्ग में यदि कोई मित्र सामने दिख जाता, तो उससे नजर बचाकर चल देते,

ताकि वह मेरे और श्री राज जी के एकनिष्ठ प्रेम में बाधक न बने।

युगल स्वरूप तथा परमधाम के ध्यान में हमेशा लगे रहने से परब्रह्म की कृपा से उन्हें निज धाम तथा अपनी परआत्म की एक झलक मिल गयी, किन्तु इस लक्ष्य तक पहुँचने में उनका शरीर पूर्ण रूप से जर्जर हो गया।

श्री मिहिरराज जी के अति कृशकाय हो जाने पर बालबाई सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के पास पहुँची और बोली— "गोवर्धन ठाकुर ने तो पहले ही तन छोड़ दिया है और मिहिरराज भी उसी राह पर हैं। उनका शरीर बहुत जर्जर हो चुका है। आप उन्हें क्यों नहीं समझाते हैं?"

श्री देवचन्द्र जी ने कहा— "मिहिरराज! तुम्हारे दिल में जो भी इच्छा है, उसे स्पष्ट रूप से बताओ।"

"मेरे अवगुण बताइये।"

"तुमने मुझे अब तक क्या पहचाना है? जब तुम व्रज लीला की बातें सुनते हो, तो तुम्हारी आँखों से आँसू क्यों बहते हैं?"

"मेरे सामने जब भी आप परमधाम का वर्णन करते हैं, तो मेरी आँखों से आँसू बहते हैं। आपकी वाणी सुनकर मुझे सुख मिलता है।"

अचानक बालबाई जी बोलीं— "मिहिरराज! यदि तुम सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप की वास्तविक पहचान कर लिये होते तो एक पल भी अपने सद्गुरु महाराज से दूर नहीं होते, बल्कि उनकी प्रद्विक्षणा करते रहते।"

इस बात पर श्री निजानन्द स्वामी ने कहा— "यदि

तुमने मुझे धाम धनी के स्वरूप में पहचान लिया होता, तो एक पल के लिये भी मुझसे अलग नहीं होते। तुम्हारे अन्दर कोई भी अवगुण नहीं है। अब बताओ, तुम्हारे मन में क्या इच्छा है?"

"आपको जब परमधाम दिखायी देता है, तो मुझे क्यों नहीं दिखायी देता?"

"यह तो मूल स्वरूप श्री राज जी के हुक्म से होता है। श्री राज जी ही मेरे अन्दर विराजमान होकर परमधाम का वर्णन करते हैं। मेरे धामगमन के पश्चात् जब परब्रह्म तुम्हारे अन्दर लीला करेंगे, तो तुम्हें भी परमधाम दिखायी पड़ने लगेगा। यदि तुम्हें अभी ज्यादा जल्दी है, तो मुझे इसके लिये अपना तन छोड़ना पड़ेगा। क्या तुम्हें यह स्वीकार है?"

अपने सद्गुरु महाराज का यह कथन सुनकर मिहिरराज जी बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने मन में विचारा कि परमधाम देखने की जल्दी में अपने सद्गुरु को शरीर छोड़ने के लिये मजबूर करना महापाप है। इसके साथ ही कसनी का मार्ग भी उन्होंने छोड़ दिया।

बालबाई ने श्री निजानन्द स्वामी से कहा— "धाम धनी! आप इन्हें माया के किसी कार्य में लगाइये, ताकि ये उसमें उलझे रहें। खाली बैठे रहने से इनमें वैराग्य और कठोर साधना के प्रति झुकाव बढ़ जाता है।"

पुराण संहिता तथा माहेश्वर तन्त्र आदि ग्रन्थों में क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत का बहुत सुन्दर वर्णन है। श्री निजानन्द स्वामी ने उन्हें इन ग्रन्थों को खोजकर लाने के लिये अमदाबाद भेजा।

श्री मिहिरराज अमदाबाद गये तथा धनी की कृपा से उन ग्रन्थों को खोजकर सद्गुरु महाराज के चरणों में समर्पित कर दिया।

गाँगजी भाई के एक सगे भाई खेता भाई भी थे, जो २५ वर्षों से अरब में व्यवसाय कर रहे थे। उनके पास बहुत अधिक धन एकत्र हो गया था।

श्री निजानन्द स्वामी ने मिहिरराज जी को बुलाकर कहा— "प्रिय मिहिरराज! यदि तुम अरब में खेता भाई के पास जाकर उनसे धन ले आओ, तो वह सुन्दरसाथ की सेवा में लग सकता है। वहाँ जाकर तुम खेताभाई की आत्मा को जाग्रत भी कर सकते हो। इससे तुम्हें सुन्दरसाथ में बहुत अधिक शोभा मिलेगी।"

श्री मिहिरराज सद्गुरु महाराज की आज्ञा को

शिरोधार्य करते हुए अरब देश के लिये प्रस्थान कर दिए।



## (९)

श्री मिहिरराज फाल्गुन मास में अरब के लिये प्रस्थान किये। चालीस दिन नौका की यात्रा के पश्चात् वे अरब पहुँचे।

खेता भाई के पास पहुँचकर उन्होंने गाँगजी भाई का लिखा हुआ पत्र सौंपा। पत्र पढ़कर खेता भाई बहुत प्रसन्न हुए और गदगद होकर बोले—

"प्रिय मिहिरराज! आज से लगभग २५ वर्ष पहले मैं यहाँ व्यापार हेतु आया था। मैंने धन तो बहुत कमाया, किन्तु आत्मीय प्रेम और शान्ति से कोसों दूर रहा हूँ।

"इस रेगिस्तानी देश में आत्मीयजन तो बहुत बड़े सौभाग्य से ही मिलते हैं। आपके आने मात्र से ही मेरे हृदय में शान्ति की फुहारें उमड़ रही हैं। मेरे व्यापार का

सारा उत्तरदायित्व आपके ऊपर है। आप जिस प्रकार उचित समझें, वैसे ही धन की उगाही कर लें।"

"आपने बहुत अधिक धन कमा लिया है। सभी की इच्छा है कि आप यहाँ से नवतनपुरी चलिये तथा सद्गुरु महाराज के चरणों में रहकर आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त कीजिए।"

श्री मिहिरराज खाली समय में खेता भाई को सत्संग का लाभ देते थे, किन्तु उन पर कोई असर नहीं होता था।

जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज बोने पर अंकुरित नहीं होता, उसी प्रकार पात्रता न होने पर आध्यात्मिक ज्ञान भी हृदय में नहीं उतरता है।

चार वर्ष बाद खेताभाई का देह-त्याग हो गया। अति

आवश्यक कार्यवश मिहिरराज बाहर गये हुए थे। उस समय ऐसी स्थिति में वहाँ के क्षेत्रीय अधिकारी शेख सल्लाह ने खेता भाई की सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया।

वापस लौटने पर श्री मिहिरराज जी ने स्वयं को खेताभाई का धर्म भाई घोषित कर सम्पत्ति पर अपने अधिकार का दावा किया, किन्तु उस मुस्लिम अधिकारी की नीयत में खोट था। उसने मिहिरराज जी की हत्या कराने का निर्णय लिया। यह बात जब मिहिरराज को मालूम हुई तो वे रात को ही अपने निवास स्थान को छोड़कर बादशाह से मिलने के लिये चल पड़े।

इस्लामिक सल्तनत के बादशाह इमाम (खलीफा) के दरबार में वे दो मास तक प्रयास करते रहे, लेकिन किसी ने भी उनकी बात नहीं सुनी। वे निराश होकर वहाँ

से आ ही रहे थे कि परब्रह्म की जोश शक्ति ने एक अरब निवासी व्यक्ति के रूप में कहा—

"हे अजनबी! तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? तुम्हारा चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है?"

जब मिहिरराज जी ने देखा कि यह व्यक्ति इतने अपनेपन से बोल रहा है, तो उन्होंने सारी बात बता दी—

"मैं भारत से आया हूँ। मेरे भाई खेता भाई की मृत्यु के पश्चात् उनकी सारी सम्पत्ति का अधिकार मेरा है, किन्तु शेख सल्लाह ने उस पर बलपूर्वक कब्जा कर रखा है। मैं बादशाह के दरबार में दो माह से भटक रहा हूँ, लेकिन वहाँ पर मेरी फरियाद सुनने वाला भला कौन है?"

"तुम्हें चिन्ता करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

मैं तुम्हें एक पत्र लिखकर देता हूँ, जिसे पढ़ने के बाद बादशाह अवश्य ही तुम्हारी बात मानेगा। जब बादशाह जुम्मे की नमाज पढ़ने के लिये इधर से गुजरे, तो तुम बेधड़क होकर बिना डरे उनका पल्ला पकड़कर झटक देना तथा मेरा यह पत्र देते हुए ये बात कहना कि बादशाह! यदि आपने मेरा न्याय नहीं किया, तो जब सातवें दिन (रोज-ए-हश्र) की लीला में अल्लाह तआला इन्साफ के तख्त पर बैठेंगे, मैं उस दिन अवश्य ही आपका पल्ला पकड़कर अपना इन्साफ करा लूँगा।

अब श्री मिहिरराज उचित समय की प्रतीक्षा करने लगे। जब बादशाह अपने लश्कर के साथ नमाज पढ़ने जा रहा था, तभी मिहिरराज तेज कदमों से चलते हुए बादशाह के नजदीक पहुँचे और बिना कुछ आगा-पीछा सोचे जोर से पल्ला झटक दिया, जिससे उसके लिबास

की कस टूट गयी।

मुस्तैद सैनिकों ने अपने हथियार सम्भाल लिये। वे अभी प्रहार करने को ही थे कि बादशाह ने संकेत करके सबको रोक दिया और मिहिरराज जी की ओर देखते हुए कहा— "ला तखौफ या बनी, ऐ बेटे! डरो नहीं। तुम अपनी सारी बात मुझे सुनाओ।"

मिहिरराज ने पत्र देते हुए सारी बात बताने के बाद दृढ़तापूर्वक कहा— "मेरे सद्गुरु महाराज ने खेताभाई का धन लाने की जो सेवा सौंपी थी, उसका उत्तरदायित्व मैं आपको सौंपता हूँ। यदि इस समय आप सही-सही इन्साफ नहीं करेंगे, तो ईद-उल-फितर (न्याय के दिन) को मैं अल्लाह तआला के सामने अवश्य ही आपका पल्ला पकड़कर अपना इन्साफ करा लूँगा।"

कियामत और न्याय के दिन की बात सुनकर बादशाह आन्तरिक रूप से कुछ सहम सा गया और आकाश की तरफ देखते हुए बोला— "आज तक मुझे किसी ने भी कियामत और अल्लाह के न्याय की बात स्पष्ट रूप से नहीं सुनायी है। इस तरह की हकीकत की बातें भला कहाँ सुनने को मिलती हैं?"

श्री मिहिरराज ने कहा— "बादशाह! मेरे साथ बहुत अत्याचार हुआ है, जिसके कारण मजबूर होकर मुझे इस तरह की बातें कहनी पड़ी हैं। खेताभाई की मृत्यु के बाद सारी सम्पत्ति तो शेख सल्लाह ने जब्त कर ही ली है। मैं दो महीने तक आपके दरबार में भटका हूँ, तब मुझे आपका पल्ला झटककर कहना पड़ा है।"

"अल्लाह के हुक्म से मैं तुम्हारा न्याय करूँगा और तुम्हारी सारी सम्पत्ति तुम्हें वापस दिलाऊँगा। तुम अपने

मन में जरा भी चिन्ता न करो।"

यह बात कहकर बादशाह तो नमाज पढ़ने गये और श्री मिहिरराज अपने निवास पर आ गए।

अगले दिन सवेरे ही बादशाह को अपनी कही हुई बाद याद आ गयी। उन्होंने दरबार में निर्देश दिया – "मैं सबसे पहले उस व्यक्ति का इन्साफ करूँगा, जिसने कल जाते समय मेरा पल्ला झटका था और न्याय के लिए खुदा का वास्ता दिया था।"

इस सम्बन्ध में ढिंढोरा फिराया गया। सिपाहियों के साथ श्री मिहिरराज दरबार में हाजिर हुए।

बादशाह (खलीफा) ने श्री मिहिरराज से भारतवर्ष तथा यहाँ की धार्मिक स्थिति के बारे में पूछा। मिहिरराज जी के उत्तर से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला –



"आपने अपने काम के सम्बन्ध में मेरे दीवान से क्यों नहीं बात की?"

ब्रह्मसृष्टि स्वप्न में भी किसी को दुःख नहीं दे सकती। अपने इसी स्वभाव के कारण श्री मिहिरराज बोले – "मैंने उनसे कहा ही नहीं, सोचा सीधा आपसे ही कह दूँ।"

दीवान की भयभीत मुद्रा और श्री मिहिरराज द्वारा उसके बचाव का प्रयास करते देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि श्री मिहिरराज दीवान को दण्डित होने से बचाने का प्रयास कर रहे हैं। कल, इन्होंने ही तो कहा था कि "मैं" दो माह से आपके दरबार में भटक रहा था। किसी ने सुनवाई नहीं की, इसलिए मजबूरन पल्ला झटकना पड़ा। उसने मन ही मन सोचा – उफ! हिन्दुस्तान के लोग कितने नेक और रहम दिल होते हैं, जो जुल्म ढाने वालों पर भी दया

भाव रखते हैं।

बहुत प्रसन्न होकर बादशाह ने कहा – "बहुत अच्छा (आफरीन)! अब आप अपनी समस्या विस्तारपूर्वक बताइये।"

श्री मिहिरराज ने शेख सल्लाह के जुल्म का विस्तारपूर्वक वर्णन किया कि किस प्रकार उसने खेता भाई की सारी सम्पत्ति पर कब्जा जमा रखा है।

सारी बात सुनने के पश्चात् बादशाह ने अपना निर्णय लिखा – "शेख सल्लाह! तुम मिहिरराज जी की सारी सम्पत्ति शीघ्र वापस कर दो। यदि तुमने मेरे इस हुक्म का उल्लंघन किया तो मैं तुम्हें जड़ से उखाड़ दूँगा।"

यह लिखकर उसने एक सिपाही के साथ श्री मिहिरराज को भिजवा दिया। सिपाही ने शेख सल्लाह के

पास जाकर बादशाह का पत्र देते हुए कहा – "इस कागज में जो बादशाह का हुक्म लिखा है, उसे तुरन्त पूरा किया जाये।"

नीतिकारों का यह कथन बहुत ठीक है कि "बिना दण्डनीति के तामसिक लोगों को धर्म पर नहीं चलाया जा सकता।"

राजदण्ड के भय से शेख सल्लाह ने तुरन्त ही गोदाम की चाबी सहित सारी सम्पत्ति वापस कर दी।

खेता भाई की मृत्यु की सूचना श्री निजानन्द स्वामी तक पहुँच चुकी थी। उन्होंने श्री मिहिरराज की सहायता के लिये बिहारी जी तथा श्याम जी को भेजा। श्री मिहिरराज जी ने लिखित रूप से सारी सम्पत्ति इन दोनों को सौंप दी तथा कहा – "आप लोग नवतनपुरी प्रस्थान

करें। कुछ सम्पत्ति अभी लोगों से उगाहनी है, उसे लेकर मैं सद्गुरु महाराज के चरणों में शीघ्र ही उपस्थित होऊँगा।"

बिहारी जी तथा श्याम जी की मानसिकता नीम व करेले जैसी थी। उन्होंने नवतनपुरी में आकर श्री निजानन्द स्वामी से श्री मिहिरराज की जी-भरकर बुराई की तथा उन पर धन चोरी करने का भी आरोप लगाया। श्री निजानन्द स्वामी मौन रहे, क्योंकि वे जानते थे कि मिहिरराज पर आरोप लगाना सूर्य के ऊपर धूल फेंकने की तरह है।

श्री मिहिरराज जी के नवतनपुरी वापस आने की सूचना पाते ही बालबाई भागी-भागी नवतनपुरी (जामनगर) के राजा के पास पहुँची और इस बात की चुगली कर दी कि मेरे भाई खेता जी की सारी सम्पत्ति

को मिहिरराज हड़प कर गये हैं। उनके पास जो सम्पत्ति है, वह या तो हमें मिले या राजकोष में जमा हो जाये, किन्तु मिहिरराज को कदापि नहीं मिलनी चाहिए, क्योंकि उन्होंने मेरे भाई की सम्पत्ति हड़प ली है।

यह सच है कि जिस प्रकार चंचल बन्दर के हाथ में तलवार देकर पहरेदार बनाना घातक होता है, उसी प्रकार चंचलता, अतिशय भावुकता, तथा तीक्ष्णता के दोष वाले पुरुष या स्त्री को वर्चस्व देना घातक होता है। बालबाई की इस चुगली ने बहुत अनर्थ किया।

श्री मिहिरराज जी को जहाज से उतरते ही राजकीय नियन्त्रण में लेकर पूछताछ की गयी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि इस धन में से एक कौड़ी भी मेरी नहीं है। इस पर या तो मेरे सद्गुरु महाराज का अधिकार है या गाँगजी भाई का।

पानी का पैसा पानी में ही जाता है। खेता भाई की कमाई का धन बालबाई की नादानी के कारण सुन्दरसाथ की सेवा में नहीं लग सका। सारा धन राजा के खजाने में चला गया।

यह मानवीय कमजोरी है कि अपने एक अपराध को छिपाने के लिये दूसरा अपराध करना। राजा के पास जाकर की गयी चुगली को असफल होता देख, बालबाई सद्गुरु महाराज के पास गयी। जो कार्य बिहारी जी तथा श्याम जी नहीं कर पाये थे, उसे अपने स्त्री-हठ के स्वाभाव से बालबाई ने करवा लिया।

बालबाई ने स्पष्ट रूप से श्री निजानन्द स्वामी से कह दिया— "यदि आपने मिहिरराज का प्रणाम स्वीकार कर लिया, तो मैं आत्महनन का मार्ग चुनने के लिए मजबूर हो जाऊँगी।"

श्री निजानन्द स्वामी यह जानते थे कि मिहिरराज पूर्ण रूप से निर्दोष हैं तथा बालबाई, बिहारी जी, और श्याम जी का कथन बिल्कुल झूठा है, फिर भी वे स्त्री-हठ के सामने लाचार हो गये। न्याय का सिंहासन डगमगा उठा।

पाँच वर्षों की जुदायगी के बाद सद्गुरु से मिलन, किन्तु देखते ही चादर ओढ़कर लेट जाना और प्रणाम स्वीकार न करना, बड़े से बड़े धैर्यशाली को भी विचलित कर सकता है।

पूर्णिमा के सुनहरे चन्द्रमा में भी धब्बों की बात की जा सकती है, किन्तु मिहिरराज का जीवन तो निष्पाप है। क्या अर्थ और व्यक्तिगत सम्बन्धों का इतना महत्व है कि वे गुरु-शिष्य के सर्वोच्च आत्मिक सम्बन्ध को भी नगण्य कर दें?

न्याय का सिंहासन तो सत्यता और निष्पक्षता के धरातल पर ही टिका होता है। महापुरुषों को अपने चारों तरफ चाटुकारों तथा चुगलखोरों का घेरा नहीं बनने देना चाहिए, अन्यथा उनके द्वारा होने वाली छोटी सी भूल की भी भयानक सजा समाज को भोगनी पड़ती है।

व्यथित मन से श्री मिहिरराज वापस लौट पड़े। काश! सद्गुरु महाराज ने कम से कम मेरा प्रणाम तो स्वीकार कर लिया होता। मैं उनके आदेश पर ही तो गत पाँच वर्षों से अरब के रेगिस्तान में सेवा में लगा हुआ था।

अपने हृदय की पीड़ा वे किससे कहें? माया ने उनके और सद्गुरु के बीच दीवार सी बना दी? अचानक मन में एक प्रेम भरी टीस उठी— "सद्गुरु महाराज! मैं यह निश्चय करता हूँ कि जिस प्रकार आपने मेरा प्रणाम स्वीकार नहीं किया, उसी प्रकार अब जब तक आप स्वयं मुझे नहीं



बुलायेंगे, तब तक मैं आपका दर्शन करने नहीं आऊँगा।"

नवतनपुरी में दो वर्ष तक अपने बड़े भाई श्यामल जी के घर पर रहे। हृदय तो सद्गुरु से मिलने के लिये तड़पता है, किन्तु मान रोकता है कि जब तक वे न बुलायें, तब तक जाना ठीक नहीं।

विरह के क्षण वर्षों की भांति लम्बे लगते हैं। प्रत्येक ऋतु श्री मिहिरराज को विरह के आँसुओं का उपहार देकर जाती है, किन्तु मिलन नहीं होता। शायद धनी को यही मन्जूर था। इसी क्रम में दो वर्ष बीत गये।

काटा हुआ जंगल हरा-भरा हो जाता है, अस्त्र-शस्त्रों के भी घाव भर जाते हैं, किन्तु मर्मभेदी कटु वचनों के घाव मन को हमेशा सालते रहते हैं।

एक दिन श्री मिहिरराज जी को भी मर्मभेदी वज्र

समान वे वचन सुनने पड़े। उनकी भाभी, श्यामल जी की पत्नी, ने ताने मारते हुए कहा— "देखो मिहिरराज! अपने जिस गुरु के नाम पर तुमने अपने सगे भाई को मारने के लिये तलवार उठायी थी, उसी गुरु ने तुम्हारा प्रणाम तक स्वीकार नहीं किया। यदि आज तुम्हारा भाई न होता, तो तुम्हारे भोजन और ठहरने का ठिकाना कहाँ होता?"

श्री मिहिरराज इन तीखे तीरों को झेलने के बाद धरोल गये। वहाँ कला जी के पास जाकर मन्त्री पद सम्भाल लिया। दो वर्ष वहाँ बीत गये।

इसी बीच वहाँ का कर जमा करने के लिये उन्हें अमदाबाद जाना पड़ा। अमदाबाद में इस कार्य में आठ माह लग गये। उन्हें अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनायी पड़ी। "माया के इन राजाओं और बादशाहों की

नौकरी और जी हजूरी करते हुए जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा, तू अपने सद्गुरु महाराज की ही शरण में क्यों नहीं जाता?"

वापस आकर उन्होंने कला जी से स्पष्ट कह दिया कि अब मुझसे सांसारिक कार्य नहीं हो सकेंगे। मैं अब अपना सारा जीवन आध्यात्मिकता के रस में डुबोना चाहता हूँ। कला जी ने कहा— "मिहिरराज! आपको जो भी अपने पद के अनुकूल लगे, उसे मनोनीत कर आप अवकाश ग्रहण कर सकते हैं।"

इस समय श्री देवचन्द्र जी के धामगमन का समय नजदीक था। वे बार-बार यही कहते— "मिहिरराज को बुलाकर लाओ। उनके आए बिना मैं तन नहीं छोड़ सकता, क्योंकि इसके बाद उन्हीं के तन से जागनी लीला होनी है।"

बालबाई जी श्री मिहिरराज जी के पास पहुँची और बोलीं— "मिहिरराज! सद्गुरु महाराज तुम्हें बारम्बार याद कर रहे हैं। तुम चलो।"

मिहिरराज जी ने उत्तर दिया— "थोड़ा सा राजकीय कार्य बाकी है। उसे निपटाकर मैं बहुत शीघ्र ही सद्गुरु महाराज के चरणों में आऊँगा।"

बिहारी जी आध्यात्मिक ज्ञान और आचरण से शून्य थे। उनके मित्रों ने उन्हें बहका रखा था कि इस अवसर पर मिहिरराज कभी भी तुम्हारे पिता जी से मिलने नहीं आने चाहिए, अन्यथा वे ही गद्दी के स्वामी बन जाएँगे और तुम खाली हाथ रह जाओगे।

श्री निजानन्द स्वामी के बार-बार आग्रह करने पर बिहारी जी श्री मिहिरराज जी के पास आए। मिहिरराज

जी ने उनका यथोचित सत्कार किया और पूछा—  
 "सद्गुरु महाराज कैसे हैं? मेरी इच्छा है कि मैं उनका  
 शीघ्र-प्रतिशीघ्र दर्शन करूँ।"

"उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उन्होंने मुझे आपके पास अम्बर, कस्तूरी लेने के लिये भेजा है। इस समय आपका वहाँ जाना उचित नहीं है, क्योंकि अरब वाली पैसे की घटना से वहाँ आपकी बहुत अधिक बदनामी है।"

श्री मिहिरराज को आया हुआ न देखकर श्री निजानन्द स्वामी पुनः कहने लगे— "बिहारी जी! तुम जाकर उस मिहिरराज को शीघ्र बुलाकर लाओ, जो सिन्धी में यह भजन बनाकर सुनाया करते थे—

जान हुन कोड़ धड़, धड़ धड़ कोड़ मत्थन।

मत्था मत्था कोड़ मुंह, मुंह मुंह कोड़ जिम्भन॥

हितरा मिडी तोहिजा, तांजे गुण गिनन।

भाल तोहिजे हिकड़ी, पुजी ते न सगन॥"

(यदि हमारे करोड़ों धड़ हों, एक-एक धड़ में करोड़ों सिर हों, एक-एक सिर में करोड़ों मुख हों, तथा एक-एक मुख में करोड़ों जिभ्याँ हों, और उनसे हम आपके गुणों को गिनने लगें, तो भी आपके एक अहसान का भी वर्णन नहीं कर सकते हैं।)

बिहारी जी अधूरे मन से दूसरी बार आये तथा उन्होंने पहले की ही तरह से रटा-रटाया वाक्य सुनाया- "पिताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। कुछ औषधि की आवश्यकता है।"

श्री मिहिरराज जी ने कहा— "मैं अपने काम का उत्तरदायित्व दूसरे को सौंपकर शीघ्र ही सद्गुरु महाराज के दर्शन करने आ रहा हूँ।"

बिहारी जी औषधि लेकर श्री निजानन्द स्वामी जी के पास पहुँचे। मिहिरराज जी को इस बार भी साथ में न देखकर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी बोले— "मिहिरराज क्यों नहीं आए? क्या कोई भी ऐसा नहीं है, जो मेरे मिहिरराज को बुलाकर लाये?"

झुँझलाते हुए बिहारी जी ने अपने मन का भाव व्यक्त कर ही डाला। वे बोले— "आप तो बार-बार उनको याद करते हैं, लेकिन वे आपसे जरा भी मिलने के इच्छुक नहीं हैं। मैं उनको चलने के लिए कह-कहकर थक चुका हूँ, किन्तु वे आने का नाम ही नहीं लेते। फिर भी आप उन्हीं का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। ऐसा प्रतीत

होता है कि मैं आपका कुछ भी नहीं लगता।"

श्री निजानन्द स्वामी ने कहा— "बिहारी जी! अध्यात्म में पारिवारिक या सांसारिक रिश्तों का कोई भी महत्व नहीं होता। तुम भले ही मेरे पुत्र हो, किन्तु मेरी आध्यात्मिक सम्पदा पाने का अधिकार मिहिरराज को ही है। जब तक वे आयेंगे नहीं, तब तक मेरा तन नहीं छूटेगा। मुझे इस तन को छोड़कर उनके ही धाम हृदय में विराजमान होना है। तुम किसी भी तरह मिहिरराज को बुलाकर ले आओ।"

बालबाई जी वहीं खड़ी होकर यह सारी बात सुन रही थीं। वह भागी-भागी मिहिरराज जी के पास गयीं और बोलीं—

"मिहिरराज! तुम्हारे प्रति मुझसे जो अपराध हुआ,



उसके लिये मैं क्षमा चाहती हूँ। सद्गुरु महाराज तुम्हारी याद में तड़प रहे हैं। वे बार-बार एक ही बात की रट लगा रहे हैं कि जब तक मिहिरराज नहीं आयेंगे, तब तक मैं अपना तन नहीं छोड़ सकता, क्योंकि भविष्य में मुझे उन्हीं के तन में विराजमान होकर लीला करनी है।

"क्या तुम उनकी खुशी के लिये अपना मान नहीं छोड़ सकते? सद्गुरु के प्रति तुम्हारा समर्पण भाव कहाँ चला गया?"

मिहिरराज जी ने कहा— "मुझसे किसी ने यह स्पष्ट रूप से कहा ही नहीं कि सद्गुरु महाराज मुझे याद कर रहे हैं। बिहारी जी दो बार आए और दोनों बार उन्होंने केवल यही बात बतायी कि पिताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, केवल औषधियों की आवश्यकता है। यह बात सुनकर ही मेरा दिल बैठा जा रहा है कि सद्गुरु महाराज इतने

अधिक समय से मुझे याद करते रहे हैं और मैं जा नहीं सका हूँ।"

श्री मिहिरराज ने राज्य का प्रबन्धन कार्य दूसरे को सौंप दिया और भाव-विह्वल होकर उन श्री निजानन्द स्वामी का दर्शन करने के लिये चल दिये, जिनके धाम हृदय में परब्रह्म का वह युगल स्वरूप विराजमान था, जिसके हुक्म की छत्रछाया में सभी आत्माओं की जाग्रति होनी है।

(१०)

श्री निजानन्द स्वामी लेटे हुए थे। मिहिरराज जी ने उनके चरणों में प्रणाम किया। लेटे-लेटे ही उन्होंने पूछा- "कौन आया है?"

"मैं, मिहिरराज की आत्मा।"

मिहिरराज का नाम सुनते ही श्री निजानन्द स्वामी की खुशी का ठिकाना नहीं था। उन्होंने बड़े प्यार से कहा- "मिहिरराज! तुम्हारे आने से मेरा हृदय खिल गया है। मैं अच्छी तरह से जानता था कि तुम बेदाग हो। विगत ९ वर्षों की जुदायगी की पीड़ा की अग्नि अब हमारे मिलन के जल से शान्त हो गयी है। मैं तो तुम्हें हमेशा ही याद करता था और तुम्हें बुलाने के लिये ही मैंने बार-बार सुन्दरसाथ को भेजा।"

"मेरे ऊपर कुछ लौकिक दायित्व था, उसे मैं दूसरों के ऊपर सौंपकर आपके चरणों में आया हूँ। मुझे किसी ने कभी स्पष्ट रूप से कहा ही नहीं कि आप मुझे बुला रहे हैं। बालबाई जी के मुख से जैसे ही मैंने सुना कि आप मुझे याद कर रहे हैं, मैं आपके चरणों में दर्शन हेतु भागा हुआ आया हूँ।"

"अब तुम्हें किसी लौकिक काम के लिये पुनः जाना तो नहीं है या जाकर फिर आना है? मैंने तुमको बारम्बार इसलिये याद किया है कि अब मेरे अन्दर विराजमान अक्षरातीत परब्रह्म इस तन को छोड़कर तुम्हारे तन में विराजमान होंगे। लेकिन जब तक मिथ्या आरोपों से तुम्हारा दिल दुःखी है, तब तक यह सम्भव नहीं है। मुझे तुम्हारे आने से बहुत आनन्द हुआ है। अब धर्म का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये मैं तुम्हें आदेश

देता हूँ।"

भोजन की थाली सामने रखे जाने पर श्री मिहिरराज जी ने बिहारी जी से आग्रह किया कि आप मेरे साथ बैठकर एक ही थाल में भोजन कीजिए।

बिहारी जी ने रुखे शब्दों में स्पष्ट उत्तर दे दिया – "मैं तो तुम्हारे साथ किसी भी कीमत पर भोजन कर ही नहीं सकता।"

श्री मिहिरराज जी ने पुनः आग्रह किया, किन्तु बिहारी जी के ऊपर कोई असर पड़ता न देख स्वयं श्री निजानन्द स्वामी को हस्तक्षेप करना पड़ा, तब कहीं जाकर बिहारी जी ने साथ में भोजन करना स्वीकार किया।

भोजन के पश्चात् श्री मिहिरराज जी ने अरब जाने से

लेकर धरोल तक का सारा वृत्तान्त सद्गुरु महाराज को कह सुनाया। सारी बात सुनकर श्री निजानन्द स्वामी बहुत प्रसन्न हुए और बोले – "मिहिरराज! यह बहुत ही अच्छा हुआ, जो तुम सारे लौकिक कार्यों से निवृत्त होकर धाम धनी की सेवा में आ गये।"

२२ दिनों तक श्री मिहिरराज सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के पास रहे। श्री निजानन्द स्वामी ने उन्हें भविष्य में होने वाली सारी मुख्य बातें संक्षेप में बता दीं। शाकुण्डल तथा शाकुमार की आत्माओं को जाग्रत करने पर विशेष जोर दिया तथा सब सुन्दरसाथ को आत्मिक सुख देने का उत्तरदायित्व सौंपकर उनके धाम हृदय में विराजमान हो गये।

जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से, चन्द्रमा अपनी चाँदनी से, तथा सागर अपनी लहरों से कभी अलग नहीं

हो सकता, उसी प्रकार सच्चिदानन्द परब्रह्म अपनी आत्माओं से कभी पल भर भी अलग नहीं हो सकते।

किन्तु, ब्रह्मवाणी के अवतरित न होने से सबने यही मान लिया कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् हमारे प्राणवल्लभ अक्षरातीत भी चले गये। सभी अपने-अपने घरों में माया के काम में उलझ गये। चर्चा-सत्संग का सारा कार्य बन्द हो गया।

इस स्थिति में सुधार लाने के लिये विचार-विमर्श करने हेतु बालबाई श्री मिहिरराज जी के पास आयीं। बालबाई ने श्री मिहिरराज से कहा- "सुन्दरसाथ तो घर बैठ गये हैं, अब कोई आता ही नहीं। चर्चा-सत्संग से किसी को भी लेना-देना नहीं रह गया। ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए?"

श्री मिहिरराज जी बोले- "धर्म के प्रचार हेतु आप जो भी राय देंगी, उसे मैं अवश्य ही स्वीकार करूँगा।"

"सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की गादी की महिमा बहुत बड़ी है। वह खाली नहीं रहनी चाहिए। पर, प्रश्न यह है कि उस पर किसको बैठाया जाये? लोक रीति के अनुसार देखा जाये, तो पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का ही अधिकार होता है। यदि गादी पर कोई विराजमान हो जाये, तो सभी सुन्दरसाथ आना शुरू कर देंगे और धर्म प्रचार का कार्य तेजी से होगा।"

"यह तो बहुत ही खुशी की बात है। बिहारी जी को गादी पर बैठाकर जब सबसे पहले मैं चरणों में प्रणाम करूँगा, तो सब सुन्दरसाथ भी उन्हें पूरा सम्मान देगा। मैं सब सुन्दरसाथ को इस कार्य के लिये तैयार करूँगा।"



श्री मिहिरराज जी से इस प्रकार वार्ता करके खुशी-खुशी बालबाई जी अपने घर आयीं। वह वंशानुगत गादीवाद को फलते-फूलते देखना चाहती थीं।

योग्यता न होने पर भी वंशानुगत गादीवाद की अन्ध-परम्परा वह पगडण्डी है, जिस पर चलने वालों को प्रकाश का स्रोत दिखायी देना लगभग असम्भव होता है।

शीघ्र ही उचित समय पर श्री मिहिरराज जी ने अपने गुरुपुत्र बिहारी जी को गादी पर विराजमान कराकर चरणों में प्रणाम किया। सभी सुन्दरसाथ एकत्रित हुए और आनन्द का वातावरण छा गया।

## (११)

बिहारी जी को गादी पर बैठाया जाना अधिकतर सुन्दरसाथ को पसन्द नहीं था, क्योंकि उन्हें मालूम था कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी को ही सारा आत्मिक धन सौंपा था। श्री मिहिरराज जी के दबाव के कारण सब सुन्दरसाथ अधूरे मन से ही बिहारी जी का सम्मान करते थे।

बिहारी जी को आध्यात्मिक क्षेत्र का जरा भी ज्ञान नहीं था। गादी पर बैठे होने के कारण सुन्दरसाथ उनसे धर्म चर्चा सुनना चाहता था। वे अपनी चर्चा में व्यर्थ के किस्से-कहानियाँ सुनाया करते थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में वंशवाद आधारित गादीवाद का ढोल पीटने की सजा समाज भुगत रहा था।

श्री मिहिरराज बिहारी जी की चर्चा सुनने के लिये सबसे आगे बैठते थे। पुनः सब सुन्दरसाथ को एकान्त में ले जाकर परमधाम की गूढ़ रसभरी चर्चा सुनाते थे, जिससे सुन्दरसाथ आनन्द रस में डूब जाया करता था। श्री मिहिरराज जी की अमृत वर्षा से धीरे-धीरे यह सबको पता चलने लगा था कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ही श्री मिहिरराज जी के अन्दर बैठकर चर्चा कर रहे हैं।

जामनगर से दो कोस की दूरी पर एक सुन्दरसाथ रहता था, जो प्रतिदिन दोनों समय चर्चा सुनकर तथा बिहारी जी को प्रणाम करके जाता था। कुछ पारिवारिक परेशानियों के कारण उसने बिहारी जी से प्रार्थना की कि उसे एक ही समय आने की आज्ञा मिल जाये।

बिहारी जी ने आदेश दे दिया कि तुम्हें दोनों ही वक्त

आने की आवश्यकता नहीं है। यह भी कह दिया कि जो इसका पक्ष लेगा, उसे भी समाज से बाहर निकाल दिया जायेगा।

उस सुन्दरसाथ ने बिहारी जी के निवास के दरवाजे पर बिना कुछ खाए नौ दिन बिता दिये। दसवें दिन वह निराश होकर श्री मिहिरराज के घर गया। वहाँ उनकी पत्नी ने भोजन कराकर उसकी प्राण-रक्षा की।

बिहारी जी का तानाशाही आदेश जारी हुआ कि अब मिहिरराज को भी मेरे पास आने नहीं दिया जाये। श्री मिहिरराज द्वारा पूछे जाने पर बिहारी जी ने स्पष्ट कह दिया कि तुम्हें किसी एक को छोड़ना होगा – या तो मुझे या अपनी पत्नी फूलबाई को।

श्री मिहिरराज जी ने अपनी पत्नी का परित्याग कर

दिया। प्रियतम की याद में फूलबाई ने अपना तन छोड़ दिया। उनकी इच्छा के अनुसार श्री मिहिरराज जी ने अपने दोनों चरण कमल उनकी चिता की भस्म पर रख दिये। फूलबाई की आत्मा (अमलावती) ने दूसरे तन में प्रवेश कर अपने प्राणवल्लभ को पा लिया।

धर्म के विधान से ऊपर कोई भी व्यक्ति नहीं होता , किन्तु बिहारी जी ने कदम-कदम पर यही दर्शाया कि उनकी क्रूर, निरंकुश, और निष्ठुर मनोवृत्ति के सामने धर्म के विधान का कोई भी महत्व नहीं है।

श्री मिहिरराज जी के मन में सुन्दरसाथ की सेवा करने का बहुत भाव था। इसलिये उन्होंने बिहारी जी से विचार-विमर्श करके जामनगर के वजीर की दीवानगिरी का पद सम्भाला, ताकि सुन्दरसाथ की आर्थिक रूप से भी सेवा कर सकें।

राजकार्य से जुड़ने के बाद भी उन्होंने सुन्दरसाथ की सेवा में कोई कमी नहीं आने दी। ब्रह्ममुहूर्त से ही उनकी दिनचर्या प्रारम्भ हो जाती थी। राज दरबार के कार्य से निवृत्त होने के बाद प्रतिदिन शाम को साढ़े चार बजे परमधाम का ध्यान कराते थे। इस प्रकार सभी सुन्दरसाथ आत्मिक आनन्द में मग्न होने लगा।

किन्तु, श्री मिहिरराज जी को इतने से ही सन्तोष नहीं था। सांसारिक कार्यों में उलझे रहने के कारण सुन्दरसाथ वाणी चर्चा में अधिक समय नहीं दे पाता था, इसलिये वे सबको एकत्रित करके उनके भोजन, वस्त्र आदि की सारी व्यवस्था स्वयं करना चाहते थे। इस प्रकार सबको आध्यात्मिक रस में सराबोर रखा जा सकता था।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, उन्होंने बिहारी जी के

लिये सुन्दर वस्त्र-आभूषण तैयार करवाये। उनके साले नागजी भाई के लिये सोने-जड़ित कटार की भी सेवा की। सुन्दरसाथ के लिये प्रचुर मात्रा में कपड़ा तथा भोजन सामग्री एकत्रित की।

किन्तु, बिहारी जी महाराज को यह सब अच्छा नहीं लगा। उनके अन्दर यह भय बैठ गया कि मिहिरराज यदि सुन्दरसाथ को एकत्रित करके अपनी सेवा तथा ज्ञान-चर्चा से प्रभावित कर लेंगे, तो मैं नाम मात्र का ही गादीपति रह जाऊँगा।

बिहारी जी ने द्वेषवश वजीर के यहाँ चुगली कर दी।

परमात्मा ने मनुष्य को दो कान और एक मुख इसलिये दिये हैं कि जितना बोलो, उससे दोगुना सुनो। सिर के दोनों तरफ दो कानों के होने का यही भाव है कि

पक्ष-विपक्ष की बात सावधानी से सुनकर ही अपने मुख से निर्णय लेना चाहिए।

किन्तु, राजा और मन्त्री आदि विशिष्ट लोग कान के कच्चे होने के लिये कुख्यात रहे हैं। राजा के प्रधानमन्त्री ने बिना जाँच किये श्री मिहिरराज को उनके दोनों भाइयों, श्यामल जी तथा उद्धव जी, के साथ हब्शे में नजरबन्द कर दिया।

हब्शे में मिहिरराज की आत्मा अपने प्रियतम के विरह में तड़पती है। हमेशा निर्दोष होते हुए भी कदम-कदम पर काँटों से जूझना स्वाभाविक रूप से पीड़ादायक होता है। छः माह तक विरह में तड़पते-तड़पते शरीर हड्डियों का ढाचा मात्र ही रह गया। सिर सूखे नारियल की भांति प्रतीत होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर में रक्त नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। विरह की अग्नि ने



उनके शरीर के माँस तथा रक्त को सूखने जैसा कर दिया था।

उस समय तक श्री मिहिरराज की अवस्था चालीस वर्ष की थी। उनके विरह की आँहों ने सच्चिदानन्द परब्रह्म को मजबूर कर दिया कि वे उनके आत्म-चक्षुओं के सामने प्रगट होकर सारा दुःख दूर करें। विरह में तड़पना ही तो प्रेम की कसौटी है, जिसमें खरा सिद्ध होने पर प्रियतम का दीदार अवश्य होता है।

श्री मिहिरराज के अन्दर स्थित इन्द्रावती आत्मा के समक्ष जब अक्षरातीत अपने युगल स्वरूप में प्रकट हुए तो एक विचित्र दृश्य था। कभी सिंहासन पर परब्रह्म की आनन्द शक्ति श्यामा जी दिखायी पड़ती थीं, तो कभी श्री देवचन्द्र जी दिखते थे।

अब श्री मिहिरराज जी को पश्चाताप होने लगा कि वे तो अपने सद्गुरु के वास्तविक स्वरूप को पहचान ही नहीं सके। जिनके दर्शन के लिये उन्होंने कष्टमयी साधना का आश्रय लिया था, वह तो सद्गुरु महाराज के अन्दर ही साक्षात् विराजमान थे।

अक्षरातीत श्री राज जी ने श्री मिहिरराज को जागनी का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा और उनके धाम हृदय में साक्षात् विराजमान हो गये। अब वे मिहिरराज नहीं रहे, बल्कि सबके प्राणनाथ, धाम धनी, श्री जी, व श्री राज हो गये।

अब परमधाम की अलौकिक ब्रह्मवाणी का अवतरण शुरू हो गया। सबसे पहले रास ग्रन्थ उतरा। ब्रह्मवाणी के अवतरण के समय अद्भुत प्रकाश प्रकट हो जाता था तथा रास की रामतों के वर्णन के साथ-साथ वास्तविक दृश्य

भी उपस्थित हो जाता था। इस दृश्य को श्री मिहिरराज जी के साथ नजरबन्द हुए उनके दोनों भाई श्यामल जी तथा उद्धव जी ने भी देखा। परब्रह्म के आवेश से अवतरित ब्रह्मवाणी को उद्धव जी लिखते गये। हृद्देश के अन्दर ही रास, प्रकाश, षट्क्रतु, तथा कलश की दो चौपाइयों का अवतरण हुआ।

ब्रह्मवाणी के अवतरण के समय प्रकट होने वाली रास लीला के दृश्यों को जामनगर के वजीर की पत्नियों ने देखा था। उन्हें यह तुरन्त ही आभास हो गया कि ये तो कोई अलौकिक महापुरुष हैं। इन्हें नजरबन्द करने से तो हमारे ऊपर बहुत बड़ा पाप हुआ।

श्री मिहिरराज जी को उनके दोनों भाइयों सहित नजरबन्द करके वजीर तो अमदाबाद चले गये थे। वापस आने में एक वर्ष लग गया। जैसे ही वे अपने महल में

आये, उनकी पत्नियाँ उन पर बरस पड़ीं।

"आप जिनको केवल अपना दीवान समझते रहे हैं, वे तो दिव्य महापुरुष हैं। उनके अन्दर तो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा की शक्ति विराजमान है। हमने अपनी आँखों से दरवाजे के छेद से रास लीला का प्रत्यक्ष दर्शन किया है। यदि आप अपने को विनाश से बचाना चाहते हैं, तो श्री मिहिरराज जी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगिए तथा सबके सामने सम्मानित करके विदा कीजिए।"

वजीर ने जाँच में पाया कि श्री मिहिरराज जी ने अपने ही वेतन के धन से सारा सामान मँगवाया था। उन्होंने तो राजकोष का एक भी पैसा अनुचित रूप से खर्च नहीं किया था। उसे अपने किये पर बार-बार पछतावा हो रहा था। निदान, उसने श्री जी से अपनी भूल की क्षमा माँगी तथा वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित

करके विदा किया।

श्री प्राणनाथ जी इन तीनों किताबों को लेकर बिहारी जी के पास गये और सारी बातें उनको बताई कि किस प्रकार छः माह तक विरह में तड़पने के पश्चात् परब्रह्म युगल स्वरूप ने उन्हें दीदार दिया तथा ब्रह्मवाणी का अवतरण हुआ।

हृद्देश का सारा प्रसंग सुनकर सुन्दरसाथ रोमाञ्चित हो उठा। उनके मन में यह बात बैठ गयी कि हमारी आत्म-जाग्रति श्री जी के हाथों में है।

इसके विपरीत, षट्ऋतु की वाणी पढ़कर बिहारी जी अन्दर ही अन्दर तमतमा उठे। उन्होंने सोचा कि इस ग्रन्थ में तो स्पष्ट लिखा है कि अक्षरातीत धाम धनी मेरे बिना अन्य किसी को भी नहीं मिले हैं। यदि यह बात

चारों तरफ फैल गयी तो गादी की महत्ता न रहने से मैं नगण्य हो जाऊँगा। इसलिये किसी भी तरह से इस ब्रह्मवाणी के प्रसार को रोकना होगा।

यह कटु सत्य है कि अक्षरातीत का निवास ब्रह्ममुनियों का हृदय है, न कि रुई की गादी। ज्ञान का प्रचार न होने से समाज में अन्ध-परम्परायें चल पड़ती हैं। धर्म का संघात्मक स्वरूप ही सबके लिये कल्याणकारी होता है। व्यक्तिवाद की आँधी में सम्यक ज्ञान का प्रचार होना सम्भव नहीं है।

गादीपति श्री बिहारी जी महाराज ने पूछा –  
"मिहिरराज! तुम मुझे क्या मानते हो?"

"आप तो हमारे लिये धाम के धनी हैं।"

"यदि तुम मुझे धाम धनी के स्वरूप में देखते हो, तो

इस ग्रन्थ में तुमने मेरे लिये इतना विरह क्यों किया है ? तुम्हें यदि मुझसे मिलने की इतनी तड़प थी, तो साक्षात् आकर क्यों नहीं मिल लिये ? जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, तो तुम नयी-नयी कविताएँ बनाकर उल्टी गंगा क्यों बहाते हो ? अब इस ग्रन्थ का प्रचार करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।"

सुन्दरसाथ तो ब्रह्मवाणी के अमृतमयी शब्दों को सुनने के लिये तरस रहा था, किन्तु गादीपति बिहारी जी की कृपा से वह सम्भव न हो सका।

वहाँ से श्री जी वि.सं. १७१६ में जूनागढ़ के पास नया गाँव बसाने के लिये चले। मार्ग में धोराजी गाँव में नदी के किनारे विश्राम के लिये ठहरे।

वहाँ वीरजी भानजी नामक क्षत्रिय की बेटी तेज

कुँवरि जल भरने के लिये आयी हुई थी। श्री जी को देखते ही उन्होंने घूँघट कर लिया।

यह देखते ही आश्चर्यचकित वीरजी भानजी अपनी पुत्री से बोले— "बेटी! यह क्या अजीब सी बात हुई? मैं तुमसे विवाह के लिये कहते-कहते थक गया, लेकिन तूने साफ मना कर दिया। अब उस व्यक्ति को देखते ही तुमने घूँघट कर लिया। मैं इस पहेली को समझ नहीं पा रहा हूँ।"

तेज कुँवरि ने कहा— "जिन दिव्य पुरुष को देखते ही मैंने घूँघट कर लिया, वे ही मेरे पूर्व जन्म के प्राण प्रियतम श्री मिहिरराज जी हैं। मैं पूर्व जन्म में उनकी पत्नी फूलबाई के रूप में थी। मैं विवाह के लिये आपके दबाव देने पर भी इसलिये मना करती थी कि मैं इनके सिवाय अन्य किसी को भी अपना प्रियतम नहीं बना सकती।



आप उनके पास जाकर इस बात की जाँच कर लीजिए।"

वीरजी भानजी नदी के किनारे पर विराजमान श्री जी के पास आये तथा सारी बातों की सत्यता की परख करने के बाद अपनी पुत्री का पाणिग्रहण करने की प्रार्थना की। यह कथन पूर्णतया सत्य है कि प्रेम अखण्ड होता है। आत्मा के सच्चे प्रेम ने दूसरे तन में प्रियतम प्राणनाथ से मिलन करा ही दिया।

निदान श्री जी ने तेज कुँवरि जी का पाणिग्रहण किया। उनके विवाह से चारों ओर प्रसन्नता की लहर छा गयी।

## (१२)

श्री जी वि.सं. १७१६ में जूनागढ़ के पास नया गाँव बसाने हेतु गये। वहाँ जूनागढ़ में कान्हजी भाई नामक एक सुन्दरसाथ भी रहते थे, जो अपने समय के शास्त्रार्थ महारथी "हरजी व्यास" के यहाँ सेवा कार्य किया करते थे। समय-समय पर कान्हजी भाई श्री जी के चरणों में आकर उनकी अलौकिक चर्चा का रसपान किया करते थे।

अचानक स्वास्थ्य गिरने से हरजी व्यास की मरणासन्न अवस्था हो गयी। परिवार के सदस्यों ने स्वर्ग की कामना से व्यास जी के नाम से दान-पुण्य करना शुरू कर दिया। यह बात उन्हें नागवार गुजरी। व्यास जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा – "मेरे से दान-पुण्य कराकर मुझे जन्म मरण के चक्र में क्यों भटकाना चाहते हो? मैं चौदह

लोक की इस दुनिया का नहीं हूँ। कर्मकाण्डों के जाल में फँसाकर मेरा मन क्यों दुःखी करते हो? मैं दो बातों की दाज्ञ लिए हुए मर रहा हूँ। पहली बात तो यह है कि मैंने ज्ञान के क्षेत्र में जिस सम्बन्ध में 'हाँ' कह दिया, उसे किसी ने 'ना' नहीं कहा। दूसरी बात है कि यदि मैंने 'ना' कह दिया तो किसी भी विद्वान को 'हाँ' कहने का साहस अभी तक नहीं हुआ है।"

इन वचनों को सुनकर कान्हजी भाई ने अपने मन में विचारा— "इस तरह की बात कि मैं चौदह लौक के इस ब्रह्माण्ड का नहीं हूँ, केवल अखण्ड धाम की आत्मा ही कर सकती है, माया का जीव कदापि नहीं। यदि श्री राज जी की कृपा से यह जीवित बच जाये, तो इसके मन की दाज्ञ भी मिटायी जा सकती है।"

यह सोचता हुआ कान्हजी भाई श्री जी के चरणों में

पहुँचा और सारी बात बताई। श्री जी ने कहा—  
 "अक्षरातीत धाम धनी की कृपा से यह जीवित रहेगा और  
 इसे चर्चा सुनाकर मैं सारे संशयों को हटा दूँगा, लेकिन  
 तुम उस समय साक्षी रूप में रहना कि उसने यह बात  
 कही थी, कि मैंने जिसे 'हाँ' कहा उसे किसी ने 'ना' नहीं  
 कहा और जिसे 'ना' कहा उसे 'हाँ' कहने का साहस  
 अब तक किसी को भी नहीं हुआ है।"

श्री जी से आश्वासन पाकर कान्ह जी भाई सच्चे दिल  
 से हरजी व्यास की सेवा करने लगे। इसके पहले वे मात्र  
 सेवा की औपचारिकता ही निभाते थे।

श्रद्धा और समर्पण के बिना वास्तविक सेवा नहीं की  
 जा सकती। सेवा धर्म को निभाना योगियों के लिए भी  
 कठिन है। श्रद्धा और समर्पण से की जाने वाली सेवा में  
 जो मिठास होती है, वह धन से खरीदी जाने वाली सेवा

## में सम्भव नहीं है।

अब कान्हजी भाई स्वयं खेतों में जाकर ताजी सब्जियाँ लाने लगे तथा निष्ठा भाव से भोजन तैयार करके हरजी व्यास को खिलाने लगे। श्री जी की कृपा से वे मौत से तो बच ही गये थे, कान्हजी भाई की सच्ची सेवा से बहुत शीघ्रता से स्वास्थ्य लाभ करने लगे।

उनकी सेवा पर रीझकर हरजी व्यास कहा करते— "यदि मुझे कोई हजार रुपया भी भेंट में देवे तो मैं उस पर उतना प्रसन्न नहीं हो सकता, जितनी तुम्हारी सब्जी की सेवा से। तुम्हारी जो भी इच्छा हो, मुझसे खुलकर माँग लो। मैं अवश्य पूर्ण करने का प्रयास करूँगा।"

कान्हजी भाई कहा करते— "अभी समय नहीं आया है। समय आने पर मैं आपसे अवश्य माँग लूँगा।"

एक दिन कान्हजी भाई ने कहा— "व्यास जी! मैं आपसे एक वस्तु माँगता हूँ कि मेरे परिचित एक महात्मा हैं। आप उनको धर्म चर्चा का लाभ दीजिए।"

हरजी व्यास जी ने प्रफुल्लित होकर उत्तर दिया— "शाबास! कान्हजी भाई! एक तो तुमने सच्चे हृदय से मेरी सेवा की, दूसरा अपनी माँग में भी धर्म चर्चा ही रखा। मुझ जैसे विद्वानों का चर्चा के सिवाय अन्य कार्य क्या हो सकता है? मैं तुम्हारी इस प्रकार की माँग से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम शीघ्र अति शीघ्र अपने उन महात्मा जी को चर्चा सुनने के लिये बुलाओ।"

कान्हजी भाई ने श्री प्राणनाथ जी की भेंट हरजी व्यास जी से करवा दी। व्यास जी को इस मिलन से बहुत प्रसन्नता हुई और वे पूछने लगे— "महात्मा जी! आप कहाँ रहते हैं?"

"हम तो परदेश में रहते हैं। आपका अगाध ज्ञान सुनकर आत्म-कल्याण की भावना से खिंचे चले आए।"

"आपका आना बहुत अच्छा हुआ। बताइए आप किसकी चर्चा सुनना चाहते हैं? गीता, उपनिषद, भागवत, पुराण आदि में से जो भी कहें, उसकी चर्चा सुनाकर मैं आपको प्रसन्न करूँगा।"

"मैं श्रीमद्भागवत् की चर्चा सुनना चाहता हूँ।"

हरजी व्यास जी ने श्री प्राणनाथ जी की बाग में ठहरने की व्यवस्था कराई। अब भागवत् की कथा शुरू हो गयी। दो मास तक एक जिज्ञासु के रूप में श्री जी कथा श्रवण करते रहे।

विनम्रता ही महानता का परिचय देती है। फल से लदे हुए वृक्षों की डालियाँ स्वतः नीचे झुकी रहती हैं।

ज्ञान का अनन्त सागर जिनके हृदय में विराजमान हो, वह हरजी व्यास जी से इस तरह भागवत की कथा सुन रहे हैं, जैसे उन्हें कुछ ज्ञान ही न हो।

अचानक एक दिन भागवत् के दसवें स्कन्ध में नारायण के ठिकाने का वर्णन आया, जिसमें कहा गया है कि एक हीरे का मन्दिर है, जिसका विस्तार चौरासी लाख योजन में है।

श्री जी ने पूछा – "यह किसका निवास है?"

हरजी व्यास बहुत प्रसन्न होकर बोले – "यह अक्षर ब्रह्म का ठिकाना है। ऐसा भागवत तथा अन्य धर्मग्रन्थों में लिखा है।"

तब विनम्रता के सागर श्री प्राणनाथ जी हरजी व्यास के चरणों में प्रणाम करके कहने लगे – "केवल आप ही



यह ज्ञान दे सकते हैं कि यह किसका स्थान है ? यह अलौकिक महल इस ब्रह्माण्ड में ऊपर है, नीचे है, बीच में है, या इसके बाहर है? आप अपनी चर्चा में पहले ही कह चुके हैं कि महाप्रलय में पाँच तत्व, तीन गुण, तथा मूल प्रकृति का नाश हो जाता है, तो प्रश्न यह है कि इस ब्रह्माण्ड में अक्षर ब्रह्म का ठिकाना कैसे हो सकता है? मैं आपसे बारम्बार प्रार्थना करता हूँ कि आप यह भेद मुझसे न छिपाइए।"

हरजी व्यास बोले— "यह आदिनारायण का स्थान है जो क्षीर सागर में रहते हैं। ऐसा धर्मग्रन्थों में लिखा है।"

श्री जी ने कहा— "क्षीर सागर तो १४ लोक के इस ब्रह्माण्ड के अन्दर है। महाप्रलय में जब १४ लोकों सहित क्षीर सागर ही नहीं रहेगा, तो आदिनारायण या अक्षर ब्रह्म इस हीरे के अखण्ड महल के साथ कहाँ रहेंगे ?

आपके बिना हमें इस गुत्थी को समझाने में अन्य कोई भी समर्थ नहीं है, इसलिये मैं आपसे बार-बार विनती करता हूँ कि मुझसे यह गुझ भेद न छिपाइए।"

अब हरजी व्यास जी के कुछ नरम पड़ने की बारी थी। उन्होंने कहा— "मुझसे क्या कहते हो? जब शास्त्रों में ही स्पष्ट नहीं लिखा है, तो मैं इसका उत्तर क्या दूँ?"

"नाच न जाने आँगन टेढ़ा" की इस उक्ति के अनुसार हरजी व्यास अब भागवत के रचनाकार तथा अन्य ग्रन्थकार आचार्यों को ही अपशब्दों से सम्बोधित करने लगे।

कमजोर और अल्पज्ञानी व्यक्ति गालियाँ देकर ही अपने मन के विकारों को प्रकट करता है।

तब कान्हजी भाई भी बोल पड़े— "धाम धनी! आप

इनसे कुछ अक्षरातीत की भी बात तो पूछकर देखिए कि ये क्या उत्तर देते हैं?"

श्री जी को जोश आया और उन्होंने कान्हजी भाई को हाथों से धक्का देते हुए कहा— "जो व्यक्ति क्षर में ही थका हुआ है, उसे अक्षर की सुध नहीं हो सकती। ऐसा व्यक्ति भला अक्षरातीत के बारे में क्या जानेगा।"

श्री प्राणनाथ जी के इस वचन को सुनकर हरजी व्यास के होश उड़ गये। उसने अपने मन में सोचा कि इस तरह का अलौकिक ज्ञान तो केवल ब्रह्ममुनियों के ही पास हो सकता है।

श्री जी ने कहा— "व्यास जी! मैं आपकी भागवत कथा को सुनने नहीं आया था। उस प्रसंग को याद कीजिए, जब आपने मरणासन्न अवस्था में कहा था कि मैं

दो बातों की दाझ लिये हुए इस दुनिया से जा रहा हूँ कि मैंने जिसे 'हाँ' कह दिया, उसे किसी ने भी 'ना' नहीं कहा, तथा जिसे मैंने 'ना' कह दिया, उसे 'हाँ' कहने का साहस किसी में भी नहीं हुआ। सच्चिदानन्द परब्रह्म ने आपके ज्ञान के अहंकार को तोड़ने के लिये ही मुझे भेजा है।"

तब भावुक होकर हरजी व्यास बोले— "हे भक्तराज! यह सच है। मैंने ज्ञान के अभिमान में ही ऐसा कहा था। गूलर के वृक्ष में बहुत से फल लगे होते हैं। एक फल के कीड़े पास वाले दूसरे फल के कीड़ों के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं। मैं भी गूलर के उस कीड़े की ही तरह हूँ, जो ज्ञान के अथाह सागर को न समझ सका और जीवन भर कूप-मण्डूक बना रहा। अब तक मैंने शास्त्रार्थ में सभी पण्डितों को हराया है। किसी से कभी भी हारा नहीं

था, लेकिन आज मैं स्वयं को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। मुझे कुछ भी सत्य ज्ञान नहीं है। मुझे अखण्ड धाम की सच्ची राह दिखाइए। आपको तो मेरे उद्धार के लिये ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ने भेजा है।"

श्री प्राणनाथ जी बोले— "श्रीमद्भागवत् के दशम् स्कन्ध में हीरे के जिस महल का वर्णन है, वह इस नश्वर जगत का जड़ हीरा नहीं है, अपितु अखण्ड, नूरमयी महल है। अष्टावरण युक्त चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड, सात शून्य, आदिनारायण, तथा मोहतत्व (महामाया) आदि सभी कुछ महाप्रलय में लय हो जाने वाले हैं। मोहतत्व में अक्षर ब्रह्म का मन (अव्याकृत) स्वप्न स्वरूप में प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण (महाविष्णु) का रूप धारण करता है। भागवत के इस कथन में 'भूमा' शब्द का प्रयोग अक्षर ब्रह्म के लिये किया गया है। इसी

प्रकार 'पारावर ज्योति' का भी प्रयोग ब्रह्म की अखण्ड ज्योति के लिये किया गया है।

"यह अनुभूति भगवान श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को करायी गयी है, इसलिए यहाँ आदिनारायण का वर्णन किया गया है, क्योंकि अर्जुन का ध्यान आदिनारायण, मोहतत्व को पार नहीं कर पाता था। चूंकि, प्रतिबिम्ब लगभग बिम्ब जैसा ही प्रतीत होता है, अतः अव्याकृत ब्रह्म का जैसा निवास है, वैसा ही उनके स्वाप्टिक स्वरूप का भी किया गया है। इसी कारण कहीं अक्षर (अव्याकृत) ब्रह्म का वर्णन किया गया है, तो कहीं आदिनारायण का।

"हे व्यास जी! तारतम ज्ञान के बिना इन प्रश्नों का समाधान हो ही नहीं सकता कि महाप्रलय में सारी सृष्टि तथा जीव कहाँ चले जाते हैं तथा सृष्टि के प्रारम्भ में कहाँ

से प्रकट हो जाते हैं? क्या आनन्द का अनन्त सागर सच्चिदानन्द परब्रह्म इस दुःखमय जगत के कण-कण में बैठा है?

"इस क्षर के ब्रह्माण्ड (१४ लोक, आदिनारायण, मोहतत्त्व) से परे बेहद है, जिसके अन्दर अक्षर ब्रह्म के चारों पाद (अव्याकृत, सबलिक, केवल, तथा सत्स्वरूप) अन्तस्करण रूप में लीला कर रहे हैं। इनके परे वह अनन्त परमधाम है, जिसमें अक्षर तथा अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म का स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्दमयी स्वरूप विराजमान है। अपनी आत्म-जाग्रति के लिये तुम्हें वहाँ का ही ध्यान करना चाहिए।"

(१३)

ब्रह्मज्ञान के झरने के इस अमृत रस को पीकर हरजी व्यास धन्य-धन्य हो गये। उन्होंने अपना तन-मन श्री जी के चरणों में समर्पित कर दिया।

श्री जी के दिल में अन्तःप्रेरणा हुई कि नवतनपुरी में सुन्दरसाथ पर संकट के बादल मण्डराने वाले हैं। वहाँ चलकर उनकी सुधि लेनी होगी।

वहाँ से बहुत शीघ्र चलकर वे नवतनपुरी आये। गुजरात के बादशाह कुतुब खान का यह आदेश जारी हो गया था कि यदि जामनगर राज्य का कर सही समय पर नहीं दिया जायेगा, तो हम हमला करने के लिये मजबूर हो जायेंगे।

श्री जी ने बिहारी जी को सारी स्थिति से अवगत



कराया और इस बात की स्वीकृति भी ले ली कि मैं सुन्दरसाथ को कष्टों से बचाने के लिए जामनगर की दीवानगिरी सम्भाल लूँ, ताकि कर सही समय पर वसूला जा सके। इस बात की पूरी सम्भावना थी कि बादशाह के आक्रमण के कारण नवतनपुरी की हिन्दू जनता को बहुत सताया जायेगा।

बादशाह के आक्रमण को रोकने के लिये दोनों पक्षों में समझौता इस शर्त पर हुआ था कि यदि निश्चित समय पर कर्ज की अदायगी नहीं हुई तो श्री मिहिरराज जी को फाँसी का फन्दा गले लगाना पड़ेगा।

बहुतेरा प्रयास करने के बाद भी सम्पूर्ण कर की अदायगी नहीं हो सकी। निदान, शर्त के अनुसार, श्री जी को अमदाबाद में नजरबन्द कर दिया गया।

प्रेम और समर्पण की भाषा मौन होती है। अपने शरीर और परिवार के लिये तो हर कोई जीता है, किन्तु वे धन्य-धन्य हैं जिनका जीवन ही मानवता के कल्याण में लगे हुए महापुरुषों के ऊपर न्योछावर हो जाता है।

श्रद्धा, सेवा, और समर्पण की प्रतिमूर्ति, कान्हजी भाई को भला यह कैसे सहन हो सकता था कि श्री जी को फाँसी के फन्दे पर झूलना पड़े। उन्होंने तेज कुँवरि जी से मिलकर उनकी वेशभूषा स्वयं धारण कर ली तथा श्री जी की धर्म-पत्नी के रूप में उनसे भेंट की। कारागार के कक्ष में उन्होंने श्री जी को तेज कुँवरि वाले अपने वस्त्र जबरन पहनाकर बाहर भेज दिया तथा स्वयं श्री जी के वस्त्र पहनकर बैठ गये।

जिस तन में परब्रह्म का आवेश स्वरूप विराजमान हो, उसे फाँसी पर लटकाना सम्भव नहीं था, किन्तु इस

मायावी खेल में तो ब्रह्मसृष्टियों को त्याग और समर्पण की कसौटी पर कसा जा रहा है।

फाँसी का दिन आने तक श्री जी की जगह पर नजरबन्द कान्हजी भाई की दाढ़ी काफी बढ़ गयी थी। ऐसा लग रहा था कि वे कोई पीर, फकीर हों। फाँसी के लिये जैसे ही उन्हें कमरे से बाहर लाया गया, उनकी जोशीली वाणी गूँज उठी—

"सत्ता के नशे में पागल बादशाह के नुमाइन्दों! तुम शरियत की ओट में जिस तरह भोली-भाली गरीब जनता का खून चूस रहे हो, उसकी सजा तुम्हें जरूर भोगनी पड़ेगी। जब कजा के दिन रब्बुल आलमीन अल् रहीम अल् रहमान अल्लाह तआला सबकी कजा करेंगे, उस समय तुम्हें दोजख की अग्नि में बार-बार जलाया जाएगा। तुम्हारे ये सारे जुल्म सबकी आँखों के सामने

रहेंगे। तुम्हें किसी भी कीमत पर माफी नहीं मिलेगी।"

परब्रह्म की कृपा से कान्हजी भाई की इस आवाज में इतना प्रभाव था कि चारों ओर सन्नाटा छा गया। कियामत और कजा की हकीकत को सुनकर काजी, जल्लाद, तथा सिपाही सभी थर्रा उठे। उन्होंने अपने मन में यह मान लिया कि यह तो खुदा का कोई फकीर है। यदि हमने इसे फाँसी दे दी, तो इसकी बददुआएँ जड़-मूल से ही हमारा नाश कर देंगी।

परिणाम स्वरूप, सर्वसम्मति से कान्हजी भाई को छोड़ना पड़ा। कान्ह जी भाई हँसते-हँसते तेज कुँवरि जी के पास आए और सारा वृत्तान्त कह डाला। सब कुछ सुनकर तेज कुँवरि जी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

**यह कथन सर्वांश में सत्य है कि "धर्मो रक्षति**

रक्षितः" अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म छतरी के समान उसकी रक्षा करता है।

अमदाबाद के कारागार से निकलने के पश्चात् श्री जी दीपबन्दर गये। दीपबन्दर में सुन्दरसाथ जयराम जी रहा करते थे। श्री जी को देखकर ही वे आनन्द में गदगद हो गये और बोले—

"कहो मिहिरराज! कैसे हो? यहाँ किस कारण आना हुआ?"

श्री जी ने कहा— "मैं तो तुम्हारे लिये ही आया हूँ और मुझे यहाँ धाम धनी श्री राज जी ने ही भेजा है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि तुम माया को छोड़कर अपने निजघर को याद करो।

"जयराम भाई! इतने दिन तुम्हें दीपबन्दर में रहते हुए

हो गये, लेकिन तुमने कितने लोगों की आत्मा को जाग्रत किया? सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के समय भी तुम नवतनपुरी नहीं आए। तुम तो इस माया की दुनिया में इतने रल गये हो कि तुम्हें यह संसार ही अपना घर लगता है। तुम परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होकर भी निजघर को पूरी तरह भुला चुके हो।

"तुम्हारी वृद्धावस्था आ गयी है, फिर भी धन के लोभ में दिन-रात बर्तन बनाकर बेचने के धन्धे में लगे हुए हो। आज दिन तक क्या किसी को दुनिया के सुखों से तृप्ति मिली है? इन्द्रियों के भोगों में तो सारा संसार फँसा हुआ है, तुम्हें तो जीवों के इस आचरण से अलग रहना चाहिए था। तुम्हारे दिल में तो ज्ञान-चर्चा और परमधाम के ध्यान के प्रति कोई लगन ही नहीं है।"

श्री प्राणनाथ जी के इन वचनों को सुनकर जयराम

भाई की आँखों से आँसू ढुलकने लगे। वे स्पष्ट शब्दों में कहने लगे— "हे श्री जी! मुझे बारम्बार धिक्कार है। मैं माया में उलझकर अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा परमधाम को भूल गया था। मैं तो इस संसार में डूबा पड़ा था। यह तो धाम धनी की हमारे ऊपर इतनी बड़ी कृपा है कि उन्होंने आपको हमारे पास भेज दिया।"

जब से दोनों के बीच चर्चा प्रारम्भ हुई थी, तभी से घर के सभी सदस्य एकत्रित होने शुरू हो गये थे। सभी ने आकर श्री जी के चरणों में प्रणाम किया और अपने को धन्य-धन्य माना।

तत्पश्चात् श्री जी को स्नान कराकर प्रीतिपूर्वक भोजन कराया गया। जब उन्हें विश्राम करने के लिये कहा गया तो उनकी अमृत वाणी पुनः मुखरित हो उठी—

"मैं यहाँ आराम करने के लिए नहीं आया हूँ। मेरा तो एक ही उद्देश्य है, तुम्हें माया से निकालकर श्री राज जी की तरफ ले चलना।

"अपनी उस ब्रज लीला को याद करो, जिसमें तुम्हारी आत्मा गोपियों के तनों में थी। तुम घर में रहते हुए भी अपना सारा ध्यान अपने प्राणप्रियतम अक्षरातीत में ही रखते थे। संसार में तुम्हारी जरा भी आसक्ति नहीं थी।

"बाँसुरी की आवाज सुनायी देते ही तुमने थोड़ी ही देर में अपने शरीर और संसार को छोड़कर योगमाया के ब्रह्माण्ड में रास का आनन्द लिया। रास में तुम्हें थोड़ी देर का भी विरह सहन नहीं हुआ था। लेकिन इस तीसरे ब्रह्माण्ड में आने के बाद जहाँ तुम्हारी आत्मा जाग्रत होनी चाहिए, वहीं तुम बेखटक होकर अज्ञान की गहरी निद्रा में



सो रहे हो। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होकर भी तुम माया में फँसे रहो, यह किसी भी कीमत पर तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है।"

श्री प्राणनाथ जी की अलौकिक चर्चा से श्रोताओं की भीड़ बढ़ने लगी। लगभग ६० नये व्यक्तियों ने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।

उस नगर में पौराणिक कथा-वाचकों में हलचल मच गयी। उनकी सभाओं में दिन-प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या घटती गयी। इसके विपरीत श्री जी की चर्चा सुनने के लिये भीड़ बढ़ती गयी।

पौराणिक कथा-वाचकों के शिष्य जब श्री जी की चर्चा सुनकर अपने गुरुजनों से अक्षरातीत परब्रह्म के धाम, स्वरूप, लीला, तथा अखण्ड व्रज-रास के

सम्बन्ध में प्रश्न पूछते थे, तो उनके पास मौन रहने के सिवाय कोई चारा नहीं था।

द्वेष की अग्नि में जलने वाले उन कथाकारों ने एक चुगलखोर को धन देकर इस बात के लिए तैयार किया कि वह जाकर नगर के पुर्तगाली बादशाह से इस बात की शिकायत करे कि जो ये नवागन्तुक चर्चा करने वाले प्राणनाथ जी आये हैं, वे तुम्हारे इष्ट देवों की निन्दा करते हैं। अतः इन्हें नगर से निकाला जाए।

चुगलखोर पुर्तगाली बादशाह का मित्र था और हिन्दुओं के प्रति क्रूर व्यवहार के लिये प्रसिद्ध था। कुछ दिनों के बाद जब पुर्तगाली बादशाह के दरबार में चुगलखोर पहुँचा, तो उसके ही मित्र के भेष में श्री राज जी के जोश की शक्ति स्वयं उपस्थित हुई। उसने चुगलखोर से पूछा— "मित्र! तुम इधर कहाँ आए हो?"

"मैं बादशाह के पास जा रहा हूँ। वह मेरा घनिष्ठ मित्र है।"

"किस कार्य से मिलने जा रहे हो?"

"इस नगर में एक ऐसा साधू आया है, जो सभी के इष्ट देवों की निन्दा करता है, उसे वहाँ से बाहर निकलवाना है।"

"क्या तुमने अपने कानों से उन्हें किसी की भी निन्दा करते हुए सुना है?"

"मैंने स्वयं सुना तो नहीं है, लेकिन कुछ लोगों ने मुझसे ऐसा ही कहा है। वैसे तो, मैंने अभी उन महात्मा को देखा भी नहीं है, किन्तु यदि मैं उन्हें इस नगर से बाहर निकलवाने में सफल हो गया, तो इस कार्य के लिए मुझे काफी धन भी मिलेगा।"

"मात्र धन के लालच में तुम अपने को पाप के कीचड़ में क्यों डाल रहे हो? कदाचित् तुम्हारी झूठी शिकायत से तुम्हारा मित्र बादशाह उस महात्मा के ऊपर अत्याचार करे, तो उस महात्मा की आहें तुम्हें खा जायेंगी। उस समय तुम्हें बचाने वाला कोई भी नहीं होगा।"

"प्रिय मित्र! तुमने सही समय पर सही राय दी, अन्यथा मेरे से यह पापपूर्ण काम अवश्य ही हो गया होता।"

"मैंने तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। अब तुम्हें जो कुछ भी अच्छा लगे, वह करो।"

यह कहकर वह चल पड़ा। थोड़ी ही देर में उस चुगलखोर ने अपने मित्र को चारों तरफ खोज डाला, लेकिन उसका कहीं भी अता-पता नहीं था।

भला वह मिलता कहाँ से? वह भेष तो पूर्णब्रह्म श्री राज जी के जोश की शक्ति (जिबरील) ने स्वयं धारण कर रखा था।

उस समय पुर्तगाली शासन का आतंक सबके मन में समाया हुआ था। स्वयं को सताये जाने के भय से अधिकतर सुन्दरसाथ घरों में छिप गये। कुछ खाड़ी पार करके भाग गये, तो कुछ यह भी कहने लगे कि हम तो श्री जी की चर्चा सुनने कभी गये ही नहीं और न कभी जायेंगे ही।

श्रद्धा और समर्पण का दावा करने वालों की भीड़ बहुत अधिक होती है, किन्तु समय की कसौटी पर सच-झूठ उजागर हो ही जाता है। सच्ची श्रद्धा तथा समर्पण की भावना रखने वालों के होठ बन्द होते हैं। वे अपनी श्रद्धा और समर्पण की भावना वाणी द्वारा नहीं,

बल्कि आचरण द्वारा ही प्रदर्शित करते हैं। निःसन्देह वाणी के विज्ञापन की अपेक्षा कर्म का विज्ञापन अधिक श्रेष्ठ होता है।

किन्तु, बात तो कुछ और ही थी। पुर्तगाली बादशाह तक शिकायत न पहुँच पाने से कोई भी अप्रिय घटना नहीं हुई, अगले दिन जब सभी एकत्रित हुए, तो अपनी भूल के कारण उन्हें लज्जित होना पड़ा।

यहाँ पर चर्चा करते हुये दो वर्ष हो गये थे। श्री प्राणनाथ जी जब भी चलने की इच्छा करते, सुन्दरसाथ बहुत भावुक हो उठता था। संसार में फैली हुई आत्माओं की जाग्रति केवल एक स्थान पर ही रहने से तो हो नहीं सकती थी। अतः उन्होंने वहाँ से चलने का मन ही मन दृढ़ संकल्प कर लिया।

उस समय अरब के उन्मादी लोगों ने दीपबन्दर पर छापा मारा और बहुत सी हिन्दू स्त्रियों, बच्चों, तथा पुरुषों को कैद कर अपने देश ले गये। उनका यही पेशा था। यद्यपि वे कैद किए हुए लोगों को पैसे लेकर मुक्त कर देते थे, किन्तु तलवार के बल से अपना मजहब फैलाने की मानसिकता उनकी रग-रग में भरी हुई थी।

तेज कुँवरि जी भी अरबों के बन्धन में आ गयी थीं। कार्य-कारण से यह श्री जी के लिये साधन बन गया, वहाँ से बाहर निकलने के लिये, ताकि तेज कुँवरि जी को बन्धन से छुड़ाया जा सके।

श्री प्राणनाथ जी दीपबन्दर से चलकर पोरबन्दर, पाटन, कच्छ होते हुए मण्डई आए। वहाँ प्रागमल, कुँवरबाई आदि बहुत से सुन्दरसाथ थे। माया में फँसे हुए उन सुन्दरसाथ को जाग्रत करने के लिये श्री जी ने चर्चा

में खण्डनी के शब्दों का भी प्रयोग किया। श्री जी ने कहा—

"चर्चा-चितवनि छोड़ने के कारण ही आप सभी माया में भटक रहे हैं। यह माया आज तक किसी की भी नहीं हुई है। आप सभी अपने परमधाम को भूलकर माया के झूठे सुखों में फँसे पड़े हैं। इस बात का विचार कीजिए कि आप यहाँ किस कार्य के लिये आए हुए हैं?"

वहाँ से चलकर कपाड़ए में हरिवंश राय के यहाँ पहुँचे। लौकिक रीति से बड़े भाई होने पर भी उनको खण्डनी के शब्दों से समझाया। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर जाग्रति की राह पर अपने कदम बढ़ाये।

आँवले का स्वाद पहले कड़वा होता है, किन्तु बाद में मीठा लगने लगता है। इसी प्रकार सत्य और हितकारी



बात पहले कड़वी लग सकती है, किन्तु उसका परिणाम बाद में मीठा होता है। इसके विपरीत कपटपूर्ण मीठी बात पहले अच्छी लगती है, किन्तु बाद में उसका परिणाम बहुत बुरा होता है।

वहाँ से श्री जी भोजनगर आये, जहाँ हरिदास जी के पुत्र वृन्दावन जी रहते थे। वैसे तो हरिदास जी का पूरा परिवार ही तारतम्य ज्ञान ग्रहण कर चुका था, किन्तु अभी आत्म-जाग्रति नहीं हो पायी थी। श्री जी का दर्शन करते ही वृन्दावन जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने श्री जी का यथायोग्य सत्कार किया।

श्री प्राणनाथ जी ने वहाँ भी चर्चा प्रारम्भ की। माया में प्रियतम अक्षरातीत तथा परमधाम को भूल जाने के कारण सुन्दरसाथ से जो अपराध हो रहा था, उसके सम्बन्ध में सावचेत किया। सभी को श्री जी की चर्चा

अमृत के समान मीठी लगी और सबने अपने मन की मलिनता भी दूर कर ली।

वहाँ से चलकर श्री प्राणनाथ जी नलिये से होते हुए ठठानगर पहुँचे। वहाँ नाथा जोशी नामक सुन्दरसाथ से भेंट हुई। श्री जी का दीदार करते ही नाथा जोशी का हृदय आनन्द से भर गया।

## (१४)

ठडानगर में १०-१२ दिन रहने के बाद श्री जी लाठीबन्दर आए। वहाँ विश्वनाथ भट्ट ने बहुत आदर सत्कार किया। अरब जाने की इच्छा से श्री जी लाठीबन्दर से जहाज में चढ़े।

किन्तु, यह क्या? समुद्र में अचानक तूफान उठ खड़ा हुआ, जो सत्रह दिनों तक बना रहा। हवा की दिशा उल्टी हो जाने से जहाज पुनः ठडानगर वापस आ गया।

"बलीयसी केवलम् ईश्वरेच्छा।" भविष्य और अतीत के गर्भ में क्या छुपा हुआ है, इसे हम पूरी तरह नहीं जानते। हमारी दृष्टि एक सीमा तक ही देख सकती है। किसी कार्य की सफलता में पुरुषार्थ आवश्यक है, किन्तु उसकी सफलता तो प्रियतम परब्रह्म की कृपा से ही है।

ठठानगर में नाथा जोशी से पुनः भेंट हुई। बन्धन भाई, जिन्दादास, तथा उनकी पत्नी भी मिलीं। श्री जी की अमृतमयी वाणी गूँज उठी। धर्म जिज्ञासुओं की भीड़ बढ़ने लगी। जो भी उनकी रसानन्द के सागर में डुबोने वाली चर्चा सुनता, वह परमात्मा का धन्यवाद दिये बिना नहीं रहता कि हे सर्वशक्तिमान् कृपालु परमेश्वर! आपकी कृपा के बिना हमें इस तरह की अलौकिक चर्चा नहीं मिल सकती थी।

कुछ सुन्दरसाथ ने कबीर पन्थ के गादीपति आचार्य चिन्तामणि की चर्चा की, जो एक बहुत बड़े योगाभ्यासी थे। उनके पास एक हजार शिष्यों का समूह भी था।

श्री प्राणनाथ जी चिन्तामणि जी से मिलने स्वयं चले। साथ में कुछ सुन्दरसाथ भी थे। श्री जी का दर्शन करके चिन्तामणि बहुत प्रसन्न हुए और स्नेह में भरकर बातें

करने लगे।

"आप कहाँ से आए हैं? यदि आपके पास अधिक ज्ञान है, तो मुझे सुनाइए या मुझसे सुनिये। यदि आपकी इच्छा होगी तो मैं आपको चतुर्भुज स्वरूप विष्णु भगवान, आदिनारायण, या ज्योति स्वरूप का भी दर्शन करा सकता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं आपको दस अनहदों की ध्वनि भी सुनवा सकता हूँ।"

"मैं तो आपसे ज्ञान लेने आया हूँ। आप हमें वह अलौकिक ज्ञान देने का कष्ट करें, जिससे हमारा हृदय धन्य-धन्य हो जाये।"

"वैसे तो कबीर जी का ज्ञान बहुत ऊँचा है, किन्तु कमाल का ज्ञान उनसे भी ऊँचा है, क्योंकि कबीर जी परमात्मा के आधे भक्त हैं और कमाल जी पूरे भक्त।"

"चिन्तामणि जी! इस तरह की बात आपके मुख से शोभा नहीं देती। आप कबीर जी की गादी पर बैठकर भी कबीर जी के स्वरूप को नहीं पहचानते, यह बहुत बड़ा आश्चर्य है। सच तो यह है कि कबीर जी अक्षर ब्रह्म का ज्ञान रखते हैं, लेकिन माया का तन होने के कारण उन्हें माया का आधा भक्त कहा गया है तथा कमाल ब्रह्मज्ञान से रहित होने के कारण माया के पूरे भक्त हैं। देखिए, कबीर जी ने परमधाम के सम्बन्ध में कितना ऊँचा ज्ञान दिया है—

*एक पलक से गंग जो निकसी, हो गयो चहुं दिस पानी।*

*उहि पानी दो पर्वत ढांपे, दरिया लहर समानी॥*

*उड़ मक्खी तरुवर चढ़ बैठी, बोलत अमृत बानी।*

*उस मक्खी के मक्खा नाहीं, बिन पानी गभानी॥*

तिन गर्भे गुन तीनों जाए, वो तो पुरुष अकेला।

कहे कबीर या पद को बूझे, सो सद्गुरु मैं चेला॥

श्री जी ने यह स्पष्ट किया कि एक पलक क्या है? उससे गंगा का निकलना, गंगा के जल में दो पर्वतों का डूबना, तथा गंगा की लहरों का सागर में समाना क्या है? मक्खी, वृक्ष, तथा अमृत वाणी का रहस्य खुलते ही चिन्तामणि जी सन्न रह गये।

परमधाम में प्रेम और आनन्द की लीला चित् और आनन्द रूपी पलकों से होती है। चित् स्वरूप ने इच्छा रूपी गंगा को प्रकट किया, जिसमें सत् और आनन्द रूपी दोनों पर्वत डूब गये अर्थात् सत् आनन्द को जानना चाहता है तथा आनन्द सत् को। इसी इच्छा रूपी गंगा की लहरों का सर्वरस सागर में समाना ही परब्रह्म की पूर्ण

पहचान है।

परब्रह्म की आदेश (हुक्म) शक्ति ने संसार रूपी वृक्ष पर बैठकर ब्रह्मज्ञान की अमृत वाणी कही है। उस आदेश शक्ति का कोई भी स्वामी नहीं है, बल्कि उसने अपने संकल्प मात्र से मूल प्रकृति रूपी गर्भ को धारण किया, जिससे सत्व, रज, और तम ये तीनों गुण प्रकट हुए। परम पुरुष परब्रह्म इस खेल से न्यारा है। इस रहस्य को खोलने वाले मेरे सद्गुरु हैं तथा मैं उनका शिष्य हूँ।

वे अपने शिष्यों से कहने लगे— "मेरे गुरुदेव ने कहा था कि कबीर जी के इस शब्द (पद) का जो अर्थ बतायेगा, वह कोई अलौकिक ब्रह्मस्वरूप व्यक्ति होगा। भविष्य में वे तुम्हें अवश्य मिलेंगे। ऐसा लगता है कि आज उनकी भविष्यवाणी सत्य हो गयी।"



श्री जी तो उठकर अपने निवास पर आ गये और चिन्तामणि जी उनकी खोज में भटकते फिर रहे थे। सत्संग में मग्न होने के कारण उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहा कि वे श्री प्राणनाथ जी का निवास ही पूछ लेते।

ब्रह्मज्ञान और प्रेम का तीर जिसके हृदय में चुभ जाता है, वह शान्ति से नहीं बैठ सकता। उसके अन्दर विरह की वह ज्वाला धधकने लगती है, जो मिलन के पश्चात् ही बुझने का नाम लेती है।

वे खोजते-खोजते कल्लू मिश्र के यहाँ पहुँचे। सामान्य शिष्टाचार के उपरान्त चिन्तामणि जी ने कल्लू मिश्र से पूछा—

"क्या आप श्री प्राणनाथ जी का निवास स्थान जानते हैं?"

"एक दिन वे मेरे यहाँ आए थे। उनके साथ नाथा जोशी, जिन्दा दास आदि थे। सम्भवतः वे नाथा जोशी के यहाँ ठहरे होंगे।"

"तब तो बहुत ही अच्छा है। मैं उन्हें बहुत देर से खोज रहा हूँ। अब मैं उनके ही पास जा रहा हूँ।"

"आपकी जैसी इच्छा।"

जब चिन्तामणि श्री जी को खोजते-खोजते नाथा जोशी के घर पहुँचे, तो देखा कि श्री जी सुन्दरसाथ के साथ बैठकर धर्म-चर्चा कर रहे हैं। अपने शिष्यों के साथ चिन्तामणि भी श्रोताओं की भीड़ में जा बैठे। श्री जी के मुखारविन्द से ब्रह्मज्ञान की अविरल धारा बह रही थी। उसमें डूबकर चिन्तामणि जी बेसुध हो गये। कहाँ अब तक तो वे क्षर जगत की सिद्धियों में ही घूम रहे थे, कहाँ

अब परमधाम के सुखों की रसानुभूति कराने वाले ब्रह्मज्ञान के सरोवर में स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रहे थे।

चिन्तामणि जी के सेवकों में खलबली मच गयी। उनमें आपस में दबी जबान से यह बात होने लगी कि जब हमारे गुरुदेव सर्वज्ञ और विशेष योगबल से युक्त हैं, तो उन्हें किसी की शरण में जाने की आवश्यकता क्या है?

इनसे बेखबर चिन्तामणि तीन दिनों तक धर्म-चर्चा के श्रवण में डूबे रहे। इसके पश्चात् अपने सेवकों सहित समर्पण कर दिए।

चर्चा में एक दिन श्री जी ने खण्डनी के कुछ शब्द प्रयोग किये, जिन्हें सुनकर चिन्तामणि जी उस समय कुछ बोले तो नहीं, लेकिन श्री जी से अकेले में जाकर

कहने लगे- "आप अब मेरे सर्वस्व हैं। एकान्त में आप जितनी भी मेरी खण्डनी करना चाहें कर लीजिए, लेकिन शिष्यों के बीच में मेरी लाज रख लीजिएगा।"

श्री जी ने कहा- "भला, मैं तुम्हारी गरिमा की रक्षा क्यों नहीं करूँगा ? मैं इस तरह से कहूँगा कि या तो केवल मैं समझूँगा या तुम। किसी तीसरे को उस समय कुछ भी समझ में नहीं आयेगा।"

रात्रि में एक कीर्तन उतरा , जिसकी व्याख्या प्रातःकाल की चर्चा में श्री जी ने की। उसका संक्षेप में भाव इस प्रकार है- "सत्य की राह पर चलने का प्रयास करने वालों! मैं एक बात कह रहा हूँ। माया के फन्दों में संसार के सभी प्राणी फँसे हुए हैं। माया के इतने बन्धनों में जीव फँसा हुआ है कि उसे कोई खोल नहीं पाता। चौदह लोक तक अज्ञानता का अन्धकार फैला हुआ है।

लोक लज्जा की दीवारों को तोड़े बिना ज्ञानी नहीं बना जा सकता। तुमने गृहस्थ के बन्धनों को छोड़कर उससे भी बड़े गादीपति के बन्धन डाल लिये। ज्ञान का अहंकार छोड़ दो, क्योंकि यह बहुत बड़ी खाई है। यदि तुम सत्य को पाना चाहते हो, तो शब्दों से उसकी पहचान करो। बिना पूर्ण समर्पण के परम सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस झूठी माया को छोड़कर सद्गुरु को रिझा लो, जिससे तुम्हारी आत्मा जाग्रत हो सके।"

इन शब्दों ने चिन्तामणि के ऊपर जादू की तरह काम किया। वे अचानक खड़े हो गये और भावुकता मिश्रित जोश भरे शब्दों में कहने लगे – "हे श्री जी! आपके ज्ञान की लाठी से मैं अपने काले कुत्ते (अहंकार) के सिर पर मारूँगा।"

पुनः अपने शिष्यों की ओर देखकर श्री जी की ओर

संकेत करते हुए बोले- "ये श्री जी तो साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। मेरे पास कुछ भी अखण्ड का धन नहीं है। मैं तो अब इनके चरणों में पूर्ण रूपेण समर्पित हो ही चुका हूँ। अपने आत्म-कल्याण के लिये तुम सब भी इनके चरण पकड़ लो।"

तब श्री प्राणनाथ जी ने मुक्त कण्ठ से चिन्तामणि की प्रशंसा की- "शाबाश! चिन्तामणि! तुमने अपनी मैं-खुदी तथा झूठी प्रतिष्ठा के बन्धनों को तोड़ डाला है। अपने शिष्यों के सामने अपनी कमजोरी को स्वीकार करना ब्रह्मसृष्टि के सिवाय अन्य किसी के लिये सम्भव नहीं है।"

चिन्तामणि जी अपने समस्त शिष्यों सहित पूर्ण रूप से श्री प्राणनाथ जी के प्रति समर्पित हो गये और बोले- "हमें अपने चरणों में लेकर तारतम्य ज्ञान प्रदान करें और हमारी आत्मा को जाग्रत करें।"

श्री जी ने सभी को स्पष्ट रूप से कह दिया कि अपनी आत्म-जाग्रति के लिये इन चार प्रतिज्ञाओं का पालन करना अनिवार्य है—

१. किसी भी प्राणी का माँस या मछली खाना महापाप है।

२. शराब या किसी भी प्रकार के नशे का सेवन पूर्ण रूप से वर्जित है।

३. परायी स्त्री को एकमात्र माँ या बहन के ही रूप में देखना चाहिए।

४. चोरी और झूठ बोलने का पूर्ण त्याग होना चाहिए।

सभी ने मुक्त कण्ठ से यह प्रण लिया कि हम जीवन में हमेशा ही इन चारों प्रतिज्ञाओं का पालन करेंगे। सबके

मन में यह दृढ़ धारणा थी कि श्री प्राणनाथ जी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं।

जैसे-जैसे श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से होने वाली चर्चा बढ़ती गयी, वैसे-वैसे सुन्दरसाथ की संख्या में भी वृद्धि होती गयी। अपने १००० शिष्यों सहित चिन्तामणि जी द्वारा तारतम्य ज्ञान लेने की बात भला कैसे छिपी रह सकती थी। इस घटना की चिन्गारी तो सारे नगर में ही फैल गई।



## (१५)

चतुर दास एक ब्राह्मण थे, जो नित्य-प्रति श्री जी को दूध पहुँचाने की सेवा किया करते थे। जब वह दूध देने आते थे, तो वहाँ ब्रज-रास की चर्चा चल रही होती थी। चतुर दास आश्चर्यचकित होकर उस चर्चा का श्रवण करते थे।

एक दिन चतुर दास सेठ लक्ष्मण दास जी के आँगन में पहुँचे। वैसे तो प्रायः प्रतिदिन ही उनके आँगन में चर्चा-सत्संग होता था और चतुर दास भी उसमें शामिल हुआ करते थे, लेकिन आज कुछ और स्थिति थी। अभी थोड़ी ही देर पहले वे अखण्ड ब्रज-रास की चर्चा सुनकर आये थे।

चतुर दास जी ने लक्ष्मण दास जी से पूछा- "ब्रज

और रास कहाँ पर तथा कैसे अखण्ड है?"

लक्ष्मण सेठ ने उत्तर दिया— "वैसे हैं तो इसी ब्रह्माण्ड में, किन्तु दिव्य दृष्टि मिलने पर ही दिखायी देता है।"

"तुम्हें दिव्य दृष्टि कब मिलेगी? जब पाँच तत्त्व और तीन गुण वाले इस ब्रह्माण्ड का महाप्रलय में नाश हो जायेगा, तब अखण्ड ब्रज और रास का ठिकाना कहाँ होगा?"

"यह अलौकिक ज्ञान तुमने कहाँ पाया? मैं तो यह सुनकर आश्चर्य में डूबा जा रहा हूँ।"

"अपने शहर में कोई दिव्य महापुरुष आये हुए हैं। उनके द्वारा ही अखण्ड ब्रज, रास, एवं परमधाम की चर्चा चलती रहती है।"

"मुझे भी तुम उनके चरणों में ले चलो, ताकि मैं भी उनकी कृपा की छत्रछाया पा सकूँ।"

"मैं उनकी स्वीकृति लिये बिना आपको उनके पास नहीं ले चल सकूँगा।"

"तुम्हारी जैसी इच्छा। मुझे तो किसी भी तरह उनके चरण चाहिए।"

चतुर दास ने श्री प्राणनाथ जी के चरणों में आकर प्रार्थना की— "हे धनी! सेठ लक्ष्मण दास इस नगर के प्रतिष्ठित सेठ हैं और आपके दीदार के प्यासे हैं।"

श्री जी बोले— "उन्हें शीघ्र बुलाकर ले आओ।"

वहाँ पर कई अन्य धनवान लोग बैठे थे, जो किसी न किसी रूप में लक्ष्मण दास जी से प्रतिस्पर्धा (द्वेष) रखते थे। वे सभी कहने लगे— "धाम धनी! लक्ष्मण दास अपने

सामने किसी को कुछ भी नहीं समझते। उन्हें बुलाना ठीक नहीं है।"

ईर्ष्या की अग्नि वह भड़ी है , जिसमें मनुष्य स्वयं जलकर तो दुःखी होता ही है, दूसरों को भी दुःखी करता है।

श्री जी ने उनके मनोभावों को ताड़कर कहा – "प्रत्येक जिज्ञासु को मुझसे मिलने का पूर्ण अधिकार है। अपनी आत्मिक प्यास मिटाने के लिये जो भी मेरे पास आता है, उसे देखकर मुझे अपार प्रसन्नता होती है।"

चतुर दास श्री जी के आदेशानुसार लक्ष्मण सेठ को अपने साथ लेकर आये। श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करते ही लक्ष्मण दास जी को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। उनके मन की सारी उदासी मिट गयी।

श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से अलौकिक चर्चा सुनने के पश्चात् लक्ष्मण दास जी बहुत आनन्दित हुए। यद्यपि वे चर्चा सुनने के पश्चात् घर लौट आये, फिर भी उनका मन सुन्दरसाथ और श्री जी के चरणों में ही लगा हुआ था।

इसके बाद भी चर्चा सुनने के लिए सेठ लक्ष्मण दास दो-चार बार आते रहे। अचानक अपने बाग में टहलते समय जिन्दा दास से भेंट हो गयी। दोनों में वार्ता प्रारम्भ हो गयी।

"सेठ जी! आजकल आप चर्चा सुनने कहाँ जाते हैं?"

"अपने नगर में श्री प्राणनाथ जी आए हुए हैं। मैं उनके चरणों में अखण्ड ब्रज, रास, तथा परमधाम की

चर्चा सुनने जाता हूँ।"

"क्या अपने उनके वास्तविक स्वरूप की पहचान की है कि वे कौन हैं? आप मात्र उनको एक ज्ञानी महात्मा ही समझे बैठे हैं या कुछ और?"

"तुम्हें उनके सम्बन्ध में जो कुछ मालूम है, उसे बताने का कष्ट करो। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि उनके चरणों में जाने पर अपार शान्ति मिलती है और अलग होने की इच्छा ही नहीं होती।"

"मैं भागवत में वर्णित 'मार्कण्डेय के दृष्टान्त' से उनके स्वरूप की पहचान कराता हूँ—

"सरोवर के किनारे अपने आश्रम में तप करते-करते मार्कण्डेय ऋषि को नारायण के दर्शन हुए। ऋषि ने दर्शन के साथ-साथ माया भी देखने की इच्छा प्रकट की थी।

अतः नारायण ने उनके ऊपर अज्ञान रूपी नींद का आवरण डाला। मार्कण्डेय ऋषि ने अचानक प्रलय का दृश्य देखा, जिसमें सारी पृथ्वी जल में डूबी हुई थी। प्रलय के जल में उन्होंने पत्तों पर लेटे हुए एक अति सुन्दर बालक को देखा। मुस्कराते हुए बालक के श्वास लेने मात्र से वे उसके अन्दर चले गये। वहाँ उन्होंने करोड़ों ब्रह्माण्डों का दृश्य देखा। अनेक योनियों में स्वयं को बहुत कष्ट भोगते हुए पाया। जब वे माया के कष्ट से बहुत दुःखी हो गये, तो नारायण जी ने उनके ऊपर डाले हुए अज्ञान का आवरण हटा दिया। अज्ञान रूपी नींद के हटते ही उन्होंने अपने को उसी सरोवर के किनारे पाया, जहाँ उन्होंने तप किया था। सामने भगवान नारायण विराजमान थे।

"हे सेठ जी! जिस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान

नारायण से माया देखने की इच्छा की थी, उसी प्रकार अनादि परमधाम में ब्रह्मात्माओं ने अक्षरातीत परब्रह्म से माया देखने की इच्छा की थी। उनकी इच्छा पूरी करने के लिये सच्चिदानन्द परब्रह्म ने अपनी आत्माओं को वहाँ बैठे-बैठे नजर (सुरता) मात्र से इस मायावी खेल को दिखाया है। परमधाम की आत्मायें इस मायावी जगत में अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को भूल गयी हैं। उनको जाग्रत करने के लिये ही स्वयं परब्रह्म 'श्री प्राणनाथ जी' के स्वरूप में आये हुए हैं।"

श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान होते ही सेठ श्री लक्ष्मण दास जी की स्थिति बदल गयी। उन्हें गीता-भागवत आदि धर्मग्रन्थों के गुह्य भेद स्पष्ट हो गये। उन्हें अपने शरीर और संसार का जरा भी भान न रहा।

ठठानगर में दस माह रहने के पश्चात् श्री जी ने



मस्कत जाने का निर्णय लिया। सभी सुन्दरसाथ ने एक स्वर से प्रार्थना की कि हे श्री जी! आप हमें छोड़कर न जाइए। श्री तेज कुँवरि जी को ढूँढकर लाने की सेवा हमें दी जाये।

श्री जी ने उत्तर दिया— "वहाँ मेरा जाना तो मात्र एक बहाना है। सम्भवतः ब्रह्मसृष्टियों के जागनी कार्य के लिये ही मुझे वहाँ जाना पड़ रहा है।"

यद्यपि सुन्दरसाथ ने वहाँ से न जाने की प्रार्थना तो बहुत की, परन्तु श्री जी ने जागनी कार्य हेतु जो दृढ़ निर्णय ले लिया था, उसे टाला नहीं जा सकता था।

जिसका संकल्प दृढ़ नहीं होता है, उससे महान कार्य की आशा निरर्थक है। दृढ़ संकल्प तथा जिद्दीपने में आकाश-पाताल का अन्तर है। परमार्थ तथा महान

कार्यों में दृढ़ता की भावना कार्य करती है , जबकि स्वार्थमयी एवं पापपूर्ण कार्यों में जिद्दीपना।

श्री प्राणनाथ जी ठट्टानगर से लाठीबन्दर गये। वहाँ से नाव द्वारा मस्कत पहुँचे।

## (१६)

श्री जी जैसे ही मस्कत पहुँचे, उनकी भेंट महावजी भाई से हुई। महावजी भाई की दुकान बन्दरगाह के पास ही थी। श्री जी के परिवार से इनका लौकिक नाता था। इस सम्बन्ध से उन्होंने श्री जी का बहुत आदर-सम्मान किया।

महावजी भाई ने श्री प्राणनाथ जी को अपने मकान के पास ही सुन्दर स्थान में ठहराया और श्रद्धा भाव से सेवा करने लगे।

**भला वह कौन बदनसीब होगा, जो श्री प्राणनाथ जी की अमृतमयी वाणी का रसपान करना न चाहेगा।**

जैसे-जैसे चर्चा का दौर शुरू हुआ, लोगों की संख्या बढ़ती गयी। वहाँ पर महावजी भाई सहित बहुत से लोगों

ने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।

एक दिन चर्चा के समय श्री जी ने महावजी भाई की थोड़ी सी खण्डनी कर दी। उनसे यह सहन नहीं हुआ और मन ही मन उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब वह श्री प्राणनाथ जी की चर्चा सुनने नहीं जायेंगे।

यद्यपि अपमान सहना अमृत तुल्य है जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है और सम्मान विष तुल्य, किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वाभिमान और धर्म को खो देने के बाद इन दोनों का कोई भी महत्व नहीं है।

अगले दिन चर्चा के समय वह नहीं आये। काम के बहाने दुकान पर चले गये। रात को भी वहीं पर सो गये। लेकिन यह क्या? तड़ाक.....तड़ाक! भय से काँपते हुए महावजी भाई उठ बैठे और सोचने लगे— ये चाँटे

किसके हो सकते हैं? दुकान के दरवाजे तो बन्द हैं। बाहर से किसी के आने का प्रश्न ही नहीं। यह सपना भी तो है नहीं। गालों पर अभी भी चोट का दर्द है।

मैं आज चर्चा सुनने नहीं गया था। भरी सभा में अपनी खण्डनी सुनकर श्री जी के प्रति मेरे मन में कटुता हो गयी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे अपने पाप की सजा मिली है। अब धाम धनी के चरणों में जाकर क्षमा माँगने के सिवाय मेरे पास अन्य कोई भी चारा नहीं है। इस प्रकार सोचते हुए वे रो पड़े।

प्रातः तड़के ही महावजी भाई श्री जी के कमरे के दरवाजे पर आकर बैठ गये। वे श्री प्राणनाथ जी के चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगे, साथ ही साथ अपनी व्यथा भी शब्दों से प्रकट करने लगे।

हे धाम धनी! मैं आपको पहचान नहीं पाया। अपनी खण्डनी सुनकर मैं बुरा मान गया था। मुझे क्षमा कर दीजिए।

अब पूर्ण श्रद्धा और समर्पण के साथ महावजी भाई चर्चा सुनने लगे। अब उनको दिन-रात श्री जी की सेवा करने और चर्चा सुनने के अतिरिक्त कोई काम ही नहीं था।

सांसारिक रिश्तों की डोर अर्थ-प्रधान स्वार्थ से बँधी होती है। उसमें बाधा पड़ने पर खटास आना स्वाभाविक है।

महावजी भाई के धर्म कार्य में लगे रहने से परिवार के सभी लोग झगड़ने लगे। पत्नी भी विष बुझे तीर छोड़ने लगी- "यदि बाबा ही बनना था, तो मुझसे विवाह क्यों

किया? अब तो तुम्हें परिवार की कोई चिन्ता ही नहीं है कि हमारा काम-काज कैसे चलेगा?"

किन्तु, इन कटु वचनों को सुनते हुए भी महावजी भाई ने अनसुना कर दिया और श्री जी के प्रति निष्ठा में रञ्ज मात्र भी कमी नहीं आने दी।

निरर्थक विवादों के दलदल से बचने का अस्त्र है सहनशीलता। इसी सहनशीलता के स्वच्छ जल में महानता का सुगन्धित पुष्प खिलता है।

जिन डकैतों ने दीपबन्दर पर हमला करके लोगों का हरण किया था, उनका दरोगा श्री जी के पास आकर बार-बार यही कहता था कि हिन्दुस्तान के जो लोग कैद में हैं, उनकी फिरौती देकर बन्धन मुक्त कर लेवें।

उसके बार-बार के इसी कथन को सुनकर श्री जी ने

स्पष्ट रूप से कह दिया कि तुम मेरे सामने इस प्रकार की बातें क्यों कहते हो? जो लोग बन्ध में हैं, उनको छुड़ाने की जिम्मेदारी उस सर्वसमर्थ परमात्मा की है। मुझे उनको छुड़ाने की कोई भी चिन्ता नहीं है।

यद्यपि दरोगा को यह मालूम चल गया था कि ये जो चर्चा करने वाले महापुरुष हैं, उनकी पत्नी भी बन्ध में है, किन्तु श्री जी का दो टूक उत्तर सुनकर वह कुछ सकपका-सा गया था।

उसने अपने मन में सोचा कि ये कितने महान पुरुष हैं, जिन्होंने मोह-माया के बन्धनों को तोड़ रखा है। फिरौती की बात कहने के बहाने वह उनका दर्शन करके अपने को धन्य-धन्य मानता और ब्रह्मज्ञान की चर्चा सुनकर परमात्मा का शुक्र बजाता।



अब्बासी बन्दर में रहने वाले भैरव सेठ को जब मालूम हुआ कि सभी लोग तो छूट गये, केवल लोहाणा वंश के क्षत्रिय लोग ही अभी बन्धन में पड़े हुए हैं, तो पुण्य और प्रतिष्ठा की चाह में उन्होंने उनको छुड़ाने का निश्चय किया। अपने सेवकों को भेजकर उन्होंने सत्तर हजार रुपये जमा करवाये और सबको छुड़ा लिया।

## (१७)

श्री जी से जब भैरव सेठ की भेंट हुई तो वह अति प्रसन्न हुए। वह श्री प्राणनाथ जी को श्रद्धापूर्वक अपने घर ले जाकर सेवा करने लगे। भैरव सेठ हिन्दुस्तान के अपने सगे-सम्बन्धियों के बारे में पूछने लगे, जिसका विधिवत् उत्तर श्री जी ने दिया।

अब्बासी बन्दर में भैरव सेठ के मकान में श्री जी की चर्चा प्रारम्भ हो गयी। चर्चा सुनने के लिये भैरव सबसे आगे बैठे। ब्रज तथा अखण्ड रास की चर्चा सुनकर उन्हें बहुत आनन्द हुआ।

दोपहर के भोजन के पश्चात् श्री प्राणनाथ जी ने पुनः चर्चा प्रारम्भ कर दी। रात्रि का अन्धेरा छाने पर सुन्दरसाथ कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते-करते रात्रि

व्यतीत हो गयी। भैरव सेठ तब अपने निवास पर गए। इस प्रकार की दिनचर्या लम्बे समय तक चलती रही।

मुल्तान से दो सत्संगी भी श्री जी की चर्चा में शामिल हुए। वे दोनों गुरु नानक देव जी के मत को मानने वाले थे। उन्हें कबीर जी की साखियों के गुह्य भेद समझ में नहीं आते थे। श्री जी के चर्चा-सत्संग से वे सब कुछ समझने लगे। उन्हें यह पूर्ण विश्वास हो गया कि श्री प्राणनाथ जी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। उन्होंने अपना सर्वस्व श्री जी के चरणों में न्योछावर कर दिया।

अब्बासी बन्दर में तेज बाई नामक एक वृद्धा रहती थी। वह अपने परिवार सहित श्री जी के दर्शन करने आईं। वह वाणी-चर्चा तथा कीर्तन सुनकर इतनी मग्न हो गयी कि उन्हें सांसारिक कार्यों की चिन्ता ही नहीं रहती थी। उनके साथ वहाँ की बहुत सी बहनों ने तारतम्य

ज्ञान ग्रहण किया। वे हमेशा चर्चा में इतनी मग्न रहने लगीं कि घर में उनका जरा भी मन नहीं लगता था।

श्री जी ने देखा कि एक-एक कर बहुत से सुन्दरसाथ की आत्मा जाग्रत हो गयी, लेकिन भैरव सेठ जस के तस हैं। यद्यपि वे वाणी चर्चा के श्रवण में बहुत आगे रहते हैं, फिर भी जाग्रत न होने के कुछ विशेष कारण हैं। एक दिन एकान्त में उनकी भैरव सेठ से वार्ता हुई—

"प्रिय भैरव! तुमने सुन्दरसाथ को डाकुओं के बन्धन से छुड़ाया। मुझे अपने यहाँ लाकर सच्ची भावना से सेवा करते हो तथा चर्चा भी सुनने आते हो, फिर भी तुम्हारी आत्मा क्यों नहीं जाग्रत होती?"

"हे धाम धनी! यह तो आपकी मेरे ऊपर अपार कृपा

है, जो मुझे परमधाम का अखण्ड धन आपके श्रीमुख से प्राप्त हो रहा है।"

"मेरे आग्रह से तुम केवल एक माह के लिये पाँच चीजों का त्याग कर दो – १. तम्बाकू का सेवन २. माँस-मछली का भोजन ३. शराब और प्रत्येक प्रकार का नशा ४. परस्त्री गमन ५. चोरी।

"यदि एक माह के अन्दर तुम्हें पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत का अनुभव न हो जाये, तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा तथा तुम माया में मग्न हो जाना।"

"यदि इतनी सरलता से मेरी आत्मा जाग्रत हो जाये तथा प्रियतम परब्रह्म का भी दर्शन हो जाये, तो फिर और क्या चाहिए? आपकी आज्ञा का मैं अवश्य ही पालन करूँगा।"

भैरव सेठ ने उसी क्षण अपने आगे रखे हुक्के को तोड़ दिया तथा श्री जी के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य ही महीने भर पूर्ण रूप से संयम का पालन करूँगा।

भैरव सेठ की पत्नी को यह जरा भी पसन्द नहीं था कि उसके पति के स्वास्थ्य में थोड़ा सा भी हास हो। वह जोर-जोर से बड़बड़ाने लगी—

"न जाने कहा से ऐसे महात्मा चले आते हैं, जो माँस-शराब का सेवन करने से भी मना करते हैं। भला, मेरे पतिदेव इसके बिना कैसे रह सकते हैं? यदि शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा, तो इस संसार का सुख कैसे लिया जा सकता है? भगवान बचाये, ऐसे महात्माओं से।"

ये कटु शब्द जब भैरव सेठ के कानों में पड़े तो वे खीझ उठे। उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए

रोषपूर्ण शब्दों में कहा – "तुम्हें यहाँ बड़बड़ाने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह के संयम का प्रण मैंने सारे जीवन भर के लिये तो किया नहीं है। यदि एक माह के अन्दर मुझे परमात्मा का दर्शन नहीं हुआ, तो मैं पहले की ही तरह खाना-पीना शुरू कर दूँगा।"

इस प्रकार की स्पष्टवादिता को सुनकर उनकी पत्नी मन मसोसकर रह गयी, लेकिन उसके मन में श्री जी के प्रति कटुता बनी रही।

अपने मन को संयम की रस्सी से बाँधकर भैरव सेठ चर्चा सुनने लगे। चर्चा के तीसरे दिन जब श्री जी वर्णन कर रहे थे – "कालमाया और योगमाया के परे परमधाम है, जिसमें सर्वरस सागर से आगे यमुना जी के सात घाट हैं, जिनके आगे चाँदनी चौक है। उसके आगे रंगमहल है, जिसकी प्रथम भूमिका में ६४ थम्भों वाले मूल मिलावा में

पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द अपनी आह्लादिनी शक्ति श्यामा जी तथा आनन्द स्वरूपा आत्माओं के साथ विराजमान हैं। सभी अति सुन्दर किशोर स्वरूप वाले हैं।"

अभी श्री जी वर्णन कर ही रहे थे कि भैरव सेठ खड़े हो गये और बोले- "हे धाम धनी! आपकी कृपा से मैंने पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया। मैं अब जीवन में कभी भी माँस, शराब, तम्बाकू, परस्त्री गमन आदि का पाप नहीं करूँगा।"

श्रद्धा ही ज्ञान का मूल है। श्रद्धा से ही परम सत्य प्राप्त होता है। श्रद्धा ही आध्यात्मिक उन्नति का मूल है। श्रद्धाहीन व्यक्ति जीवन में कभी भी सफल नहीं हो सकता। भैरव सेठ की निश्छल श्रद्धा ने ही उन्हें खाई से निकालकर आत्म-जाग्रति के शिखर तक पहुँचा दिया।



जब भैरव सेठ ने श्री प्राणनाथ जी के चरणों में आकर तारतम्य ज्ञान ग्रहण कर लिया, तो सारे नगर में ही इसका शोर फैल गया। लोग भैरव सेठ की अचानक ही इस धार्मिक भावना पर आश्चर्य करने लगे।

अब्बासी बन्दर में भणसारी जाति के हिन्दू लोग रहते थे, जिनका मुख्य पेशा व्यापार करना था। श्री जी की चर्चा सुनने वालों में महिला सुन्दरसाथ की संख्या बहुत थी। उनके पति इस बात से बहुत खिन्न रहा करते थे कि उनकी पत्नियाँ उनकी तरफ से बहुत लापरवाह रहती हैं। जब देखो तब उन्हें चर्चा के सिवाय अन्य कुछ सूझता ही नहीं है। प्रतिदिन ठण्डा-ठण्डा भोजन करके वे ऊब चुके थे, क्योंकि वे भोजन बनाकर चर्चा सुनने चली जाया करती थीं।

वे सभी मिल कर भैरव सेठ के पास गये और लड़ने

लगे कि हमारी लड़ाई आपसे है, क्योंकि सभी महिलायें आप ही के घर बैठी रहती हैं।

भैरव सेठ ने कहा— "मैं किसी को भी बुलाने तो जाता नहीं। वे अपने आत्म-कल्याण की कामना से आती हैं। तुम अपनी पत्नियों को अपने घर पर रोक कर रखो। मेरा किसी से भी क्या मतलब? तुम्हें न तो ब्रह्मज्ञान की चर्चा सुननी है और न किसी को सुनने ही देनी है।"

इस प्रकार की खरी-खरी बातें जब उन्हें सुनने को मिलीं, तो वे शर्मिन्दा होकर अपने घर आये और अपनी-अपनी पत्नियों से लड़ने लगे। उन्होंने कहा—

"तुम सभी रात्रि के समय घर छोड़कर भैरव सेठ के यहाँ क्यों जाती हो?"

सभी का यही उत्तर था- "वहाँ पर हम सभी उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की चर्चा सुनने के लिये जाती हैं। एक तो इस मुस्लिम देश में कभी धर्म चर्चा नहीं होती और यदि हमारे सौभाग्य से हमें ब्रह्मज्ञान की चर्चा मिल रही है, तो तुम उसमें शत्रु की तरह बाधक क्यों बन रहे हो? तुम केवल हमारे शरीर के पति हो, आत्मा के नहीं। यदि हमें वहाँ पर जाने से रोका जायेगा, तो हम इस शरीर को बिना देर किए छोड़ देंगी।"

फिर वे सभी व्यापारी मिलकर तेजबाई नामक बुढ़िया से लड़ने के लिये गये और बोले कि तुम भैरव सेठ के यहाँ चर्चा सुनने मत जाया करो।

यह सुनकर तेजबाई बोली- "मुझे वहाँ जाने से तुम लोग क्यों मना कर रहे हो? क्या तुम्हें मेरी बुढ़ापे की अवस्था दिखाई नहीं दे रही है, जो इस प्रकार का आरोप

लगा रहे हो?"

इस बात पर सभी लोग मिलकर बोले- "माते! तुमको जाने में हम दोष नहीं मानते , लेकिन हमारी पत्नियाँ तो तुम्हारे ही पीछे लगी हैं। यदि तुम नहीं जाओगी, तो उनका भी जाना बन्द हो जायेगा। इसलिये हमारी खुशी के लिये तुम वहाँ न जाओ।"

तेजबाई ने कहा- "इस बुढ़ापे की उम्र में भी यदि मैं अपनी अखण्ड मुक्ति के लिये प्रयास न करूँ, तो कब करूँगी? तुम लोग अपने सांसारिक स्वार्थ के लिये मेरे आत्मिक आनन्द में बाधा बनना चाहते हो। मैं तो वहाँ अवश्य जाऊँगी। तुम केवल अपने घर की पत्नियों को ही मना कर सकते हो, मुझे नहीं। शेष तुम्हारी जैसी इच्छा।"

अब्बासी बन्दर में चर्चा के साथ -साथ चितवनि

(ध्यान) का भी कार्यक्रम चलता था। इस प्रकार वहाँ बहुत से सुन्दरसाथ की जाग्रति हुई।

इस प्रकार जब दो-तीन माह बीत गये, तब श्री जी ने सुन्दरसाथ से जाने की इच्छा प्रकट की। यह बात वज्रपात की तरह कष्टकारी लगी। सब सुन्दरसाथ सहित भैरव सेठ कहने लगे—

"आप हमें यहाँ छोड़कर क्यों जाना चाहते हैं? हमारा सारा ध्यान तो आपके ही चरणों में लगा रहता है। इसके सिवाय अब हमारा अन्य कोई भी काम नहीं है।"

श्री प्राणनाथ जी ने अपने मन में विचारा कि यदि मैं एक वर्ष यहाँ रह जाऊँ तो बहुत से सुन्दरसाथ की आत्मा जाग्रत हो जाएगी, लेकिन जो ब्रह्मसृष्टि सारे संसार भर में फैली हुई हैं, उनकी जागनी कैसे होगी?

इस तरह तो शाकुण्डल तथा शाकुमार की जागनी कठिन हो जायेगी।

अक्षरातीत श्री राज जी की प्रेरणा से अब्बासी बन्दर में नये अधिकारी का आगमन हुआ, जो गैर-मुस्लिमों के लिये बहुत ही क्रूर हृदय वाला था। भैरव ठक्कर ने चारों तरफ दौड़-धूप भी की, ताकि इस नगर में वह न आ सके, लेकिन सफल न हो सके। तब सभी को विवश होकर स्वयं श्री जी से यह कहना पड़ा कि हे धाम धनी! नगर में अब जो अधिकारी आ रहा है, वह हिन्दुओं के प्रति निर्दयी है। हमारे जीवित रहते यदि उसने आपका थोड़ा भी बुरा कर दिया तो हमें धिक्कार है। इस दृष्टि से अब आपका यहाँ से चले जाना ही अच्छा है।

निदान, सब सुन्दरसाथ ने श्री जी को अपने सामर्थ्य अनुसार वस्त्र, आभूषण, तथा धन आदि भेंट किया।

तत्पश्चात् सबने बसरा जाने वाली नाव में श्री प्राणनाथ जी को बाई जी सहित बैठाकर विदा किया।

(१८)

श्री जी अब्बासी बन्दर से कोगबन्दर आये। वहाँ से नाव पर चढ़कर लाठीबन्दर पहुँचे। वहाँ पर ३-४ दिन रहने के बाद ठठानगर आ गये।

सब सुन्दरसाथ श्री जी का आगमन सुनकर आह्लादित हो उठा। सबने अपने विरह की पीड़ा शान्त की। श्री जी का दीदार करके सबके नेत्र तृप्त हो गये। नाथा जोशी के साथ अनेक सुन्दरसाथ श्री जी की अगवानी करने आये और प्रेमपूर्वक ले गये।

जिन्दादास ठाकुरी बाई के घर पर श्री जी ठहरे। ठाकुरीबाई ने बहुत प्रेमपूर्वक भोजन बनाया। सब सुन्दरसाथ भी अपने अपने घरों से प्रेमपूर्वक भोजन का सामान लेकर आते थे। श्री प्राणनाथ जी सबकी श्रद्धा



रखने के लिये अवश्य ही थोड़ा सा खा लेते थे। धीरे-धीरे ठठानगर के बहुत से लोग दर्शन के लिये आने लगे। पास के मटहरी से भी काफी सुन्दरसाथ आने लगे और उनकी आत्मा जाग्रत हुई।

यहाँ पर श्री जी ने श्री बिहारी जी को पत्र लिखा। पत्र में मस्कत, अब्बासी, ठठानगर आदि सब जगह के घटनाक्रमों का विवरण था। पत्र में यह भी लिखा कि मैं कच्छ में आ रहा हूँ। मेरा निवेदन है कि आप वहाँ आइये, ताकि मैं आपसे मिल सकूँ।

जब श्री जी ने जाने की बात की, तो सुन्दरसाथ बहुत दुःखी होकर जाने की स्वीकृति ही नहीं देता था। इस विषय पर कई दिन तक वार्ता चलती रही। अन्त में एक माह के पश्चात् सब सुन्दरसाथ ने श्री जी को जाने की स्वीकृति दे दी।

श्री प्राणनाथ जी ठठानगर से चलकर नलिया पहुँचे। श्री जी के आगमन की सूचना पाकर धारा भाई नलिया पहुँच गये। धारा भाई ने श्री जी के चरणों में प्रणाम किया और अपने मन की व्यथा कहना प्रारम्भ कर दिया—

"मैं खम्भालिया में रहता था। जब सूरजी भाई मस्कत से खम्भालिया आये, तो धर्म चर्चा का कार्य तेजी से प्रारम्भ हुआ। मुझे श्री राज जी का आवेश आने लगा और सुन्दरसाथ को श्री राज जी का दर्शन भी होने लगा। मैं परमधाम की लीला का भी वर्णन करने लगा। सब सुन्दरसाथ मुझे उच्च आसन पर बिठाकर मेरा सम्मान करने लगे।

"यह बात बिहारी जी को बहुत बुरी लगी। उन्होंने सोचा कि इस तरह से तो छूट मिलने पर शूद्र लोग गादी पर बैठकर अपनी पूजा कराने लगे, जिसका दुष्परिणाम

यह होगा कि बड़े-बड़े लोग इस पन्थ में शामिल ही नहीं होंगे। तब उन्होंने पत्र लिखकर सूरजी भाई को खम्भालिया से बुलवाया। सूरजी भाई से सारा समाचार लेने के बाद उन्होंने कठोर शब्दों में अपना स्पष्ट निर्णय दे दिया।

"तुम धारा भाई को परिवार सहित सुन्दरसाथ से बाहर निकाल दो। यदि तुम ऐसा नहीं करते हो, तो हम तुम्हें ही सुन्दरसाथ से निकाल देंगे।

"बिहारी जी की यह बात सुनकर सूरजी भाई सहम गये और बोले- 'हे धाम धनी! आपका आदेश सिर-माथे पर। भला मैं धारा भाई को क्यों सुन्दरसाथ में रखूँगा? मैं तो यही चाहता हूँ कि आप मुझे परमधाम से न निकालें। मेरी भी गिनती बारह हजार सुन्दरसाथ में होती रहे। आप मुझे अपने चरणों से अलग न करें।'

"बिहारी जी से मिलकर सूरजी भाई खम्भालिया आये और मुझे परिवार समेत सुन्दरसाथ और गाँव से भी निकाल देने का तुगलकी आदेश जारी कर दिया।

"मेरी पत्नी ने रो-रोकर सब सुन्दरसाथ के सामने प्रार्थना की कि हमें परिवार समेत गाँव और सुन्दरसाथ से क्यों निकाला जा रहा है? हमने कौन सा अपराध किया है, जो इतनी कठोर सजा दी जा रही है? चर्चा तो हमने नहीं सुनाई है, फिर हमें क्यों निकाला जा रहा है? सूरजी भाई ने कहा— 'इस सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। हमें ऐसा करने के लिये बिहारी जी महाराज ने आदेश दिया है। यदि तुम सुन्दरसाथ के बीच में रहना चाहते हो, तो बिहारी जी महाराज के चरणों में जाकर प्रार्थना करो।'"

**धन, पद, और सत्ता पाने के बाद कभी भी किसी**

निरपराध प्राणी को सताना नहीं चाहिए, अन्यथा उस पाप की कालिमा युगों-युगों तक अपराधी का पीछा करती रहती है। इतिहास ऐसे अपराधी को कभी भी क्षमा नहीं करता।

धारा भाई कहते गये— "तब मैं सपरिवार नवतनपुरी गया और बिहारी जी महाराज के चरणों में रो-रोकर मैंने बहुत प्रार्थना की कि मुझे आप अपने चरणों में रखिए तथा सुन्दरसाथ से अलग न करिए। शायद, नियति को यही मन्जूर था कि मेरे आँसू गादीपति महाराज को थोड़ा भी पिघला नहीं सके। एक वर्ष हो गया, मैं अपने गाँव से निष्कासित होकर जगह-जगह भटक रहा हूँ। आपका आना सुनकर मेरे मन में बहुत ही आनन्द हुआ है। हे मेरे प्राणनाथ! आप मेरे सर्वस्व हैं! मैं आपके चरणों को छोड़कर अन्य कहीं भी नहीं जाऊँगा। अब आपकी जो

इच्छा हो, वह कीजिए।"

सूर्य के प्रकाश में सूर्यकान्त मणि पिघल जाती है ,  
तथा चन्द्रमा की चाँदनी में चन्द्रकान्त मणि भी पिघल  
जाती है, किन्तु ज्ञान की दृष्टि से निरक्षर भट्टाचार्य,  
विवेक और वैराग्य से रहित, तथा पद एवं सम्मान के  
प्यासे लोगों को किसी के भी आँसू नहीं पिघला सकते।

श्री जी ने प्यार से सान्त्वना देते हुए कहा— "धारा  
भाई! अब तुम किसी भी बात की चिन्ता न करो। बिहारी  
जी महाराज यहाँ पर आने वाले हैं। मेरे आग्रह पर वे तुम्हें  
अवश्य ही सुन्दरसाथ में शामिल कर लेंगे।"

बिहारी जी को जो पत्र भेजा गया था, उसका उत्तर  
यही आया कि मैं नलिया आने में असमर्थ हूँ।

अब श्री जी ने विश्वनाथ जी को नवतनपुरी यह

सन्देश देकर भिजवाया कि सुन्दरसाथ ने मुझे जो कुछ भी धन, वस्त्र, व आभूषण भेंट में दिया है, वह सब मैं आपके चरणों में समर्पित करना चाहता हूँ।

इस बार बिहारी जी महाराज का यह उत्तर आया कि मिहिरराज! मैं यह जानता हूँ कि तुम मेरे बिना नहीं रह सकते, इसलिये मैं शीघ्र ही तुमसे मिलने के लिये नलिये में आ रहा हूँ।

बिहारी जी नाव में बैठकर मण्डई पहुँचे। उनके आगमन की सूचना धारा भाई ने श्री जी को दी। श्री जी ने प्रसन्न होकर धारा भाई को आशीर्वाद दिया। धारा भाई ने केवल यही कामना की कि बिहारी जी महाराज के चरणों में प्रणाम कर सकूँ और मुझे सपरिवार सुन्दरसाथ में शामिल किया जाये।

इस समय सूरत से आठ सुन्दरसाथ अपने परिवार सहित नलिया आए हुए थे। श्री प्राणनाथ जी के दर्शन की उनमें तीव्र लालसा थी।

नलिया नगर में सभी का मिलन हुआ। सभी सुन्दरसाथ बिहारी जी का दर्शन करने हेतु तेज कदमों से चलते हुए आगे आए। सबने धूम-धाम से उनकी अगवानी की।

नलिये का कामदार अपना परिचित था। उनसे पास की हवेली बिहारी जी को ठहराने के लिये माँग ली गयी। सभी लोग श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करने लगे।

अपने निष्कपट और निश्छल स्वभाव के अनुसार श्री जी ने मस्कत, अब्बासी, तथा ठडानगर का सारा प्रसंग सुनाया। उसे सुनकर बिहारी जी आन्तरिक रूप से तो



ईर्ष्या की अग्नि में जलकर कुढ़ गये, लेकिन ऊपर से हँसी का दिखावा करने लगे।

सभी सुन्दरसाथ जब कहीं एकत्रित हों, तो उसका आनन्द ही कुछ और होता है। ऐसे में जब वाणी चर्चा का भी रस मिले, तो सोने में सुगन्धि वाली स्थिति बन जाती है। श्री जी के मुखारविन्द से चर्चा का रस पाकर सुन्दरसाथ माया के दुःखों को भूल गया।

श्री प्राणनाथ जी ने रूपा और राधा को एकान्त में बुलाकर समझाया— "तुम बिहारी जी महाराज को साक्षात् पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत का स्वरूप मानकर सेवा करो। यदि तुम मेरे इस आदेश को नहीं मानोगी, तो यह समझ लेना कि मेरा तुमसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है।"

श्री प्राणनाथ जी ने एकान्त में बिहारी जी से जागनी

के सम्बन्ध में भावी योजना के बारे में बातचीत की तथा उनके साथ आये हुए सुन्दरसाथ को वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित किया। श्री जी ने बिहारी जी के समक्ष सभी वस्त्र-आभूषण और धन भी समर्पित कर दिया। यहाँ तक कि तेज कुँवरि जी के वस्त्रों और आभूषणों को भी सेवा में भेंट कर दिया। अपने पास पहनने के मात्र दो जोड़े कपड़े ही रखे।

तत्पश्चात् श्री जी ने अति विनम्र भाव से प्रार्थना की—  
 "हे महाराज! धारा भाई ने आपके आने की शुभ सूचना जब दी थी, मैंने तभी वचन दे दिया था कि तुम्हें सुन्दरसाथ में शामिल करने के लिये मैं सिफारिश करूँगा। इसलिए आपसे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि धारा भाई को सुन्दरसाथ की जमात में शामिल कर लीजिए।"

यह बात सुनते ही बिहारी जी क्रोध से आग-बबूला

हो गये। वे बोले- "मैं तुम्हारी यह प्रार्थना कभी भी स्वीकार नहीं करूँगा। धारा भाई को व्यक्तिगत रूप से या सपरिवार, न तो सुन्दरसाथ में ही शामिल किया जायेगा और न ही उसको मैं परमधाम ले जाऊँगा। शूद्र जाति का होते हुए भी धारा भाई ने जिस प्रकार अपने तन से आवेश लीला की बात चलाई है, मुझे उसका बहुत ही दुःख है।"

दो चार दिन बीतने पर फिर श्री जी ने बिहारी जी से प्रार्थना की- "आप धारा भाई के निर्णय पर पुनर्विचार करें। आखिरकार, धाराभाई ने चर्चा सुनाकर कौन सा अपराध किया है। यदि यह भी मान लिया जाये कि धारा भाई ने चर्चा सुनाकर अपराध किया है, तो उनकी पत्नी और बहन ने कौन सा पाप किया है जिसके कारण उन्हें भी घर-गाँव से बाहर निकाला गया है?"

बिहारी जी तमक कर बोले— "मिहिरराज! जब मैंने तुम्हें मना किया है कि धारा भाई का कभी भी जिक्र नहीं करना, तो तुम बार-बार उसी की चर्चा क्यों करते हो? यदि तुम लाख बार भी धारा भाई को रखने के लिये कहोगे, तो मेरा एक ही उत्तर होगा—'नहीं'।"

यह बात सुनकर सुन्दरसाथ एकान्त में श्री जी से कहने लगे— "आप उनका स्वभाव तो अच्छी तरह से जानते हैं। कहीं ऐसा न हो कि आपको भी धारा भाई की तरह सुन्दरसाथ और परमधाम से निकाल दिया जाये।"

वृक्ष की डाल को तोड़ना सरल है, जोड़ना कठिन। संकुचित हृदय वाले लोग केवल निकालने की ही मानसिकता पाले रहते हैं। उनके रूखे और कठोर हृदय में जोड़ने की प्रवृत्ति होती ही नहीं।

श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से होने वाली चर्चा को देखकर बिहारी जी के मन में यह डर बैठ गया कि मेरी गद्दी का अस्तित्व खतरे में है। अपनी गद्दी को सुरक्षित करने के उद्देश्य से उन्होंने श्री जी से वार्ता करना उचित समझा।

पुनः एकान्त में दोनों में इस विषय पर वार्ता हुई कि अब हमें क्या करना चाहिए? श्री जी ने बिहारी जी से कहा— "आप मेरे साथ जागनी कार्य में हाथ बटाइए।"

आरामतलब जीवन के अभ्यस्त हो चुके बिहारी जी ने कहा— "यह हमारे धर्म की राह नहीं है कि घर—द्वार छोड़कर विरक्त के भेष में जगह—जगह धक्के खाएँ। जब श्री निजानन्द स्वामी नवतनपुरी छोड़कर कहीं बाहर नहीं गए, तो मैं क्यों जाऊँ? तुम मेरी बात मानकर कच्छ देश में जाकर नौकरी करो और सुखी जीवन व्यतीत करो।"

तुम्हारी इस हालत से तो बेचारी तेज कुँवरि का भी जीवन सन्यासिनियों की तरह हो गया है। जगह-जगह घूमने की जो तुम्हारी आदत बन चुकी है, उसे दूसरों पर क्यों थोपते हो?"

श्री प्राणनाथ जी ने कहा— "अक्षरातीत श्री राज जी का दिया हुआ जाग्रत बुद्धि का ज्ञान मेरे पास है। जब उससे मैं राजाओं को जाग्रत करूँगा, तो वे आपकी सेवा करेंगे। मेरे लिये चौदह लोक के सुख का भी कोई महत्व नहीं है। शाकुण्डल तथा शाकुमार की जागनी मेरी पहली प्राथमिकता है। जब इस संसार में झूठे मत-पन्थ फैल रहे हैं, तो हम परमधाम के इस अलौकिक ज्ञान को क्यों न फैलाएँ?"

"मुझे अच्छी तरह से मालूम है कि आपके पास कुछ भी धार्मिक ज्ञान नहीं है। इसके लिये आपको चिन्तित

होने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। आपको पूज्य बनाकर मैं ऊँचे आसन पर बैठाऊँगा तथा सबसे चर्चा करके तारतम्य ज्ञान लेने आपके पास भेजूँगा। सभी लोग आपको धाम का धनी मानकर सम्मान देंगे।"

बिहारी जी बोले— "मिहिरराज! बात तो तुम्हारी ठीक है, लेकिन मेरे साथ इतना बड़ा परिवार है। इनको छोड़कर भला मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकता हूँ। धाम धनी जिसे जाग्रत करना चाहेंगे, वह नवतनपुरी आकर जाग्रत हो जायेगा।"

इस प्रकार लगभग डेढ़ माह तक नलिया में बातचीत का दौर चलता रहा। रूपा और राधा सहित अन्य जिस-जिस को बिहारी जी ने निकाला था, उन्हें सुन्दरसाथ में लेने के लिये सिफारिश होती रही, लेकिन बिहारी जी जरा भी नहीं पिघले। उन्होंने निष्ठुरतापूर्वक सबकी

प्रार्थना को ठुकरा दिया।

सूर्य का प्रकाश पत्थर को भले ही न पिघला सके किन्तु गर्म तो कर ही देता है, किन्तु बिहारी जी की मानसिकता वाले लोगों का मन इतना कठोर होता है कि दूसरों के दुःख भरे आँसू उनके हृदय को थोड़ा भी परिवर्तित नहीं कर पाते।

श्री जी के मन में बिहारी जी के दुर्व्यवहार से जो खटास पैदा हुई थी, उसे गुरुपुत्र होने के भाव से उन्होंने भुला दिया, किन्तु बिहारी जी अपनी ईर्ष्या की ज्वाला नहीं बुझा सके।

बिहारी जी ने नलिया से प्रस्थान करने के बाद खम्भालिया के राजा को यह बता दिया कि मिहिरराज नलिया आये हुए हैं तथा वे खम्भालिया भी नाव से



आयेंगे। खम्भालिये का राजा श्री जी से शत्रुभाव रखता था। उसे अपने मन की कटुता निकालने का अच्छा अवसर मिला।

निन्दा और ईर्ष्या सगी बहनें हैं। इनके पाश में बँधा हुआ व्यक्ति कभी भी शान्ति नहीं पा सकता है। वह दूसरों को दुःखी तो करता ही है, स्वयं भी दुःख की ज्वाला से जलता रहता है।

सभी सुन्दरसाथ नलिया से खम्भालिया जाने वाली नाव में बैठ गये। श्री जी अभी नाव पर पैर रखने ही वाले थे कि उन्हें छींक आ गई, जिससे वे असावधान हो गये और नाव पर नहीं चढ़ पाए। इसी बीच हवा का तेज झोंका आया, जिससे नाव समुद्र में अन्दर चली गयी। नाव पर पाल बन्धी थी, जिसके कारण वह वापस न आ सकी और अन्दर ही चलती गयी।

यात्रा पूरी करने के पश्चात् नाव जैसे ही खम्भालिया पहुँची, राजा के सैनिकों ने सभी सुन्दरसाथ को गिरतार कर लिया और राजा ने पूछताछ शुरू कर दी—

"आप लोग कौन हैं?"

"हम लोग सूरत से आए हैं।"

"आपमें मिहिरराज कौन हैं?"

"हम किसी भी मिहिरराज को न तो जानते हैं और न वे हमारे बीच में हैं।"

"यह जो महिला दिखायी पड़ रही हैं, यह कौन हैं? क्या यह मिहिरराज की पत्नी तेज कुँवरि नहीं हैं?"

"नहीं! यह हमारी बहन है।"

"आपकी बातें सन्देह पैदा कर रही हैं। यदि आप सभी लोग अपनी तथाकथित बहन के हाथ का बनाया

हुआ जल में पकाया हुआ भात खा लेंगे, तो मैं यह मान लूँगा कि आप सभी भाई-बहन हैं और यह महिला तेज कुँवरि नहीं हैं।"

"यह कौन सी बड़ी बात है। ऐसा करते-करते तो इतनी उम्र बीत गयी। अभी हम आपके सामने कर दिखाते हैं।"

कुछ समय बाद तेज कुँवरि जी के बनाये हुए भोजन को सभी सुन्दरसाथ प्रेम से खाते हैं, जिसे देखकर राजा दंग रह जाता है। उसके मन का सारा भ्रम दूर हो जाता है और वह सब सुन्दरसाथ को दूसरे दिन बन्धन-मुक्त कर देता है। इस प्रकार बिहारी जी की कृपा से आयी हुई घोर विपत्ति टल जाती है।

## (१९)

श्री प्राणनाथ जी स्थल मार्ग से होते हुए कच्छ की रण में आए। वहाँ से विरक्त भेष में धोराजी पहुँचे। उधर, खम्भालिये से चलने वाले सुन्दरसाथ भी धोराजी में आ गये। श्री जी से भेंट करके सबने अपार आनन्द का अनुभव किया। जब खम्भालिये की घटना का सुन्दरसाथ ने जिक्र किया, तो बिहारी जी की कटुता से श्री जी को बहुत मानसिक वेदना हुई। वे समझ गये कि बिहारी जी के ऊपर किसी भी प्रकार की श्री राज जी की मेहर नहीं है, अन्यथा वे सुन्दरसाथ के लिये इतना घातक काम नहीं करते।

प्रेमजी और थावर भाई अपनी गाड़ी पर सब सुन्दरसाथ सहित श्री प्राणनाथ जी को बिठाकर ले चले। मार्ग रेतीला था। गाड़ी का पहिया रेत में धँस जाता था,

फिर गाड़ीवान बैलों को मार लगाता था। ऐसी स्थिति में एक कीर्तन उतरा, जिसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है—

"हे बैल! तुम अपने जुए को मत छोड़ना। इतने भारी बोझ को ढोने पर भी तुम्हें मार खानी पड़ रही है। तुम्हारे कन्धे में सूजन है, फिर भी जब तक तुम्हारी मन्जिल न आ जाए, बोझ ढोते रहना, अर्थात् हे मेरे जीव! बिहारी जी तुम्हें कितना भी कष्ट क्यों न दें, धाम धनी ने जो सेवा तुम्हें सौंपी है, उससे कभी भी पीछे न हटना।"

सहनशीलता सबसे बड़ा अस्त्र है। महापुरुषों के पास विनम्रता की ढाल और सहनशीलता का अमोघ अस्त्र होता है, जिसके द्वारा वे संसार को जीत लेते हैं।

वहाँ से सुन्दरसाथ सहित श्री जी घोघा आये। वहाँ तीन दिन रुककर सुहाली होते हुए सूरत आए। सूरत में

१८ माह की चर्चा के फलस्वरूप ५०० सुन्दरसाथ का एक बहुत बड़ा समूह तैयार हो गया, जो हमेशा-हमेशा के लिये घर-द्वार छोड़कर श्री जी के चरणों में समर्पित हो गया।

श्री जी सूरत के सैयदपुरा मुहल्ले में शिवजी भाई के घर पर ठहरे। शिवजी ने बहुत प्रेमपूर्वक सेवा की। शिवजी तथा रामजी दोनों भाई थे, किन्तु उनमें यही अन्तर था कि शिवजी भाई जहाँ धनवान थे, वहीं रामजी भाई बहुत गरीब थे। श्री प्राणनाथ जी ने दोनों को ज्ञान से जाग्रत किया और आदेश दिया – "तुम दोनों नवतनपुरी में गादी पर विराजमान बिहारी जी का दर्शन करो, तभी तुम्हारी आत्मा जाग्रत होगी।"

श्री जी ने दोनों को अपनी ओर से पत्र भी लिखकर दे दिया। सबसे पहले शिवजी भाई बिहारी जी के पास

पहुँचे। सेवक ने सूचना दी- "महाराज! सूरत से कोई सुन्दरसाथ आपके दर्शन हेतु आया है।"

"उसका हुलिया कैसा है?"

"वह काफी धनवान प्रतीत होता है। वह अपने वाहन से यहाँ आया है तथा कीमती कपड़े पहने हुए हैं।"

"उसे शीघ्र अन्दर लाओ।"

शिवजी भाई ने गादीपति बिहारी जी महाराज के चरणों में प्रणाम करके सोने की पाँच मोहरें भेंट की। बिहारी जी महाराज गदगद हो उठे। उन्होंने आशीर्वाद दिया- "निश्चित ही तुम परमधाम की निर्मल आत्मा हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी आत्मा जाग्रत हो और तुम परमधाम के आनन्द को प्राप्त करो।"

इसके साथ ही उन्होंने अपने सेवक को भी आदेश दे

दिया कि शिवजी भाई को अच्छी जगह ठहराया जाये तथा इनकी सुख-सुविधाओं का भरपूर ध्यान रखा जाये।

शिवजी भाई के लौट आने के पश्चात् पैदल चलते हुए रामजी भाई नवतनपुरी पहुँचे। सेवक ने बिहारी जी को सूचना दी। महाराज श्री ने पूछा— "वह कैसा है और कहाँ से आया है?"

"महाराज! आया तो वह सूरत से ही है, किन्तु बहुत गरीब है। पैदल चलकर कई दिनों में यहाँ पहुँचा है। दुबला-पतला सा आदमी है। कह रहा है कि महाराजश्री दर्शन दे दें, तो मैं धन्य-धन्य हो जाऊँगा।"

"धाम धनी का दरबार भूखे-नंगे भिखमंगों के लिये नहीं है। उसे किसी भी कीमत पर यहाँ अन्दर नहीं घुसने



देना।"

"उसने यह पत्र भी भिजवाया है, जो श्री मिहिरराज जी का लिखा हुआ है।"

"मुझे यह पत्र नहीं पढ़ना है। तुम उसका पत्र वापस लौटा दो, भले ही उसे किसी ने भी क्यों न लिखा हो।"

रामजी भाई तीन दिन तक दरवाजे पर बैठे रहे। रो-रोकर प्रार्थना करते रहे। तीन-दिन तक अन्न का एक दाना भी ग्रहण नहीं किया, लेकिन उनकी हालत पर किसी को भी तरस नहीं आया। आखिरकार, सेवक ने सूचना दी- "महाराज! तीन दिन से उसने कुछ भी खाया-पीया नहीं है। वह रो रहा है। कह रहा है कि जब तक धाम धनी महाराज दर्शन नहीं देंगे, मैं भोजन नहीं करूँगा।"

"मैं इतना सस्ता धाम धनी नहीं हूँ कि हर कोई मेरा दर्शन करता फिरे। उसे कह दो, वह यहाँ से तुरन्त चला जाये। मैं ऐसे भिखमंगों को दर्शन नहीं दूँगा।"

सेवक ने सारी बात रामजी भाई को बता दी। सुनकर रामजी भाई, पहले तो फफक कर रो पड़े, लेकिन अन्दर विद्रोह की अग्नि भी सुलगने लगी। वहाँ से उन्होंने चुपचाप वापस लौट जाना ही उचित समझा।

मार्ग में क्रान्तिवादी विचारों का तूफान उनके मन में उमड़ रहा था— "क्या इसी को धर्म और अध्यात्म कहते हैं? मुझे दर्शन इसलिये नहीं मिल सका कि मैं गरीब हूँ। क्या गरीब होना ही इतना बड़ा अभिशाप है कि मेरे तीन दिन भूखा रहने पर भी महाराजश्री नहीं पिघले और मुझे अन्दर भी नहीं जाने दिया गया। जिनका हृदय इतना क्रूर और निर्दयी है, मैं नहीं मानता कि उस दिल में धाम धनी

विराजे हैं। मैं सैकड़ों कोस पैदल चलकर यहाँ आया था, लेकिन अब मुझे ऐसे महाराज के दर्शन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।"

नौतनपुरी से वापस लौटकर रामजी भाई ने श्री जी से अपनी सारी आपबीती व्यथा कह डाली। उन्होंने स्पष्ट कह दिया— "हमारे लिए आप ही धाम धनी हैं। बिहारी जी तो केवल रुई की गद्दी के स्वामी हैं। अब मैं कभी भी उनके दर्शन करने नहीं जाऊँगा।"

यह सब सुनकर श्री जी को बहुत हार्दिक पीड़ा हुई। उन्होंने मन ही मन सोचा कि यदि बिहारी जी पर अक्षरातीत धाम धनी की थोड़ी भी कृपा होती, तो वे इतनी कठोरता का व्यवहार नहीं करते। उनके इन कारनामों से तो मानवता खून के आँसू बहाने को मजबूर हो रही है।

उधर, बिहारी जी को जब इस बात का पता चला कि धारा भाई तथा रामजी भाई एवं रूपा-राधा को मिहिरराज ने शरण दे रखी है, तो उन्होंने सोचा कि मिहिरराज ने सद्गुरु महाराज की गादी से प्रतिद्वन्द्विता ले रखी है तभी वे मेरा आदेश नहीं मानते हैं, तथा जिसको मैं निकालता हूँ उसको रख लेते हैं। उनके मन में स्वयं को बड़ा बनाने की भूख है।

जब बिहारी जी के मन की यह बात श्री जी तक पहुँची तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया – "जो कोई भी निष्कासित, तिरस्कृत, एवं निर्बल सुन्दरसाथ होगा, उसको मैं अवश्य गले लगाकर अपने प्रेम की छाँव तले रखूँगा और किसी भी स्थिति में उसका परित्याग नहीं करूँगा।"

**गन्दे नाले का जल गंगा में मिलकर गंगाजल और**

सागर में मिलकर सागर का जल कहलाता है, जबकि उससे घृणा करने वाले तालाबों का जल गर्मी में सूख जाया करता है। हमारा हृदय उस सागर की तरह होना चाहिए, जो सबको अपने में समा लेवे।

इसी समय अब्बासी बन्दर से गोवर्धन भाई आये और उन्होंने सभी सुन्दरसाथ के खर्च की सेवा अपने सिर पर ले ली। इसी सेवा में ही तो जीवन की सार्थकता छिपी है।

श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से होने वाली चर्चा का शोर सारे सूरत में फैल गया। लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। चर्चा का रस लेने के लिये बड़े-बड़े विद्वान भी आने लगे, जिनमें वेदान्त के विद्वान भीम भाई तथा श्याम भाई प्रमुख थे।

श्याम भाई श्री जी की चर्चा से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने भीम भाई से कहा – "श्री प्राणनाथ जी वेदान्त के उन गुह्यतम रहस्यों को व्यक्त कर रहे हैं, जिनका आज तक स्पष्टीकरण नहीं हो पाया था। इनके वेदान्त के ज्ञान के आगे तो हम कहीं भी नहीं ठहरते हैं।"

इस कथन को सुनकर भीम भाई भी विचार करने लगे कि हम लोगों ने तो अब तक अक्षर ब्रह्म के मन के स्वप्न स्वरूप आदिनारायण को ही सब कुछ समझ रखा था, किन्तु ये तो अक्षर ब्रह्म से भी परे अक्षरातीत की लीला का वर्णन कर रहे हैं। निश्चय ही श्री जी का कथन वेद-वेदान्त के पूर्णतया अनुकूल है, जिसे हम लोग अभी तक समझ नहीं पाये थे।

श्री जी की कृपा से भीम भाई की आत्मिक दृष्टि परमधाम का अनुभव करने लगी। फिर क्या था? प्यासे

को गङ्गोत्री की स्वच्छ जलधारा ही पीने को मिल गयी। भीम भाई ने सपरिवार श्री जी के चरणों में आकर तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। तत्पश्चात् श्याम भाई ने भी उस ज्ञान धारा का रसपान किया। दोनों ने अपने पूर्व गुरु सन्यासी शम्भूनाथ से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया और अलौकिक ज्ञान के सागर में डुबकी लगाने लगे।

वल्लभाचार्य मत में गोविन्दजी व्यास नामक एक विद्वान थे। उन्हें श्रीमद्भागवत् में वर्णित ४० प्रश्नों का उत्तर नहीं आता था। वल्लभ भाई दलाल ने उन ४० प्रश्नों को उतारकर श्री जी के सामने रख दिया।

श्री प्राणनाथ जी ने उन ४० प्रश्नों को गोविन्द जी व्यास के हाथों में पकड़ा दिया और एक-एक प्रश्न पढ़ने को कहा। व्यास जी क्रमशः प्रश्न पढ़ते गये और श्री जी उनका उत्तर देते गये। थोड़ी ही देर में सभी प्रश्नों का

समाधान हो गया। गोविन्द जी व्यास अवाक् रह गये।  
उनकी अन्तरात्मा पुकार उठी—

"व्यास! इन प्रश्नों का उत्तर देने वाला कोई मानव नहीं है, अपितु स्वयं परब्रह्म ही इस तन से लीला कर रहे हैं। तुम इनके चरणों में स्वयं को समर्पित कर दो।"

फिर क्या था? प्रसन्नता के आवेग में गोविन्दजी व्यास श्री प्राणनाथ जी के चरणों में नतमस्तक हो गये।

भीम भाई, श्याम भाई, तथा गोविन्दजी व्यास जैसी विभूतियों के तारतम्य ज्ञान ग्रहण करने से चारों ओर शोर मच गया। झुण्ड के झुण्ड लोग श्री जी के दर्शन हेतु आने लगे। कोई निन्दा करता, तो कोई उनके दर्शन मात्र से ही अपने को धन्य-धन्य समझता।

सूरत की जागनी की गूँज बिहारी जी के कानों तक



जा पहुँची। उन्होंने यह जान लिया कि यदि इसी तरह मिहिरराज के अनुयायियों की संख्या बढ़ती रही, तो मेरी गद्दी का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। इसलिए उन्होंने समझौते की नीति अपनाते हुए श्री जी को पत्र लिखा—

"प्रिय मिहिरराज! श्री निजानन्द स्वामी के चलाये हुए पन्थ को उज्ज्वल रखने के लिये मैं तीन नियम बना रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आप भी इनका पालन करेंगे—

१. नीची जाति के लोगों को तारतम्य ज्ञान नहीं देना है।
२. विधवा स्त्री भी इस अलौकिक ज्ञान की अधिकारिणी नहीं हो सकती।
३. मेरे और तुम्हारे सिवाय अन्य कोई भी तीसरा

दीक्षा देने का अधिकार नहीं रख सकता।"

बिहारी जी के पत्र का उत्तर श्री प्राणनाथ जी ने इस प्रकार दिया—

"परम् आदरणीय महाराज श्री!

आपके बनाये हुए नियमों में पहला नियम यह है कि नीची जाति के लोगों को तारतम्य ज्ञान नहीं देना है। मैं आपको यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने जाति के झूठे बन्धनों को कभी भी नहीं माना। परमधाम की आत्मायें चारों वर्णों में उतरी हैं , इसलिये सभी वर्णों को तारतम्य ज्ञान पाने का अधिकार है। वैकुण्ठ की राह अपनाने वाले भी यही मानते हैं कि जिस घर में भक्त प्रकट हो जाता है , उसकी जाति नहीं देखनी चाहिए। मतंग ऋषि चण्डाल थे , जाबालि ऋषि

गड़रिया थे, जानश्रुति ऋषि और रविदास जी शूद्र थे। ये सभी आज भी सबकी दृष्टि में परम् सम्माननीय हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को जाति की दृष्टि से देखना महापाप है।

आपने दूसरे नियम में लिखा है कि विधवाओं को भी तारतम्य ज्ञान नहीं देना। आपका यह नियम भी निराधार है। आपको विदित होगा कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने खोजी बाई नामक विधवा को भी तारतम्य ज्ञान दिया था। वह मुसलमान स्त्री थी, किन्तु श्री निजानन्द स्वामी ने जरा भी भेदभाव नहीं किया।

आपने यह जो लिखा है कि मेरे और तुम्हारे सिवाय अन्य कोई भी तारतम्य ज्ञान नहीं दे सकता, पूर्णतया अनुचित है। इतने बड़े संसार में केवल हम और आप कहाँ तक प्रचार कर सकते हैं? इस तरह से तो यह ज्ञान

बहुत ही सीमित क्षेत्र में रह जायेगा। हमारे तनों की लीला की भी एक सीमा है। जिसके भी पास ज्ञान हो, वह तारतम्य दे सकता है।"

श्री जी ने पत्र के साथ कलश ग्रन्थ भी भेज दिया, जिसे पढ़कर बिहारी जी महाराज बहुत दुःखी हुए। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा – "यह 'कलश' नहीं, 'क्लेश' है। इसमें तो मिहिरराज ने अक्षरातीत की सारी शोभा स्वयं ही ले रखी है। इसको पढ़ने वाला मिहिरराज को ही परब्रह्म मानने लगेगा, फिर मेरे गद्दी पर बैठने का क्या महत्व रह जायेगा?"

बिहारी जी ने अपने मन में सोचा कि मिहिरराज ने तो मेरे बनाये हुए तीन नियमों में से एक को भी नहीं माना। यह तो मेरी महत्ता को सीधे चुनौती देने वाली बात है। कलश ग्रन्थ से उन्होंने यह बात दर्शा भी दी है।

अब अपनी गद्दी की महिमा को सुरक्षित रखने के लिये मिहिरराज को सुन्दरसाथ के समाज से बहिष्कृत करने के सिवाय अन्य कोई भी चारा नहीं है।

निदान, बिहारी जी ने श्री जी के पास पत्र लिखा—

"मिहिरराज! तुम्हारे पास कवितायें बनाने की कला आ गयी है, जिसके द्वारा तुम स्वयं को ही अक्षरातीत मानने लगे हो। मैं जिसको भी निकालता हूँ, उसे तुम अपने में मिला लेते हो। अब मुझसे तुम्हारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारी सद्गुरु महाराज की गादी पर भी आस्था नहीं है। इन कारणों से मैं तुम्हें परमधाम से तथा सुन्दरसाथ से भी बहिष्कृत करता हूँ।"

जब श्री जी ने वह पत्र पढ़ा तो वे कुछ खिन्न से हुए। उन्होंने मन ही मन सोचा कि परमधाम की ब्रह्मसृष्टि के

लिये इस तरह का पत्र लिखना कदापि शोभनीय नहीं है।

सुन्दरसाथ को जब पत्र की वास्तविकता मालूम हुई तो उन्हें बिहारी जी के अत्याचार पर रोष तो आया ही, हँसी भी आयी कि यदि बिहारी जी को थोड़ा भी आध्यात्मिक ज्ञान होता तो इस तरह की बात कभी नहीं लिखते कि "मैंने तुम्हें परमधाम से ही निकाल दिया है।" परमधाम तो पूर्ण और अनन्त है। उसमें किसी भी वस्तु को जोड़ना या घटाना सम्भव ही नहीं है।

सब सुन्दरसाथ ने एकान्त में आपस में विचार किया कि हमें न तो श्री मिहिरराज के तन से मतलब है और न बिहारी जी या उनकी गादी से। हमें तो यह देखना है कि अक्षरातीत परब्रह्म की शक्ति कहाँ लीला कर रही है ? बिहारी जी ने आज तक किसी एक को भी जाग्रत नहीं किया और न उनके पास कोई आध्यात्मिक ज्ञान ही है।

उन्होंने तो सबको निकालने और अत्याचार करने की ही शोभा ले रखी है। इसके विपरीत श्री मिहिरराज जी में अक्षरातीत के आवेश की लीला हो रही है। उनके तन से ब्रह्मवाणी भी प्रकट हो रही है तथा जब वे चर्चा करते हैं, तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि साक्षात् सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ही बोल रहे हैं।

सभी सुन्दरसाथ ने एक स्वर से भीम भाई के नेतृत्व में श्री जी से कहा – "अब हमें बिहारी जी और उनकी गादी से कुछ भी लेना-देना नहीं है। आप ही हमारे प्राणवल्लभ-प्राणप्रियतम् अक्षरातीत हैं। हम सब अपना तन, मन, धन आपके चरणों में समर्पित करते हैं। सभी आत्माओं को जाग्रत करने के लिये आप अपने कदम बढ़ाइये। हमारा सर्वस्व आपके चरणों में है।"

यह कहते हुए सब सुन्दरसाथ ने श्री तेज कुँवरि

सहित श्री जी को सिंहासन पर बैठाकर आरती उतारी और अपनी आत्मा का प्राणनाथ मानकर खुशी के जयकारे लगाये।

अब श्री प्राणनाथ जी ने बिहारी जी को पत्र लिखा—

"आदरणीय महाराज श्री!

सप्रेम प्रणाम!

आपने मुझे परमधाम और सुन्दरसाथ से बाहर निकाला, इसके लिये आपको धन्यवाद! सद्गुरु महाराज ने जो मुझे जागनी का आदेश दिया था, अब मैं उसका उत्तरदायित्व सम्भालने जा रहा हूँ। यदि मैं निःस्वार्थ भाव से इस कार्य को करूँगा, तो मुझे अवश्य सफलता मिलेगी।"

जागनी कार्य में लक्ष्मण दास जी की बहुत सख्त



आवश्यकता थी, किन्तु वे अभी माया में फँसे पड़े थे। धाम धनी की प्रेरणा से ऐसी घटना घटी कि उन्हें सब कुछ छोड़कर श्री जी के चरणों में आना ही पड़ा।

एक दिन सेठ लक्ष्मण दास जी के सभी जहाज समुद्र में डूब गये। अभी वे इस परेशानी से मुक्त भी नहीं हो पाये थे कि गोदाम में आग लग गयी, जिससे सारा माल जलकर राख हो गया।

ऐसी स्थिति में पैसा लेने वालों की भीड़ लग गयी। घर के सम्पूर्ण जेवरात बेचने पर भी लेनदारों को सन्तुष्ट नहीं किया जा सका। अब लक्ष्मण दास जी को संसार में एक ही सहारा दिखायी पड़ा— "श्री जी का सान्निध्य।"

यह तो सच है कि जो हँसते हुए प्रियतम परब्रह्म की सेवा में नहीं आते हैं, अन्ततोगत्वा उन्हें रोकर आना ही

पड़ता है। लक्ष्मण दास जी ने प्रण लिया कि जब तक वे नवतनपुरी जाकर बिहारी जी महाराज का दर्शन नहीं कर लेंगे, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।

लक्ष्मण दास जी जब जामनगर (नवतनपुरी) के लिये चले, तब मगरोल पाटन में लेनदारों के प्रतिनिधि ने रोक दिया। उसने सोचा कि यदि ये नवतनपुरी चले जायेंगे तो विरक्त बन जायेंगे, फिर हमारा धन वापस नहीं कर पायेंगे।

वहाँ से दीपबन्दर होते हुए सूरत आए। सूरत में श्री जी के चरणों में उन्होंने प्रणाम किया। श्री जी ने कहा – "आज से तुम सेठ लक्ष्मण दास नहीं, बल्कि लालदास कहलाओगे। तुम्हारी बहुत आवश्यकता थी, इसलिये तुम्हें माया के बन्धनों से मुक्त किया गया। अब जाकर सब सुन्दरसाथ के साथ भोजन करो।"

लालदास जी बोले- "मैंने यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि जब तक जामनगर जाकर बिहारी जी महाराज को प्रणाम नहीं करूँगा, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूँगा।"

तब श्री प्राणनाथ जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा- "लालदास! अब तुम धाम धनी के चरणों में ही पहुँच गये हो। तुम्हारा प्रण पूरा हो गया है। अब तुम्हें नवतनपुरी जाने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।"

## (२०)

बिहारी जी महाराज केवल गद्दी पर बैठने के कारण ही अपने को धाम धनी माना करते थे। उस गद्दी की महत्ता केवल इसी कारण थी कि उस पर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी बैठा करते थे।

किन्तु, क्या बैठने मात्र से कोई अक्षरातीत हो सकता है? लंका में अपने बड़े भाई कुबेर को सिंहासन से उतारकर रावण ने उस पर अधिकार कर लिया, तो क्या वह देवता बन गया?

राजनीति के क्षेत्र में तो यह मान्यता है कि सिंहासन पर बैठने वाला सम्पूर्ण राज्य का स्वामी माना जाता है। अध्यात्म जगत में गद्दी पर बैठने वाला व्यक्ति उस स्थान विशेष का स्वामी तो हो जाता है, किन्तु आध्यात्मिक

सम्पदा पर तब तक स्वामित्व नहीं हो सकता जब तक उसकी योग्यता न हो जाये।

बिहारी जी केवल रुई की गद्दी पर ही बैठकर अपने को कृत्-कृत् मानने लगे थे, जबकि श्री मिहिरराज ने हब्से में विरह में तड़प-तड़प कर अपने प्राणवल्लभ को दिल में बसा लिया था, फलतः वे सही अर्थों में सबके प्राणनाथ बन गये।

ब्रह्मज्ञान की अलौकिक ज्योति को चारों ओर फैलाने का लक्ष्य लेकर श्री प्राणनाथ जी के साथ ५०० सुन्दरसाथ का एक कारवां चल पड़ा। परिवार के जो लोग उनके साथ नहीं चल सके, उनको उन्होंने अन्तिम प्रणाम कहते हुए विदा ली।

इस कारवां में थीं श्री तेज कुँवरि जी , जिन्हें

श्रद्धापूर्वक सुन्दरसाथ बाई जी राज कहा करता हैं। वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान भीम भाई, जिन्होंने श्री जी के चरणों में सेवा करते-करते अपना तन छोड़ा। लालदास जी अपनी पत्नी लाल बाई तथा बेटी श्याम बाई को लेकर चले। करोड़ों की सम्पत्ति के स्वामी श्री लालदास जी के पास अब एक रुपया भी नहीं बचा था। अब्बासी बन्दर के गोवर्धन दास जी भी थे।

बिहारी जी महाराज जहाँ कदम-कदम पर श्री जी का विरोध करते रहे, वहीं उनकी सगी बहन जमुना बाई ने श्री प्राणनाथ जी के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया। अपने परिवार को छोड़कर अपने एकमात्र पुत्र छबील दास जी को साथ लेकर, वे श्री जी के साथ चल पड़ीं। दोनों ने सेवा करते-करते अपनी आखिरी श्वास भी धनी के चरणों में छोड़ी।

लगभग ५०० की संख्या के साथ श्री जी सूरत से चलकर अमदाबाद पहुँचे। वहाँ चार दिन रहकर सिद्धपुर पहुँचे। सिद्धपुर में रेवादास भगवान दास उपाध्याय नामक पण्डे ने उनकी देखभाल की। श्री जी वहाँ २२ दिन रहकर जब चलने लगे, तो भेंट स्वरूप रेवादास को एक मोहर दी गयी।

अपने स्वभाव के अनुकूल रेवादास बोल पड़ा— "आप लोग तो इतने धनवान हैं। एक और मोहर दे दीजिए। आपको बहुत पुण्य होगा।"

गोवर्धन दास जी ने कहा— "तुम्हें एक की जगह हम कई मोहरें दे सकते हैं, लेकिन वह नश्वर वस्तु है। श्री जी के स्वरूप में साक्षात् परब्रह्म पधारे हैं। तुम इनसे कुछ अखण्ड का धन माँगो।"

यह सुनते ही रेवादास श्री प्राणनाथ जी के चरणों में गिर पड़े और प्रार्थना करने लगे— "आप मेरी आत्मा को जाग्रत कीजिए।"

श्री जी ने कहा— "मैं बाइस दिन तक तुम्हारे पास रहा, किन्तु तुमने ब्रह्मज्ञान की कोई बात ही नहीं की। अब चलने के समय तुम्हें कितना बताऊँ? मैं संक्षेप में तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे हमेशा अपने दिल में बसाये रखना।

"अष्टावरण युक्त १४ लोक , सात शून्य, आदिनारायण, निराकार, और बेहद के परे स्वलीला अद्वैत अनन्त परमधाम है, जिसमें अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत का निवास है। परमधाम में प्रेम और आनन्द की रसधारा श्री यमुना जी के ऊपर सात घाट हैं, जिसमें पाट घाट से आगे जाने पर चाँदनी चौक में रंगमहल है,



जिसकी प्रथम भूमि में मूल मिलावा में परब्रह्म का अति सुन्दर किशोर युगल स्वरूप विराजमान है। हमारे मूल तन वहीं पर हैं। वहाँ से बैठे-बैठे हमने सुरता द्वारा ब्रज, रास, और जागनी का खेल देखा है। अब हम तारतम्य ज्ञान द्वारा जाग्रत होकर निजधाम जायेंगे।"

यह कहकर श्री जी तो सब सुन्दरसाथ सहित मेड़ता की ओर प्रस्थान कर दिये और इधर रेवादास छः माह तक इस कथन का मौन पाठ करते रहे। उन्होंने इस ज्ञान के बारे में किसी को कुछ भी नहीं बताया।

एक दिन अचानक केशव भट्ट से बातचीत करते समय उनके मुख से निकल गया कि हृद-बेहृद के परे परमधाम है, जहाँ से हम माया का खेल देखने आये हैं।

यह सुनते ही केशव भट्ट चौंक पड़े और बोले –

"तुमने यह ज्ञान कहाँ से सुना है भाई? तुम तो सारा जीवन देवी-देवताओं की ही पूजा करते-कराते रहे हो।"

"इधर से छः माह पहले एक क्षत्रिय निकला था, उसके साथ बहुत से लोग थे। उन्होंने ही मुझे यह ज्ञान दिया था।"

"तुमने जो कुछ सुना है, उसे स्पष्ट रूप से सुनाओ।"

"उस तेजस्वी क्षत्रिय ने यह कहा था कि इस अष्टावरण वाले चौदह लोक के ऊपर सात शून्य, आदिनारायण, मोहतत्व, तथा बेहद का ब्रह्माण्ड है, जिसके परे परमधाम है, जहाँ से आकर हमने ब्रज-रास का खेल देखा है और अब जागनी ब्रह्माण्ड का खेल देखकर हम पुनः परमधाम जायेंगे।"

"तुम्हारे इस आचरण से तो मुझे मजबूर होकर यही

कहना पड़ रहा है कि बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद? अपने पण्डेपन की मानसिकता से जिसको तुम एकमात्र क्षत्रिय समझ रहे हो, वह तो साक्षात् परब्रह्म के स्वरूप थे। तुम्हें यह अपना सौभाग्य समझना चाहिए कि अक्षरातीत के चरण कमल तुम्हारे यहाँ २२ दिन तक रहे। लेकिन मुझे दुःख है कि तुमने उनसे कुछ भी विशेष लाभ नहीं उठाया। अब तो मैं उनकी खोज में जा रहा हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी पर जहाँ भी उनके चरण कमल होंगे, मैं उनके दर्शन करके स्वयं को धन्य-धन्य मानूँगा।"

यह कहते ही वे वहाँ से चल पड़े। उन्हें यह मालूम भी नहीं था कि आज से छः माह पहले सिद्धपुर से श्री जी कहाँ गये होंगे?

यदि खोज की उमंग हो और मन्जिल तक पहुँचने की अदम्य प्यास हो, तो असम्भव कुछ भी नहीं होता।

खोजते-खोजते केशव भट्ट आखिरकार दिल्ली तक पहुँच ही गये, जहाँ उन्हें श्री जी का दीदार हुआ। उनके दर्शन की प्यासी आँखे तृप्त हो गयीं।

श्री जी के चरणों में रहकर ब्रह्मज्ञान ग्रहण करने के पश्चात् केशव भट्ट पुनः सिद्धपुर आये और उन्होंने रेवादास सहित बहुत से सुन्दरसाथ को जाग्रत किया। केशव भट्ट के सत्प्रयासों से सिद्धपुर ब्रह्मज्ञान का केन्द्र बन गया।

सिद्धपुर से चलकर श्री जी मेड़ता पहुँचे। वहाँ पर लाभानन्द यति नामक एक तान्त्रिक रहा करता था। उसने वहाँ की सारी जनता को इस प्रकार भयभीत कर रखा था कि उसे छोड़कर अन्य किसी भी महात्मा के पास कोई भी दर्शन हेतु नहीं जा सकता था।

श्री जी ने देखा कि उनके पास तो कोई भी डर के कारण नहीं आ रहा है। अतः श्री जी स्वयं लाभानन्द यति के यहाँ गये। चर्चा-सत्संग में कदम-कदम पर तान्त्रिक परास्त हुआ। मूलतः उसे अध्यात्म का कुछ ज्ञान था ही नहीं, उसने तो केवल तान्त्रिक क्रियाओं से सबको भयभीत कर रखा था।

उसने सोचा, यदि नगर के लोगों को यह पता चल जाये कि मुझे श्री प्राणनाथ जी के प्रश्नों का उत्तर नहीं आता, तब तो मेरी सारी इज्जत ही डूब जायेगी और मेरा दबदबा समाप्त हो जायेगा। उसकी रक्षा करने का उसे केवल एक ही उपाय सूझा।

उसने अपनी तान्त्रिक क्रिया से वशीभूत किये हुए आसुरी प्रवृत्ति वाले सूक्ष्म शरीरधारी भूत-प्रेतों को आदेश दिया कि श्री जी सहित सब सुन्दसाथ को पत्थरों

की वर्षा करके मार डालो। उन राक्षसी प्रवृत्ति के जीवों ने अपनी सारी शक्ति लगा दी, लेकिन उनसे एक कँकड़ी भी नहीं उठी, जबकि यही राक्षस पहले बड़ी-बड़ी चट्टानों को उठा लिया करते थे।

जहाँ श्री प्राणनाथ जी की सेवा में सम्पूर्ण दैवी शक्तियाँ प्रस्तुत हों, वहाँ मायावी शक्तियों का बल क्या काम करेगा? जब लाभानन्द सारे प्रयास करके भी कुछ बिगाड़ नहीं सका, तो लज्जा के मारे एकान्त में मौन व्रत धारण करके बैठ गया।

अब श्री प्राणनाथ जी सब सुन्दरसाथ सहित एक हवेली में विराजमान थे। लाभानन्द का भय समाप्त हो जाने पर जनता की भीड़ मधुमक्खियों की भांति आने लगी। श्री जी के दीदार की आशा में बहुत बड़ा जनसमूह उमड़ पड़ता था।

श्री जी की वाणी-चर्चा के सम्मोहन पाश में बँधे हुए अनेकों ने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। इनमें श्री राजाराम, झाँझन भाई, तथा मकरन्द जी ने तो अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। मेड़ते से लेकर पन्ना जी में तीन साल तक सुन्दरसाथ की सम्पूर्ण सेवा का खर्च राजाराम तथा झाँझन भाई ने उठाया। उनकी यह शोभा परमधाम तक अखण्ड रहेगी।

धन की तीन ही गति होती है – दान, भोग, या विनाश। दान जहाँ देवत्व का परिचायक है, वहीं भोग विलासिता का। वे धन्य-धन्य हैं, जो अपने धन को परमात्मा का मानकर ज्ञान के प्रसार या मानवता के कल्याण में खर्च करते हैं।

मेड़ते में एक बहुत चमत्कारिक घटना घटित हुई। कभी द्वापर युग में श्री कृष्ण जी ने अपने स्पर्श मात्र से

कुब्जा दासी के कुबड़ेपन और कुरूपता को दूर किया था, वही लीला श्री जी द्वारा मेड़ते में हुई।

राजाराम की पुत्री का नाम था ललिता। वह कुरूप तो थी ही, उसकी शारीरिक विकृति भी कुब्जा जैसी ही थी। एक दिन श्री प्राणनाथ जी स्नान कर रहे थे। अचानक ललिता भी वहीं आ गयी। श्री जी ने जल का एक लोटा ललिता के ऊपर उड़ेल दिया।

यह क्या.....? क्षण भर में ही ललिता सर्वांग सुन्दरी बन गयी। सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा से भला क्या असम्भव है।

बस फिर क्या था, माया के अन्धकार में भटकती हुई ललिता ने अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को घर बैठे ही पा लिया। वह तो धनी के प्रेम में बेसुध हो गयी। उसने



घर का बन्धन हमेशा के लिए तोड़ दिया और पन्ना जी तक सेवा करते-करते अपनी दैहिक लीला समाप्त की।

एक दिन सायंकाल के समय श्री प्राणनाथ जी सुन्दरसाथ के साथ चहल-कदमी कर रहे थे। अचानक मुल्ला ने मस्जिद की मीनार पर चढ़कर बाग दी- "ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूल अल्लाह।"

यह सुनकर श्री जी चौंक पड़े। यह मुल्ला क्या कह रहा है? इसके कहने का तो आशय यह है कि जिसे हम क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत कहते हैं, उसे ही कलमे के अन्दर "ला इलाह इल्लिल्लाह" कहा गया है। दोनों में अद्भुत समानता दृष्टिगोचर हो रही है।

श्री मिहिरराज जी के तन में अक्षर ब्रह्म की सुरता के आने से उनकी आत्मा में परब्रह्म की पाँचों शक्तियाँ -

जोश, श्यामा जी, अक्षर ब्रह्म, आवेश शक्ति, तथा जाग्रत बुद्धि— विराजमान हो गयीं, जिससे उनकी "महामति" शोभा हुई। महामति का तात्पर्य ही होता है, महानतम् बुद्धि के स्वामी।

श्री जी ने कहा— "लालदास! वेद पक्ष के ग्रन्थों में जो कुछ कहा गया है, कतेब परम्परा में भी वही बात दूसरे शब्दों में कही गयी है। संसार में जो खूनी संघर्ष चल रहा है, उसका मूल कारण है— भाषा, वेश-भूषा, और कर्मकाण्ड में भिन्नता।

"उस मूल सत्य को न समझने के कारण ही संसार में खून की होलियाँ खेली जाती रही हैं और धर्म की ओट में मानवता को कलंकित किया जाता रहा है। महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर लंग, सिकन्दर लोदी आदि सभी ने अपनी धर्मान्धता के कारण ही मन्दिरों को तोड़ा

और लाखों बेगुनाहों के रक्त से धरती को लाल किया। मात्र मेरठ में ही तैमूर लंग ने एक लाख हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया था, जिसमें बच्चों, बूढ़ों, और स्त्रियों तक को नहीं छोड़ा गया। यह बर्बर कार्य उसने अपने खुदा को खुश करने के नाम पर किया। क्या इसे ही धर्म कहते हैं?

"वर्तमान समय में इस परम्परा को औरंगज़ेब आगे बढ़ा रहा है। वह सम्पूर्ण भारतवर्ष को इस्लामी शरियत के अधीन करना चाहता है। काशी, मथुरा जैसे अनेक धर्मस्थानों के मन्दिरों को तुड़वाकर वहाँ मस्जिदें बनवायी जा चुकी हैं। हिन्दू जनमानस अपनी धर्मरक्षा के लिए गुहार लगा रहा है। कट्टरवादी शिक्षा मिलने के कारण ही औरंगज़ेब इतना असहिष्णु हो चुका है।

"यदि औरंगज़ेब को इस्लाम धर्म के वास्तविक

मन्तव्य का ज्ञान हो जाये, तो वह अत्याचार करना बन्द कर देगा। वह कुरान-हदीसों में वर्णित आखरूल इमाम मुहम्मद महदी की खोज में लगा हुआ है। यदि उसको मेरे स्वरूप की पहचान हो जाये, तो वह निश्चय ही सच्चे धर्म की शरण में आ जायेगा, क्योंकि उसके अन्दर परमधाम की आत्मा है। इसलिये, हमें अब सारा कार्य छोड़कर दिल्ली प्रस्थान करना होगा।"

श्री प्राणनाथ जी चार माह मेड़ते में रहे थे। मेड़ता से दिल्ली प्रस्थान करने से पूर्व श्री जी ने गोवर्धन दास को अटक पार जसवन्त सिंह राठौर के पास भेजा था, ताकि उन्हें जाग्रत किया जा सके। उस समय राजस्थान में तीन राजवंश प्रसिद्ध थे— १. उदयपुर में शिशोदिया वंश, २. जयपुर में कछवाहा (कुश्वाह) वंश, तथा ३. मारवाड़ के जोधपुर में राठौर वंश। ये वही जसवन्त सिंह थे,

जिनके १३ वर्षीय वीर पुत्र पृथ्वी सिंह ने केशरी सिंह का जबड़ा पकड़कर चीर डाला था। इस दृश्य को देखकर औरंगज़ेब भी दहल गया था। उसने सोचा कि यदि यह बालक रहेगा, तो मेरी सत्ता को समाप्त कर देगा। उसने धोखे से जसवन्त सिंह को अफगानिस्तान पर हमला करने के लिये भेज दिया तथा पृथ्वी सिंह को जहर देकर मरवा डाला। इस दुःखद घटना को सुनते ही जसवन्त सिंह ने भी शरीर छोड़ दिया।

ये सभी सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और वीरता के क्षेत्र में जसवन्त सिंह राठौर की बहुत ख्याति थी। गोवर्धन भट्ट जी की ज्ञान चर्चा का जसवन्त सिंह पर कोई असर नहीं हुआ और वे खाली हाथ लौट आये।

मुकुन्द दास जी ने सूरत में तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया था। उनका विवाह कुछ समय पहले ही हुआ था।

उन्होंने अपनी पत्नी को अपने साथ श्री जी के पीछे चलने के लिये कहा। पत्नी के मना करने पर मुकुन्ददास जी ने उसे अन्तिम प्रणाम कहा और दिल्ली आकर श्री जी के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया।

श्री जी गोकुल, मथुरा, आगरा होते हुए दिल्ली आए। वे दिल्ली में विठ्ठल गौर की हवेली में छः मास तक रहे। ठठानगर, मेड़ता आदि के सुन्दरसाथ यहीं पर आकर श्री जी से मिले।

अटक से आने के पश्चात् गोवर्धन जी लाल दरवाजे में गँगाराम की दुकान में ठहरे। वहाँ उन्होंने ज्ञान चर्चा सुनाकर गँगाराम तथा आशाजीत वकील को जाग्रत किया। उर्दू बाजार में घूमते समय उनकी भेंट गरीबदास जी से हुई। उन्हीं के माध्यम से गोवर्धन को पता चला कि श्री जी सैयद की हवेली में ठहरे हुए हैं।

गोवर्धन ने आकर श्री जी के चरणों में प्रणाम किया और अटक पार का सारा विवरण कह सुनाया। उनके साथ गँगाराम भी आये थे। सैयद की हवेली से लाल दरवाजे आकर श्री जी और लालदास जी ने औरंगज़ेब के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें कुरआन के २२ प्रश्न लिखे गये थे। ये प्रश्न कियामत के निशान तथा आखरूल इमाम मुहम्मद महदी के प्रकटन के सम्बन्ध में थे।

इस पत्र को लिखने के पश्चात् श्री जी के निर्देशन में सब सुन्दरसाथ की एक गोपनीय सभा हुई, जिसमें इस विषय पर विचार किया गया कि औरंगज़ेब बादशाह तक पहुँचने का क्या तरीका हो सकता है?

आशाजीत वकील ने कहा— "हे श्री जी! यह पत्र हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखा गया है, जिसे बादशाह किसी भी कीमत पर नहीं पढ़ सकता है।

इस्लामी शरियत के इस राज्य में यदि बादशाह प्रातःकाल किसी भी हिन्दू का मुख देख ले तो उसकी गर्दन कटवा दी जाती है, क्योंकि उसकी नजर में हिन्दू नापाक होते हैं। वह अपने को तो मोमिन (ब्रह्मसृष्टि) मानता है और हिन्दुओं को काफिर कहता है। इस पत्र से कोई भी लाभ नहीं होने वाला है।"

श्री प्राणनाथ जी लाल दरवाजे में एक क्षत्रिय की हवेली में दो माह तक ठहरे। इस हवेली में एकान्त में वेद-वेदान्त की चर्चा होती थी। उस चर्चा में एक सूफी फकीर भी आया करता था।

श्री प्राणनाथ जी की चर्चा से दयाराम तथा चञ्चलदास की आत्मा जाग्रत हुई। शेखबदल तथा अनन्त राम पहले ही श्री जी के चरणों में आ चुके थे। दयाराम, गँगाराम, तथा चञ्चलदास जब भी आते, श्री जी के चरणों



में भेंट करने के लिये कोई न कोई वस्तु अवश्य लाते।

इस समय सूरत से लक्ष्मीदास जी सपरिवार दिल्ली आये। उनके मन में श्री जी की सेवा करने की भावना थी। धाम धनी की लीला बड़ी ही विचित्र है। उसे मानवीय बुद्धि से पूर्णरूपेण कदापि नहीं समझा जा सकता।

लक्ष्मीदास जी के घर में विचित्र लीला प्रारम्भ हो गयी। राज जी आवेश स्वरूप से दर्शन देने लगे। श्री राज जी ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा कि आज के आठवें दिन अवश्य ही औरंगज़ेब की आत्मा जाग्रत हो जायेगी।

लक्ष्मीदास जी ने श्री जी के पास आकर कहा – "हे श्री जी! प्रतिदिन मेरे घर श्री राज जी दर्शन देते हैं। आज पूर्णब्रह्म श्री राज जी ने कहा है कि औरंगज़ेब की आत्मा

तुम्हारे तन से जाग्रत होगी। यह कार्य आज से आठवें दिन होगा।"

श्री प्राणनाथ जी ने लक्ष्मीदास जी का बहुत आदर किया और सुन्दरसाथ से कहा— "अब लक्ष्मीदास जी का आसन मेरी बराबरी में लगाओ। धाम धनी की कृपा तो किसी पर भी हो सकती है। जिस पर भी श्री राज जी की कृपा हो, वह जागनी कार्य में आगे-आगे चले। मैं तो उसके पीछे-पीछे भी चलने को तैयार हूँ।

"या कोई मेरी बराबरी में भी बैठे, तो भी मैं साथ-साथ चलने को तैयार हूँ। यदि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी मेरे सिर पर हैं, तो सुन्दरसाथ को मेरे पीछे-पीछे चलना चाहिए, किन्तु जागनी कार्य में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं होना चाहिए।"

लक्ष्मीदास जी ने कहा- "मैं आपके आगे-आगे तो नहीं चल सकता, लेकिन आपकी बराबरी में बैठ सकता हूँ, क्योंकि मेरे तन से ही औरंगजेब की आत्मा को जाग्रत होना है।"

श्री जी के इशारे से लक्ष्मीदास जी का आसन श्री जी के बगल में लगा दिया गया। सब सुन्दरसाथ प्रतिदिन श्री जी को प्रणाम करते ही थे। श्याम भाई और भीम भाई भी श्री जी को प्रणाम करने के लिये आये। जब उन्होंने श्री प्राणनाथ जी की बराबरी में लक्ष्मीदास जी को बैठे हुए देखा, तो मन ही मन मुस्कराये, लेकिन कुछ बोले नहीं। श्री जी के चरणों में चुपचाप प्रणाम करने के बाद लक्ष्मीदास जी की ओर मुख करते हुये बोले- "धाम के धनी, पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द श्री लक्ष्मीदास जी को प्रणाम!"

यह कहने के बाद दोनों अपने चेहरे पर हल्की सी

मुस्कान लिये हुए चले गये। सब सुन्दरसाथ यह दृश्य देख रहे थे, लेकिन कोई कुछ भी बोल नहीं पा रहा था। लक्ष्मीदास जी को ऐसा लगा, जैसे भीम भाई और श्याम भाई व्यंग्य कर रहे हों।

इसी तरह की घटना तीन दिन तक नियमित रूप से घटती रहती। श्याम भाई और भीम भाई उसी शैली में लक्ष्मीदास जी को प्रणाम करते रहे। अब तो लक्ष्मीदास जी शर्म के मारे पानी-पानी हो गये और उन्होंने श्री जी की बराबरी में बैठना बन्द कर दिया।

उधर श्री राज जी प्रतिदिन की तरह लक्ष्मीदास जी के घर सबको दर्शन देते रहे। आठवें दिन जब लक्ष्मीदास जी ने प्रार्थना की कि हे धाम धनी! अब मेरे तन से औरंगजेब की आत्मा को जाग्रत कराइए, तो श्री राज जी अन्तर्धान हो गये।

उस दिन जब लक्ष्मीदास जी सुन्दरसाथ के बीच में आये, तो प्रत्येक सुन्दरसाथ यही प्रश्न करता था – "क्या औरंगज़ेब से आपकी भेंट हुई? क्या आपने उसे जगा लिया?"

लक्ष्मीदास जी उनसे तो कुछ नहीं बोले, बल्कि श्री जी के चरणों में बैठकर प्रणाम करके सारी घटना सुनाने लगे कि किस प्रकार श्री राज जी अन्तर्धान हो गये। श्री जी बोले तो कुछ नहीं, मुस्कराते हुए चुपचाप सुनते रहे। जब सुन्दरसाथ को इस बात की जानकारी हुई तो सब खुलकर हँसने लगे।

लक्ष्मीदास जी सिर नीचे किए हुए सबकी हँसी सुनते रहे।

धाम धनी द्वारा यह हँसी की लीला इसलिये की गयी

कि सुन्दरसाथ ब्रह्मवाणी के कथनों में अटूट आस्था रखे। जब ब्रह्मवाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सबकी आत्मा को जगाने की शोभा महामति जी को है, तो वह लक्ष्मीदास जी को कैसे मिल सकती थी? वाणी की महत्ता को स्थापित करने के लिये ही श्री राज जी ने अपनी कही हुई बात को भी झूठा सिद्ध करवाया। इस हँसी की लीला में यह सिखापन है कि भविष्य में सुन्दरसाथ वाणी के कथन के विपरीत किसी के भी कथन को सत्य न मानें।

इस घटना के पश्चात श्री जी शाहजहांपुर बूड़िया आये। वहाँ मिर्गी की बीमारी फैली हुई थी। उस भयंकर बीमारी की गिरफ्त में नागजी भाई भी आ गये। उनके सामने प्रत्यक्ष मौत खड़ी थी, लेकिन श्री प्राणनाथ जी की कृपा से उनका जीवन पूर्णतया सुरक्षित रहा। मृत्यु

उनका कुछ भी बिगाड़ न सकी।

यहाँ से श्री जी ने निर्मलदास जी को चार सुन्दरसाथ के साथ खड़कारी के राजा के पास भेजा। माया का जीव होने के कारण वह जाग्रत नहीं हो सका। लगभग दस-ग्यारह दिन वहाँ रहने के पश्चात् सभी सुन्दरसाथ श्री जी के चरणों में आ गये।

बाईस प्रश्नों का जो पत्र हिन्दुस्तानी भाषा में तैयार किया गया था, उसे फारसी में तैयार कराकर श्री प्राणनाथ जी ने भीम भाई तथा लालदास जी को आदेश दिया कि औरंगज़ेब तक इसे पहुँचाओ। दोनों तैयार होकर बूड़िया से दिल्ली तक आये।

किन्तु, अक्षरातीत श्री राज जी ने महामति जी के दिल में यह प्रेरणा की कि अभी सफलता नहीं मिलेगी ,

इसलिए उनको वापस बुलवाया जाये। श्री जी ने कान्हजी भाई को उन्हें वापस बुलाने हेतु भेजा।

कान्हजी भाई ने दिल्ली आकर भीम भाई तथा लालदास जी से कहा- "श्री जी का आदेश है कि अभी औरंगज़ेब को पैगाम नहीं देना है, क्योंकि अभी इस कार्य में सफलता नहीं मिलेगी। मुझे वहाँ आने दो। वहाँ आकर विचार करेंगे कि कैसे पैगाम देना है? तब आगे का कार्य किया जायेगा।"

भीम भाई तथा लालदास जी वापस बूड़िया आ गये। यहाँ पर श्री प्राणनाथ जी एक माह तक रहे। उसके पश्चात् हरिद्वार के लिये प्रस्थान किया।



## (२१)

मृत्यु को जीतकर अमरत्व पाने की इच्छा तो प्रायः प्रत्येक मनुष्य में होती ही है। स्वाभाविक रूप से हर प्राणी मृत्यु से दूर रहना चाहता है।

यह पौराणिक मान्यता है कि देवों और दानवों ने अमृत को पाने के लिये समुद्र का मन्थन किया। फलस्वरूप १४ रत्न निकले, जिसको पाने के लिये देवों और दैत्यों में विवाद खड़ा हो गया।

देवगण उस अमृत कलश को लेकर भागते रहे और दैत्य उनका पीछा करते रहे। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, और नासिक में अमृत कलश से अमृत की कुछ बूँदें ढुलक गयीं।

अमृत पीकर अमरत्व को पाने वाले देवताओं की

भांति आज का मानव यही सोचता है कि यदि मुझे भी उस अमृत का रसपान करने के लिये मिल जाये, तो मैं भी अमर हो जाऊँगा।

इसी आकांक्षा को पूरी करने के लिये वह हरिद्वार में गंगा में स्नान करता है, तो प्रयाग में त्रिवेणी के संगम पर, उज्जैन और नासिक में क्षिप्रा तथा गोदावरी में।

प्रश्न यह है कि क्या अमृत की वे बूँदें इन स्थानों पर उपलब्ध हैं? लाखों वर्ष पहले समुद्र-मन्थन की घटना हुई है। बहती हुई नदियों में अमृत के कण क्या अभी तक सुरक्षित हैं? जब राम के बाणों से रावण की नाभि का अमृत सूख सकता है, तो इन स्थानों पर अभी तक अमृतकण भला कैसे सुरक्षित रह सकते हैं? क्या कुम्भ पर्व पर इन स्थानों में नदियों में स्नान मात्र से ही अमृत की प्राप्ति हो सकती है? मोक्ष की कामना से एकत्रित होने

वाले लाखों लोगों को उस अमृत का कितना अंश प्राप्त हो सकता है? अमृत-पान कर अमर होने वाले देवता तो स्वर्ग में ही रहते हैं। जब महाप्रलय में स्वर्ग , वैकुण्ठ सहित सभी लोकों का विनाश होता है, तो उस अमृत की सार्थकता ही क्या है?

यजुर्वेद का कथन है कि विद्या से अमृत प्राप्त होता है। वस्तुतः अमृत-पान की कथा आलंकारिक है। पराविद्या या ब्रह्मविद्या के ग्रहण से सात्विक स्वभाव वाले देवताओं ने ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त किया। यही अमृत है और यही मोक्ष या मुक्ति है। इसके विपरीत तमोगुणी दानव सुरापान में ही व्यस्त रहे , क्योंकि ब्रह्मविद्या की प्राप्ति न होने से उन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार न हो सका था। परिणाम स्वरूप, वे जन्म-मरण के चक्र में भटकते रहे।

इसी अमृत-पान की स्मृति में मनाये जाने वाले महाकुम्भ के मेले में श्री प्राणनाथ जी सुन्दरसाथ सहित हरिद्वार पधारे। उस मेले में वैष्णवों के चारों सम्प्रदाय (रामानुज, निम्बार्क, माध्व, तथा विष्णु श्याम) के अनुयायी, षट् दर्शनों के विद्वान, तथा दस नामी सन्यासी भी उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त सैकड़ों सम्प्रदायों के लाखों अनुयायी भी उस मेले में एकत्र हुए थे।

मुगल काल में हिन्दुओं के मन्दिरों, मठों, आश्रमों, तथा शिक्षा-संस्थानों को नष्ट किया गया। मेले आदि में भी मुगल सेना के आक्रमण का खतरा हमेशा बना ही रहता था।

श्री जी तथा सुन्दरसाथ की वेश-भूषा प्रचलित सम्प्रदायों की मान्यताओं के अनुकूल नहीं थी। न तो किसी के गले में कण्ठी थी, न तिलक, और न भगवा

वेश। यह देखकर सबने अपने मन में सोचा कि कहीं ये औरंगज़ेब के भेजे हुए तो नहीं हैं। इनकी वेश-भूषा हम सबसे न्यारी है, अतः इनका परिचय लेना चाहिए।

यह सोचकर सबने श्री जी से पूछा- "आप कौन हैं? कृपया आप अपना परिचय दीजिए। हमें तो ऐसा लगता है कि सनातन हिन्दू धर्म के किसी भी प्रचलित सम्प्रदाय के आप अनुयायी नहीं हैं।"

श्री प्राणनाथ जी ने उत्तर दिया- "आप लोग जिन प्राचीन मान्यताओं का अनुसरण करते हैं, उसे वेद-शास्त्र के प्रमाणों से सिद्ध कीजिए। आप मेरी सभी शंकाओं का समाधान कीजिए, ताकि मैं आपके मत को ग्रहण कर सकूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि जीव की मुक्ति का स्थान कहाँ होगा तथा ब्रह्म कहाँ और कैसा है?"

यह सुनते ही चारों वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने-अपने मत का प्रतिपादन किया। सभी ने अपना इष्ट लक्ष्मी तथा रूक्मिणी आदि को बताया। मुक्ति का स्थान वैकुण्ठ, द्वारिका आदि कहा। उन्होंने अपना परमात्मा विष्णु भगवान को ही ठहराया।

श्री प्राणनाथ जी ने कहा कि वेदादि सभी ग्रन्थों के अनुसार महाप्रलय में १४ लोकों सहित सम्पूर्ण प्रकृति मण्डल का विनाश हो जाता है, तो आपके परमात्मा तथा मुक्ति का स्थान कहाँ सुरक्षित रहेगा? आपका सारा ज्ञान तो प्रकृति मण्डल के ही अन्दर का है।

श्री जी के इस प्रश्न का किसी के भी पास उत्तर नहीं था। सभी बगले झाँकने लगे।

इसके पश्चात् दस नाम सन्यास मत के आचार्य

शास्त्रार्थ के लिये प्रस्तुत हुए। उन्होंने अपनी सातों मन्याओं तथा चारों मठों का परिचय दिया। उनके मतानुसार भी ब्रह्म का धाम तथा मुक्ति का स्थान प्रकृति के अन्दर ही सीमित था। केवल छठी मन्या में ही अखण्ड धाम की तरफ संकेत था, किन्तु उसका पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं था।

श्री जी ने जब प्रकृति से परे उस अखण्ड त्रिगुणातीत धाम के बारे में जानना चाहा, तो सभी के पास मौन रहने के सिवाय कोई भी चारा नहीं था।

शास्त्रार्थ का दृश्य बहुत ही रोमाँचक था। हजारों की संख्या में लोग शास्त्रार्थ का आनन्द लेने के लिये श्रोता के रूप में उपस्थित थे। श्री प्राणनाथ जी जब भी ब्रह्म के अखण्ड धाम, स्वरूप, तथा लीला के सम्बन्ध में प्रश्न करते, तो आचार्यों को मौन होना पड़ता। सारी जनता

आश्चर्यचकित नेत्रों से यह दृश्य देख रही थी। अन्त में छः दर्शनों के आचार्य श्री जी से शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार हुए।

सर्वप्रथम, न्याय दर्शन के आचार्यों ने कहा – "जीव, ईश्वर, तथा माया – तीनों ही एक-दूसरे से भिन्न तथा अनादि हैं। जब दुःख की २१ सीढ़ियों (६ इन्द्रियाँ, ६ इन्द्रियों के विषय, ६ इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान, सुख, दुःख, और शरीर) का नाश हो जाता है, तो जीव अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होता है।"

श्री जी ने पूछा कि दुःख की २१ सीढ़ियों से परे ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप कहाँ है? इस प्रश्न का उनके पास कोई उत्तर था ही नहीं।

मीमांसा दर्शन के आचार्यों ने कर्म को ब्रह्म का स्वरूप



बताया। श्री जी ने कहा कि कर्म की उत्पत्ति जीव के मन, अहंकार, तथा इन्द्रियों के संयोग से होती है। ब्रह्म तो इन सब प्राकृतिक तत्वों से रहित है, इसलिये उसे कर्म का स्वरूप नहीं कह सकते। निदान वे भी चुप हो गये।

सांख्य शास्त्र के आचार्यों ने पुरुष और प्रकृति के मिलने से सृष्टि की उत्पत्ति बतायी। श्री जी ने पूछा कि इन दोनों का स्वरूप क्या है, और ये कहाँ तथा कैसे मिलते हैं? तारतम्य ज्ञान से रहित होने के कारण इन प्रश्नों का उनके पास कोई भी उत्तर नहीं था।

इन सबके मौन हो जाने पर वैशेषिक दर्शन के आचार्य शास्त्रार्थ के लिये तैयार हुए। उन्होंने कहा – "काल ही ब्रह्म का स्वरूप है। इसी से सबकी उत्पत्ति और प्रलय की लीला होती है।"

श्री जी ने कहा- "आपने वैशेषिक दर्शन का सही चिन्तन नहीं किया है। कणाद मुनि ने कहीं भी जड़ तत्व काल को ब्रह्म का स्वरूप नहीं माना है। सभी धर्मग्रन्थों में ब्रह्म का स्वरूप काल से अतीत ही वर्णन किया गया है।"

योग दर्शन के आचार्यों ने कहा - "ब्रह्म ज्योति स्वरूप है और इस सृष्टि के कण-कण में व्यापक है। वह योग के आठ अंगों के अभ्यास से प्राप्त होता है।"

श्री प्राणनाथ जी ने कहा- "ब्रह्म सत्, चिद्, और आनन्द का स्वरूप है, तथा जगत् असत्य, जड़, और दुःख का रूप है। इस प्रकार ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप इस मायावी जगत के कण-कण में व्यापक नहीं हो सकता। दोनों का स्वरूप अलग-अलग है।"

अन्ततोगत्वा, वेदान्त के विद्वानों के साथ श्री

प्राणनाथ जी का शास्त्रार्थ हुआ। वेदान्त के विद्वानों ने कहा— "सब कुछ ब्रह्म का ही स्वरूप है। ब्रह्म के अन्दर माया है तथा माया के अन्दर ब्रह्म व्यापक है।"

श्री जी ने कहा— "यदि सब कुछ ब्रह्म का ही स्वरूप है, तो किसी को भी अज्ञानी नहीं होना चाहिए। फिर वेद-शास्त्रों के ज्ञान की आवश्यकता ही क्या है? जिस प्रकार सूर्य के अन्दर अन्धकार तथा अन्धकार के कण-कण में सूर्य की उपस्थिति नहीं हो सकती, उसी प्रकार ब्रह्म के अन्दर माया तथा माया के कण-कण में ब्रह्म व्यापक नहीं हो सकता।"

श्री प्राणनाथ जी के तीक्ष्ण तर्कों तथा वेद-शास्त्र के प्रमाणों के समक्ष वेदान्त के विद्वान असहाय हो गये। उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली।

सभी आचार्यों ने आपस में विचार किया कि ये कौन महापुरुष हैं, जिन्होंने अकेले ही हम सबको हरा दिया। इनका परिचय लेना चाहिए।

जब सबने मिलकर श्री जी का परिचय पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया— "यदि आप सभी मेरे विषय में जानना ही चाहते हैं, तो कृपया पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बृहद् सदाशिव संहिता, बुद्ध गीता, तथा हरिवंश पुराण का अवलोकन करें। उससे विदित हो जायेगा कि कलियुग में जिन ब्रह्ममुनियों के साथ श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप में सच्चिदानन्द परब्रह्म की शक्ति का प्रकटन होना लिखा है, वही मैं हूँ।"

फिर, परीक्षा के उद्देश्य से सभी आचार्यों ने परब्रह्म के धाम, स्वरूप, लीला, शिखा, सूत्र, सद्गुरु आदि के बारे में पूछा। श्री जी ने धर्मग्रन्थों के प्रमाणों के साथ

सबका यथोचित उत्तर दे दिया। इस प्रकार सभी आचार्यों ने यह मान लिया कि यही सचमुच में श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप हैं।

उसी रात्रि को एक विशेष घटना भी हुई। रात्रि में धूम्रकेतु तारा प्रकट हुआ तथा उस वर्ष में एक माह की कमी रही। धर्मग्रन्थों में विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप के प्रकट होने के सम्बन्ध में ये दो निशान लिखे गये हैं।

इन दोनों निशानों के प्रकट होने पर सभी आचार्यों ने श्री जी को श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप मानकर उनके नाम की "बुद्ध जी की शाका" चलाई तथा ध्वज फहराया और उनकी आरती भी उतारी।

उस समय प्रबन्धन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व गरीब

दास जी के ऊपर था। श्री लालदास जी के ऊपर सम्पूर्ण धर्मग्रन्थों के रख-रखाव की जिम्मेदारी थी। चार माह के पश्चात् हरिद्वार के इस महाकुम्भ मेले से चलकर श्री प्राणनाथ जी दिल्ली पहुँचे तथा सब सुन्दरसाथ को उनके दर्शन का लाभ मिला।

## (२२)

श्री प्राणनाथ जी ने सुन्दरसाथ की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए बच्चों, स्त्रियों, तथा वृद्धों को किसी सुरक्षित स्थान में रखने का निर्णय किया। इन्हें लेकर श्री प्राणनाथ जी अनूपशहर आए तथा एक हवेली में सबको ठहरा दिया गया। तत्पश्चात् श्री जी पुनः दिल्ली वापस चले गए।

श्री जी ने दिल्ली में बिहारी जी को पत्र लिखा तथा आशाजीत वकील से विचार-विमर्श किया। जब उसे मुहम्मद साहब तथा नारायण की पहचान बतायी, तो उसका ईमान टूट गया और बोला- "आप लोगों को मृत्यु का थोड़ा भी डर नहीं है। औरंगज़ेब के इस इस्लामी साम्राज्य में शरियत को चुनौती देना मौत को निमन्त्रण देने के समान है। मैं इस कार्य में अपेक्षित सहयोग नहीं दे

सकूँगा।"

इसके पश्चात् औरंगज़ेब के दरबारी शेख सुलेमान से बातचीत की गयी। वह पहले दो बार श्री जी से मिल चुका था। वह श्री जी की कृपा से लोहा से सोना बनाने की कला जानना चाहता था।

सुन्दरसाथ ने शेख सुलेमान को यह लिखित रूप में दे दिया— "यदि तुम औरंगज़ेब बादशाह से हमारी भेंट करवा दोगे तो लोहे से सोना बनाने वाले भी तुम्हारे हुक्म पर चलेंगे, हिन्दू और मुसलमान आपस में मिलजुल कर रहेंगे, तथा अल्लाह तआला की मेहर से तुम्हें हज़रत मुहम्मद रसूल्लाह साहब का भी दीदार हो जायेगा।"

इस प्रकार का लिखित उत्तर पाकर शेख सुलेमान अन्दर ही अन्दर भय के कारण काँप उठा। उसने अपने



मन में सोचा कि आखिर ये लोग इतने आत्मविश्वास से क्यों कह रहे हैं?

अपने भावों को छिपाते हुए उसने कहा – "यदि बाहशाह श्री प्राणनाथ जी के चरणों में चला जायेगा, तो इतने बड़े देश पर हुकूमत कौन करेगा?"

तब सुन्दरसाथ ने स्पष्ट किया कि श्री जी के लिये दुनिया का राज्य निरर्थक है। उन्हें धर्म की बादशाहत के सिवाय कुछ भी नहीं चाहिए।

इस बात को सुनकर शेख सुलेमान और अधिक डर गया कि इनकी दृष्टि में जब सारे हिन्दुस्तान का साम्राज्य भी मिट्टी के बराबर है, तो औरंगज़ेब से इनकी वार्ता हो जाना इस्लामी शरियत के लिये खतरे की घंटी है।

श्री जी ने लालदास जी तथा गोवर्धन जी को आदेश

दिया- "तुम दोनों किसी मुल्ला से यह पूछो कि कुरआन में हमारे लिये क्या-क्या साक्षियाँ हैं?"

दोनों ने जब पास की मस्जिद में जाकर मुल्ला से बातचीत की तो पता चला कि उसमें तो हमारी साक्षियाँ हैं। ब्रज, रास, और जागनी के रूप में लैल-तुल-कद्र के तीन तकरार का वर्णन है। छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित "मदीयं सरः" की ही तरह हौजकौसर का वर्णन है, और पुराण संहिता में वर्णित यमुना जी की शोभा की तरह "जोए" का वर्णन है।

इस तरह का वर्णन सुनकर लालदास जी तो रोमाञ्चित हो उठे, किन्तु गोवर्धन जी के अन्दर यह भय समा गया कि कुरआन में साक्षी मिल जाने के पश्चात् तो निश्चित रूप से औरंगज़ेब से वार्ता करनी पड़ेगी, जिसका परिणाम मौत को निमन्त्रण देना है।

गोवर्धन ने अपना भय प्रकट करते हुए कहा- "हमें श्री जी से यह कभी नहीं बताना चाहिए कि कुरआन में परमधाम की साक्षी है।"

लालदास जी बोले- "श्री जी का स्वरूप हमारे लिये साक्षात् अक्षरातीत का स्वरूप है। उनसे मैं किसी भी प्रकार का छिपाव नहीं कर सकता।"

गोवर्धन ने प्रतिरोध किया- "यदि हम ये सारी साक्षियाँ श्री जी को बता देंगे तो पैगाम देने हमें ही भेजा जायेगा, जिसका परिणाम यह होगा कि हमारी ही गर्दनों पर शरियत की तलवार पड़ेगी।"

लालदास जी का चेहरा तमतमा उठा। वे बोले- "धिक्कार है तुम्हारे ईमान पर। तुम धाम के धनी श्री प्राणनाथ जी पर भी विश्वास नहीं रखते। उन्हें तुम

मरवाने वाला समझते हो।"

गोवर्धन ने अपना पक्ष रखा – "तुम्हें मेरे ईमान पर आरोप लगाने का क्या अधिकार है? यदि मेरे दिल में ईमान नहीं होता, तो अब्बासी बन्दर से यहाँ तक क्यों आता?"

यह कहकर तेज कदमों से चलते हुए गोवर्धन श्री जी के पास पहले पहुँच गये। लालदास जी पीछे रह गये।

उस समय शाम के सवा पाँच बजे थे। श्री जी हवेली में अटारी पर बैठे हुए थे। गोवर्धन ने श्री प्राणनाथ जी के चरणों में प्रणाम किया और बोले – "धाम धनी! कुरआन में हमारे परमधाम की सारी साक्षियाँ हैं। उसमें यमुना जी, हौजकौशर, तथा रंगमहल का वर्णन है। हमें तो अब औरंगज़ेब को चुनौती देकर कहना चाहिए कि अब

तुम्हारी शरियत की हुकूमत नहीं चलेगी। तुमने धर्म के नाम पर बहुत अधिक.....।"

अभी वे इतना ही कह पाये थे कि लालदास जी भी वहीं पहुँच गये। उन्होंने गोवर्धन की काफी बातें सुन ली थीं। श्री जी को प्रणाम करने के पश्चात् वे बोले— "हे धाम धनी! आपको हम लोगों पर कभी भी पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि हमारा ईमान आपके समाने कुछ और होता है तथा पीठ पीछे कुछ और।"

यह सुनते ही गोवर्धन जी का पारा सातवें आकाश पर पहुँच गया। उन्होंने अँगारे बरसाते हुए कहा— "लालदास! यह आपका अहंकार है, जो मात्र अपने को ही आप श्री जी पर ईमान रखने वाला समझते हैं। आप मुझे सबकी दृष्टि में गिराने के लिये ही इस प्रकार खुल्लमखुल्ला आरोप लगा रहे हैं कि मैं श्री जी को धोखे में

रख रहा हूँ।"

लालदास जी बोले- "चोर की दाढ़ी में तिनका ही होता है। मैंने कहीं आपका नाम तो लिया नहीं।"

गोवर्धन झल्ला उठे- "नाम लेने या न लेने से क्या होता है। आपके कहने का आशय तो मैं समझ ही रहा हूँ।"

लालदास जी ने प्रत्युत्तर दिया- "तो क्या आप मस्जिद से लौटते समय कह नहीं रहे थे कि यह बात श्री जी से नहीं कहनी चाहिए, नहीं तो हमें अपनी जान जोखिम में डालकर औरंगज़ेब को पैगाम देने के लिये जाना पड़ेगा?"

यह सुनते ही गोवर्धन भट्ट क्रोध में अपने दाँत तो पीसने लगे, किन्तु श्री जी के सामने ज्यादा बोलने का

साहस नहीं कर सके।

जिस पर विश्वास न हो, उस पर तो विश्वास करना ही नहीं चाहिए, किन्तु जिस पर विश्वास हो, उस पर भी अति विश्वास नहीं करना चाहिए, अन्यथा यदि उसने धोखा दे दिया तो जड़ से ही नाश हो जाता है।

उन दोनों का झगड़ा देखकर श्री प्राणनाथ जी ने अपने मन में सोचा कि जिन पर मैं इतना विश्वास करता हूँ, यदि वही इस तरह धोखा देने की भावना रखते हैं, तो जागनी कार्य कैसे बढ़ेगा?

इस तरह चिन्तन करते हुए श्री जी के मुखारविन्द पर इतना तेज छा गया, जैसे बिजली चमक रही हो। उस समय किसी के भी पास इतना सामर्थ्य नहीं था कि वह श्री जी के मुख की तरफ देख पाता।

थोड़ी देर के पश्चात् श्री जी की गम्भीर और ओजस्वी वाणी सुनायी पड़ी- "लालदास! मैं तुम्हें सभी धर्मग्रन्थों के भेद स्पष्ट करने की शोभा देता हूँ। भीम भाई तथा मुकन्द दास! तुम दोनों उदयपुर चले जाओ। मैं तुम्हें जाग्रत बुद्धि तथा श्रीमुखवाणी के गुह्य रहस्यों को खोलने की शोभा देता हूँ। गोवर्धन भट्ट! तुम सूरत चले जाओ। वहाँ महन्त बनकर आराम से रहना। शेख बदल! तुम्हारे साथ हुक्म की शक्ति रहेगी। मैं अब अनूपशहर जा रहा हूँ। तुम लोगों के भरोसे जागनी कार्य नहीं हो सकता।"

सभी सिर नीचा किए सुनते रहे। किसी में भी बोलने का साहस नहीं था।

उस समय आषाढ़ का महीना था। तेज मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उसी समय श्री प्राणनाथ जी ऊँटगाड़ी पर बैठकर प्रातःकाल ही अनूपशहर के लिये प्रस्थान कर



दिये।

मार्ग में श्री जी को बार-बार पतले दस्त होने लगे। शरीर की स्थिति बहुत बिगड़ने लगी। माणिक भाई ने औषधि दी, किन्तु कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। श्री जी के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को देखकर श्री लालदास जी की धर्मपत्नी लाल बाई रोने लगी।

श्री प्राणनाथ जी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—  
"अभी इस तन से लीला होनी बाकी है। तुम जरा भी चिन्ता न करो।"

जैसे ही श्री प्राणनाथ जी अनूपशहर पहुँचे, परब्रह्म के जोश-आवेश से ब्रह्मवाणी का अवतरण प्रारम्भ हो गया।

कुरआन के तीस पारों के वास्तविक रहस्य सनन्ध ग्रन्थ के ३० प्रकरणों में उतरे। इसमें कलश के १२

प्रकरणों के भी भाव जुड़ गये, ताकि हिन्दू-मुस्लिम सबको एक सत्य की पहचान करायी जा सके।

इस सनन्ध ग्रन्थ के अवतरण से कुरआन का वास्तविक ज्ञान हिन्दुस्तानी भाषा में उपलब्ध हो गया, जिससे सुन्दरसाथ की भी भ्रान्तियाँ मिट गयीं, तथा जागनी कार्य को एक नई दिशा मिली।

अनूपशहर में श्री प्राणनाथ जी ने शेख बदल को बुलाकर कहा- "शेख बदल! यह जो सनन्ध ग्रन्थ है, इसे किसी भी तरह यदि औरंगज़ेब को सुना दिया जाये, तो निश्चित ही उसकी आत्मा जाग्रत हो जायेगी, क्योंकि इसमें कुरआन के अनसुलझे रहस्यों को बहुत सरल तरीके से समझाया गया है, तथा इस्लाम के शरियत पक्ष को हटाकर सबके कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत किया गया है।"

"जो आज्ञा धाम धनी", कहकर शेख बदल विदा हुए। उनके सिर पर सनन्ध की वाणी थी तथा दिल में औरंगज़ेब को पैगाम देने की उमंग।

शेख बदल ने शुक्रवार के दिन ईदगाह में जाकर उच्च स्वर से सनन्ध की वाणी का गायन प्रारम्भ किया।

लोगों ने सावधानी से उसे सुना तो जरूर, लेकिन सबकी जुबान पर यही शब्द थे- "बातें तो ये बिल्कुल सच हैं, किन्तु हिन्दुस्तानी भाषा में होने के कारण हमें स्वीकार नहीं, क्योंकि शरियत हमें इसकी जरा भी इजाजत नहीं देती।"

शेख बदल को ये शब्द सुनकर ऐसा लगा, जैसे किसी ने उन्हें अन्दर ही अन्दर झकझोर दिया हो। उन्होंने अपने मन में सोचा कि क्या इनके लिये शरियत

अल्लाहतआला से भी बढ़कर है? क्या खुदा और उसका धर्म कुछ विशेष भाषा और विशेष वर्ग की दीवारों में कैद रहता है? यदि इन्हें अक्षरातीत की वाणी पर भी इसलिये विश्वास नहीं आ रहा है कि यह हिन्दुस्तानी भाषा में है, तो इनकी सज्जुचित बुद्धि पर मुझे तरस आ रहा है।

यह महत्वपूर्ण बात है कि सूर्य की धूप केवल बर्फ को ही पिघला सकती है, काले पत्थरों को नहीं। काले पत्थर तो धूप से और अधिक काले हो जाते हैं।

दो-चार दिन के पश्चात् श्री प्राणनाथ जी अनूपशहर से दिल्ली आ गये। शेख बदल को बुलाकर उन्होंने सारा वृत्तान्त पूछा।

शेख बदल ने कहा- "धाम धनी! मैंने ईदगाह में जाकर सबको सनन्ध की वाणी सुनायी, लेकिन इन

लोगों के अन्दर कुफ्र है। इनको अल्लाह तआला से कुछ भी लेना-देना नहीं है। ये मात्र नाम के ही मुसलमान हैं। ये हिन्दी भाषा में कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हैं।"

पुनः श्री जी ने लालदास जी तथा गोवर्धन भट्ट जी से कहा— "तुम दोनों शेख सुलेमान से जाकर बातचीत करो।"

वे दोनों शेख सुलेमान के पास गये और सारी बातें की, लेकिन उसके मन में खोट था। वह तरह-तरह के बहाने बनाता। कभी कहता कि आप लोग धोती पहनते हैं। बादशाह इस तरह के हिन्दू वेश धारण करने वालों से बात ही नहीं करते। कभी कहता कि आज मिलाऊँगा, कभी कहता कि कल। इस तरह टालमटोल की नीति अपनाते हुए उसने दो माह बेकार करवा दिये।

जब यह स्पष्ट हो गया कि शेख सुलेमान औरंगज़ेब से मिलवाना ही नहीं चाहता, तो सुन्दरसाथ सहित श्री प्राणनाथ जी लाल दरवाजा छोड़कर सराय रोहिल्ला खान मुहल्ले में आ गये।

वहाँ सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि कुरआन की वास्तविकता को फारसी भाषा में लिखा जाये। तब दयाराम जी के माध्यम से मुल्ला कायम को बुलाया गया। श्री जी के निर्देशन में शेख जी तथा मीर जी की वार्ता लिखी गयी, जिसमें कुरआन के वास्तविक सत्य को उजागर किया गया था।

उसकी जिल्दें बनाकर औरंगज़ेब के सभी नजदीकी लोगों तक पहुँचायी गयीं, लेकिन शरियत की दीवारों से अपना सिर टकराने वाले भला सत्य को क्यों स्वीकार करते?

## (२३)

औरंगज़ेब बादशाह के पीर (गुरु) का नाम था शेख निजाम। सुन्दरसाथ कई दिनों तक उसके यहाँ गये। लेकिन न तो उसमें उच्च आध्यात्मिक भावना थी और न उसने इस कार्य में कोई रुचि ही ली।

चाँदनी चौक में सूरत का एक सौदागर रहा करता था। वह एक दिन श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करने आया। दर्शन उपरान्त उसने बताया कि उसके पास दज्जालनामा नामक एक ग्रन्थ है।

उसे लेने के लिये लालदास जी प्रतिदिन एक बार उसके निवास पर जाते। वह इधर-उधर की बातें करता तथा कल देने का वायदा करके टालमटोल कर देता था। आखिरकार, उसने देने से स्पष्ट मना ही कर दिया ,

लेकिन तफसीर-ए-हुसैनी का जिक्र किया।

लालदास जी ने पूछा कि उसमें क्या वर्णन है? उस व्यापारी ने उत्तर दिया कि कुरान का फारसी भाषा में अनुवाद है। जब यह बात लालदास जी ने श्री जी को बतायी, तो श्री जी का आदेश हुआ- "लालदास जी! जैसे भी हो, उस तफसीर-ए-हुसैनी को लाओ।"

लालदास जी उसके यहाँ चार बार गये, किन्तु वह हमेशा ही कोई न कोई बहाना बना देता था। अन्त में लालदास जी ने निराश होकर कह दिया- "धाम धनी! वह देना ही नहीं चाहता है। इसलिये मेरे प्रतिदिन जाने पर वह कोई न कोई नया बहाना गढ़ लेता है।"

**झूठी बहानेबाजी अधर्म है। शालीन भाषा में कही हुई स्पष्टवादिता ही कल्याणकारिणी होती है।**



दयाराम जी वहीं पर बैठे थे। वे दिल्ली के चप्पे-चप्पे से परिचित थे। उन्होंने श्री जी से विनती की- "यह सेवा मुझे दी जाये। मैं यहाँ के लोगों की मानसिकता से परिचित हूँ। आपकी कृपा से यह कार्य बहुत आसानी से हो जायेगा।"

श्री जी ने कहा- "तफ्सीर-ए-हुसैनी की मुझे बहुत चाहत है। तुम उसे शीघ्र लाओ।"

"जो आज्ञा" कहकर दयाराम जी चल पड़े। दयाराम जी व्यापारी थे। उनका व्यापार बाहर के मुसलमानों से भी हुआ करता था। उर्दू बाजार में जहाँ तफ्सीर-ए-हुसैनी बिकती थी, वे वहाँ पहुँचे।

दिल्ली से बाहर के एक मुसलमान व्यापारी का नाम लेते हुए उन्होंने पुस्तक विक्रेता से कहा- "उस व्यापारी

का पत्र आया था। उन्हें तपसीर -ए-हुसैनी चाहिए।  
उनको बहुत सख्त जरूरत है, अतः उन्होंने मुझसे ही  
मँगवाई है।"

दुकानदार ने कहा- "चालीस रुपये लगेंगे।"

दयाराम बोले- "कुछ छूट दीजिए।"

आखिर में कुल ३८ रुपये में उसने दे दिया। राह में  
चलते हुए दयाराम जी सोच रहे थे कि तपसीर -ए-  
हुसैनी को प्राप्त करने के लिए मुझे सत्य की मर्यादा का  
उल्लंघन करना पड़ा। किन्तु, यदि मैं ऐसा न करता तो मेरे  
इस हिन्दू वेश में होने के कारण किसी भी स्थिति में यह  
ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। धर्म रक्षार्थ निष्काम भाव से किये  
गए इस कार्य पर उन्हें सन्तोष था।

दयाराम जी ने श्री जी के कर कमलों में तपसीर -ए-

हुसैनी सौंप दी। श्री जी उसे देखकर बहुत खुश हुए। अब मुल्ला कायमुल्लाह ने तफसीर-ए-हुसैनी को पढ़ना शुरू किया। जब तीसवें पारे की "इन्ना इन्जुलना" सूरत पढ़ी, तो व्रज, रास, तथा जागनी ब्रह्माण्ड की साक्षी मिली। जब "इन्ना आतेना" सूरत पढ़ी, तो परमधाम की यमुना तथा हौजकौशर (मदीयं सरः) का वर्णन मिला, जिसे सुनकर श्री जी इतने खुश हुए कि तीन दिन तक लगातार सुनते ही रहे। कुरआन में परमधाम के सांकेतिक वर्णन की बात पत्रों द्वारा चारों ओर भिजवा दी गयी।

बिहारी जी तक तो यह सूचना पहुँच ही गयी थी कि हरिद्वार के महाकुम्भ में श्री प्राणनाथ जी को सभी आचार्यों ने "श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप" मानकर उनकी आरती उतारी तथा अब बुद्ध जी का शाका भी प्रारम्भ हो गया है।

उन्होंने सोचा कि मैंने जिस मिहिरराज को समाज से बहिष्कृत किया, वे आज संसार में पूजित हो रहे हैं तथा मैं गद्दी पर बैठकर एक सीमित दायरे में ही रह गया। श्री मिहिरराज, इस समय जो इतनी ऊँचाई पर पहुँचे हैं, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के ही आशीर्वाद से तो। मैं उनकी गद्दी पर बैठा हूँ, लेकिन वे मेरा हुक्म न मानकर स्वयं को ही बड़ा बनाते जा रहे हैं। ऐसा कब तक चलेगा? मिहिरराज से विरोध लेने में कोई लाभ तो है नहीं? स्थान का खर्च चलाने के लिये भी धनाभाव है? ऐसी स्थिति में यदि उनसे मेल कर लिया जाये तथा समझा-बुझा कर गादी के अधीन रहकर जागनी करने के लिये कहा जाये, तो एक ही तीर से दो निशाने सध जायेंगे। एक तो मैं बड़ा बना रहूँगा तथा दूसरा, धन की भी कमी नहीं आयेगी।

मनुष्य को मात्र धर्मनिष्ठ होना चाहिए। धर्म को तिलांजलि देकर व्यक्तिनिष्ठ या स्थाननिष्ठ होना स्वयं को पतन के मार्ग पर उन्मुख करना होता है।

मन में यही भावना रखकर श्री जी को समझाने के उद्देश्य से नवतनपुरी से प्रेमदास, नागजी, तथा संगजी आए। दिल्ली में सराय रोहिल्ला खान में हवेली में आकर श्री जी से उन्होंने मिलाप किया।

श्री जी से भेंट के पश्चात् उन्होंने बातचीत प्रारम्भ की। उनके मन में यह अभिमान था कि हम श्री मिहिरराज जी के गुरु स्थान से आये हैं, इसलिये हम सबके पूज्य हैं। श्री जी से बात करते-करते वे जोश में कहने लगे—

"मिहिरराज! आप भी तो यह मानते ही हैं कि सद्गुरु

धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर अक्षरातीत ने लीला की है। आपके पास जो ज्ञान का भण्डार है, वह सद्गुरु महाराज की कृपा से ही तो है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की गादी पर इस समय श्री बिहारी जी महाराज विराजमान हैं, जो उन्हीं के स्वरूप माने जायेंगे। आपको श्री बिहारी जी महाराज की छत्रछाया में रहकर ही जागनी कार्य करना चाहिए, ताकि गादी-स्थान की महिमा बढ़ती रहे।"

उस समय श्री प्राणनाथ जी चुपचाप सुनते रहे। जब चर्चा का समय आया, तो उनके मुखारविन्द से अमृत की रसधारा बहने लगी—

"जो कुछ वेदों में कहा गया है, वही भाषा-भेद से कतेब ग्रन्थों में भी है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तारतम्य ज्ञान से जिस सत्य को दर्शाया है, मुहम्मद

साहब के कथनों का तात्पर्य भी उसी सत्य से है।  
अज्ञानतावश ही संसार के लोग लड़-झगड़ रहे हैं।"

सुन्दरसाथ सहित प्रेमजी, नागजी, और संगजी मन्त्र-मुग्ध होकर चर्चा सुन रहे थे। अचानक एक विचित्र दृश्य दिखायी दिया। प्रेमजी, नागजी, तथा संगजी ने देखा कि आसन पर श्री जी तो हैं ही नहीं, उनकी जगह सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी बैठे हैं।

उन्होंने अपनी आँखें मलीं। कहीं हम लोग नींद में इस तरह का कोई सपना तो नहीं देख रहे हैं।

पुनः उन्होंने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को ही देखा। पुनः आँखें मलीं। तीनों ने एक-दूसरे को देखा और आपस में फुसफुसा कर बोले - "देख रहे हो न। आसन पर तो साक्षात् सद्गुरु श्री निजानन्द स्वामी ही

दिखायी दे रहे हैं। तीनों भौंचक्के होकर श्री निजानन्द स्वामी का दर्शन करते रहे।"

अब चर्चा समाप्त हो गयी थी। आसन पर उन तीनों को केवल श्री जी ही दिखायी पड़ रहे थे। ऐसा लगता था कि श्री निजानन्द स्वामी अदृश्य हो गये हैं और मिहिरराज के अन्दर विराजमान हो गये हैं।

तीनों उठे और श्री जी के चरणों में नतमस्तक हो गये तथा बोले- "हमने अपनी आँखों से आपके हृदय में विराजमान श्री निजानन्द स्वामी का दर्शन किया है। अब हम सभी सुन्दरसाथ को पत्रों द्वारा बतायेंगे कि अब तक हम भूल में थे जो गादी को ही सब कुछ मानते रहे। श्री निजानन्द स्वामी तो आपके अन्दर ही विराजमान हैं।"

श्री जी के सान्निध्य में २२ दिन रहने के पश्चात्



नागजी तथा संगजी तो नवतनपुरी के लिये प्रस्थान कर दिये, किन्तु प्रेम दास जी श्री जी की सेवा में ही रह गये। भला, श्री जी के स्वरूप की पहचान होने के पश्चात् प्रेम जी अलग क्यों होते? दिल्ली से चलने से पूर्व उन्होंने पत्रों द्वारा सब सुन्दरसाथ को यह सूचित कर दिया था कि श्री निजानन्द स्वामी श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में विराजमान हैं। नागजी तथा संगजी को श्री जी ने बिहारी जी की सेवा हेतु काफी धन देकर विदा किया।

जब वे नवतनपुरी पहुँचे, तो बिहारी जी से मिले। प्रेमजी, नागजी, तथा संगजी इन तीनों ने ही श्री देवचन्द्र जी से तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया था, इसलिये वे पहले श्री जी के स्वरूप को पहचान नहीं सके थे, क्योंकि वे तो यही मानते थे कि हम सभी एक ही सद्गुरु के शिष्य हैं। गादी पर बैठे होने के कारण यद्यपि बिहारी जी को वे

पूज्य तो मानते थे, किन्तु व्यवहार मित्रवत् ही करते थे।

बिहारी जी के पास पहुँचकर वे बोले— "महाराज! हमारे दिल में श्री निजानन्द स्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी पर भी आस्था नहीं है। किन्तु, विचित्र बात यह है कि हमने चर्चा के समय श्री मिहिरराज की जगह पर श्री निजानन्द स्वामी को बैठे हुए देखा है।"

यह सुनते ही बिहारी जी महाराज तिलमिला उठे। उन्होंने नाराजगी भरे स्वर में पूछा — "जब तुम्हें मिहिरराज के अन्दर ही निजानन्द स्वामी के दर्शन होते हैं, तो इस गादी में क्या रखा है? इसका मतलब यह है कि मैं कुछ भी नहीं।"

दोनों ने घबराते हुए उत्तर दिया — "नहीं महाराज! हमारे कथन का यह आशय नहीं है कि आप कुछ भी

नहीं हैं। आप हमारे गुरुपुत्र हैं, अत्यन्त सम्माननीय हैं, किन्तु हमने अपनी आँखों से देखा है कि जब श्री मिहिरराज जी चर्चा करते हैं, तो उनकी जगह श्री निजानन्द स्वामी का स्वरूप दिखायी देता है। यह बात हम अपने सच्चे हृदय से कह रहे हैं।"

यह सुनते ही बिहारी जी महाराज गादी से उठ खड़े हुए और तमतमाते हुए बोले— "अब मेरी समझ में आ गया कि मुझे गादी पर बैठाकर केवल नाम मात्र का ही धाम धनी बनाया गया। तुम सबकी श्रद्धा तो मिहिरराज पर है, फिर मेरे यहाँ रहने से क्या लाभ?"

यह कहकर वे तेज कदमों से चल पड़े। नागजी और संगजी के अतिरिक्त कुछ अन्य सुन्दरसाथ भी वहाँ थे। सभी सुन्दरसाथ बिहारी जी को मनाने के लिये उनके पीछे-पीछे भागे। कुछ दूर जाने पर उन्होंने बिहारी जी के

कदमों में अपना सिर रख दिया और प्रार्थना करने लगे –  
"हे धाम धनी! हमें छोड़कर मत जाइए। चलकर गादी पर  
विराजमान होइए।"

बिहारी जी महाराज बरस पड़े – "तुम्हारे अक्षरातीत  
तो मिहिरराज हैं। उन्हें ही लाकर बैठाओ। मेरा – तुम्हारा  
कोई भी रिश्ता नहीं है।"

रुखे दिल वाले बिहारी जी जरा भी नहीं पिघले। तब  
नागजी और संगजी ने उनके पाँव पकड़कर कहा – "हे  
धाम धनी! ये बातें भूलवश हमने कह दी थीं। हमें क्षमा  
किया जाये। आपके सिवाय भला दूसरा अक्षरातीत कौन  
हो सकता है? एक तो आप गादी पर विराजमान हैं,  
दूसरे सद्गुरु महाराज के सुपुत्र भी हैं। भला आपके सामने  
मिहिरराज कहाँ ठहरेंगे?"

सबकी बातों को अनसुना करते हुए बिहारी जी आगे चलते गये और एक उपयुक्त स्थान देखकर ठहर गये। तीन दिन तक वहीं रहे। सारा सुन्दरसाथ उनके इस व्यवहार से बहुत ही दुःखी था। सबने कातर स्वर में तीन दिनों तक उनसे प्रार्थना की। तब कहीं जाकर पत्थर की वह प्रतिमा थोड़ी सी पिघली और गादी पर पुनः बैठना स्वीकार किया।

नागजी और संगजी ने पुनः सबके पास पत्र लिखा कि हमारे पूर्व पत्रों पर ध्यान न देकर इस पत्र को ही प्रामाणिक मानिएगा। श्री निजानन्द स्वामी गादीपति बिहारी जी महाराज के ही अन्दर विराजमान हैं। श्री जी पर ईमान लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

## (२४)

सराय रोहिल्ला खान की हवेली में इस विषय पर गहन मन्त्रणा की गयी कि औरंगज़ेब तक पैगाम पहुँचाने के लिये अब क्या करना चाहिए?

औरंगज़ेब के दरबारी रिजवी खान के यहाँ दस-बीस दिन तक गये। उससे कुरआन सम्बन्धी काफी बातें भी की, लेकिन उस पर कोई असर नहीं पड़ा।

औरंगज़ेब के पीर (गुरु) शेख निजाम के यहाँ पर एक माह तक सुन्दरसाथ जाकर सत्संग करते रहे, लेकिन चिकने घड़े की तरह उस पर भी कोई असर नहीं हुआ। शेख वाजिद नामक एक फकीर के यहाँ भी दस बार जाकर कियामत की बातें सुनायीं, लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात।

इसी प्रकार औरंगज़ेब के हिन्दू दरबारी सागर मल्ल के यहाँ भी दस बार गये। उसे धर्म रक्षा हेतु प्रेरित करने का प्रयास किया गया, किन्तु सफलता नहीं मिली।

इसी प्रकार दिल्ली दरबार के अनेक प्रभावशाली लोगों के यहाँ सुन्दरसाथ गये, ताकि किसी भी तरह अध्यात्म के वास्तविक सत्य को उजागर करके संसार की कटुता को दूर किया जा सके। लेकिन इस मायावी जगत में सत्य की आवाज को सुनने वाले कम ही होते हैं।

लक्ष्मी की सवारी उल्लू कही जाती है। जिस प्रकार उल्लू या चमगादड़ को दिन में दिखायी नहीं देता है, उसी प्रकार धन से मतवाले और भोग-विलास में फँसे हुए मनुष्यों को सत्य की ज्योति या तो दिखायी ही नहीं पड़ती या बहुत ही कम दिखाई पड़ती है।

बातचीत के माध्यम से कार्य में असफलता देखकर यह निर्णय लिया गया कि अब नलुआ (पत्र) लिखकर भेजा जाये, तभी पैगाम पहुँचाया जा सकता है।

सराय रोहिल्ला खान में सुन्दरसाथ सहित श्री जी चार माह रह चुके थे। इसके पश्चात् चाँदनी चौक में आकर दुलीचन्द की हवेली में ठहरे। उन्हें कुरआन की चर्चा करते हुए देखकर आसपास के हिन्दुओं ने शोर मचाना शुरू कर दिया। सबने यह कहना शुरू कर दिया कि ये लोग वेश-भूषा से तो हिन्दू हैं, किन्तु कुरआन की चर्चा करते हैं। इनको अपनी हवेली में नहीं ठहरने देना चाहिए, नहीं तो हम सब धर्मभ्रष्ट हो जायेंगे।

धर्म और अध्यात्म के मूल तत्व से कोसों दूर कर्मकाण्डियों के लिये छूतछात ही धर्म है। इनके लिये अध्यात्म के चरम लक्ष्य तक पहुँचना खरगोश के सींग



## और आकाश के फूल की तरह दुर्लभ है।

तब सब सुन्दरसाथ ने उस हवेली को छोड़ दिया और एक एकान्त स्थान पर बैठकर पाँच पत्र तैयार किये। इन पत्रों में कुरआन-हदीसों की साक्षी देकर कियामत के सातों निशानों के प्रकट होने की बात की गयी थी। उनमें लिखा था—

"कियामत के सात निशानों में एक है— दाभतुलअर्ज जानवर का प्रकट होना। प्रकृति के नियम के विरुद्ध ऐसा कोई जानवर नहीं पैदा होगा, जिसकी आँखे सुअर की हों, कान हाथी के हों, छाती शेर की हो, पीठ गीदड़ की हो, तथा सिर पर पहाड़ी बैल के सींग हों। वस्तुतः मनुष्य की प्रवृत्ति में पशुओं के लक्षणों का आ जाना ही दाभतुलअर्ज जानवर का प्रकट होना है। सुअर की तरह कुदृष्टि, हाथी की तरह बुरी बातों को सुनना, शेर की

भांति कठोर हृदय वाला होना, गीदड़ की तरह धर्म से दूर रहना, तथा पहाड़ी बैल की तरह झगड़ते रहना ही दाभतुलअर्ज जानवर के प्रकट होने की निशानी है।

"दूसरा निशान है— सूर्य का पश्चिम (मगरब) में उगना। सूर्य तो पूर्व में ही उगता है, कभी भी पश्चिम में नहीं, किन्तु परमधाम के ज्ञान का सूर्य सबसे पहले अरब में उगा। उसके विपरीत अर्थात् भारतवर्ष में हिन्दू तन में परब्रह्म की शक्ति का प्रकट होकर परमधाम का ज्ञान देना यह सिद्ध करता है कि अब सूर्य पश्चिम (भारत में) उगा हुआ है। मुसलमानों के लिये अन्धेरा होने का तात्पर्य यह है कि हिन्दू तन में प्रकट होने वाले परब्रह्म (इमाम साहिबुज्जमां) को मुसलमान नहीं पहचान पायेंगे तथा उन पर ईमान भी नहीं लायेंगे।

"तीसरा निशान है— काने दज्जाल का गधे पर सवार

होना। कहा जाता है कि दज्जाल का गधा इतना बड़ा है कि सातों समुद्रों का जल उसकी जाँघों के ही बराबर आता है। यदि इतने बड़े गधे पर बैठा हुआ दज्जाल गिर पड़े, तो दुनिया का क्या हाल होगा? वस्तुतः मोह सागर (महाशून्य) ही गधा है, जिस पर विराजमान अजाजील है। जीव सृष्टि के दिलों पर इबलीश की हुकूमत है। उसकी केवल बाहर की आँखें ही खुली हैं। आत्म-दृष्टि न होने के कारण उसे काना कहा गया है। इमाम मुहम्मद महदी (प्राणनाथ जी) के प्रकट हो जाने पर भी आत्मिक दृष्टि न होने से कुन्न की पैदाइश वाले संसारी जीव उनकी पहचान नहीं कर सकेंगे।

"चौथा निशान है— आजूज—माजूज का प्रकट होना। भला नूह पैगम्बर के पोते और याफिस के बेटे मनुष्य के नश्वर तन को क्यों खायेंगे? मनुष्य की उम्र चार लाख

श्वासों वाली कही गयी है। इसी को चार लाख कौमें कहा गया है। इनकी तीन फौजे हैं— प्रातः, दोपहर, और सायंकाल। आजूज कहते हैं दिन को तथा माजूज कहते हैं रात्रि को। आजूज को सौ गज का इसलिये कहते हैं कि दिन में मनुष्य की इच्छायें सौ तरफ भागती हैं। माजूज को एक गज का इसलिये कहते हैं क्योंकि रात्रि में सोते समय मनुष्य की वृत्तियाँ एक तरफ ही रहती हैं। अष्ट धातुओं का बना हुआ यह शरीर है, जिसकी उम्र को दीवार कहा गया है। इसे ही दिन-रात मिलकर समाप्त कर देते हैं।

"ईसा रूह अल्लाह, इस्राफील, तथा जिबरील का आगमन भी कियामत के सात निशानों में है। ग्यारहवीं सदी में कियामत का सही समय निश्चित होता है, क्योंकि कुरआन में 'कल' को कियामत होना लिखा है। दुनिया

के हजार साल खुदा के एक दिन के बराबर हैं तथा दुनिया के सौ साल खुदा की एक रात्रि के बराबर हैं।

"जो कुरआन के इन वचनों को स्वीकार नहीं करेगा, वह काफिर है और कजा के दिन उसे दोजख की अग्नि में जलना पड़ेगा। हमने पैगाम पहुँचाने का अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया।"

इन पाँच पत्रों को कान्हजी भाई के माध्यम से पाँच विशिष्ट व्यक्तियों के पास पहुँचाया गया। पत्र में "सैयद मुहम्मद इब्न इस्लाम" नाम से हस्ताक्षर भी थे। इस नाम का अर्थ होता है— इस्लाम का प्रवर्तक।

कान्हजी भाई सबसे पहले सबसे बड़े काजी शेख इस्लाम के पास पहुँचे।

काजी ने पूछा— "इस पत्र को भेजने वाला फकीर

कहाँ है तथा तुम कौन हो?"

"हुजूर! मैं तो अपना पेट भरने के लिये सेवा करता हूँ। जो भी मुझे धन देता है, मैं उसका काम कर देता हूँ। मुझे उस फकीर के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं है। बस वह पहाड़ पर थोड़ी देर के लिये मिला था। इसके बाद वह लुप्त हो गया। मुझे नहीं मालूम कि वह स्थाई रूप से कहाँ रहता है?"

"क्या इस तरह का पत्र केवल मेरे ही लिये है या औरों के भी लिये?"

"नहीं! चार अभी और हैं। शेख निजाम, आकिल खान, रिजवी खान, और सिद्दीक फौलाद के नाम से पत्र हैं।"

"ठीक है। उनको जाकर पत्र दे देना तथा वे क्या

जवाब देते हैं, यह भी लाकर मुझे अवश्य दिखाना।"

कान्हजी भाई वहाँ से चलकर धर्मगुरु शेख निजाम के यहाँ पहुँचे। उन्होंने निजाम को पत्र दिया।

शेख निजाम ने पूछा— "कियामत का प्रसंग लिखकर तुम्हें मेरे पास किसने भेजा है?"

"जी, साहिब! सैयद मुहम्मद इब्न इस्लाम नामक एक फकीर ने यह पत्र भेजा है। वह पहाड़ पर एक एकान्त स्थान में रहता है।"

"क्या इस प्रकार के पत्र और भी किसी के नाम से हैं या केवल मेरे लिये ही यह पत्र है?"

"पाँच व्यक्तियों के नाम से यही पत्र हैं। काजी शेख इस्लाम साहिब को देकर आ ही रहा हूँ। इसके अतिरिक्त आकिल खान, रिजवी खान, और सिद्दीक फौलाद के भी

नाम से पत्र हैं। अब मैं उनके यहाँ ही देने जा रहा हूँ।"

"ठीक है। उनको जल्दी दे आओ। फिर हम सभी मिलकर इसका उत्तर देंगे।"

कान्हजी भाई सबको तालीम देने वाले आकिल खान के यहाँ गये। आकिल खान को अपनी अक्ल का बहुत गुमान था। उसने पत्र को देखा और रूखे अन्दाज में बोला— "मैं यह नलुआ नहीं ले सकता।"

"क्यों हुजूर? यह तो मेरी रोजी-रोटी का सवाल है।"

"जब इस नलुए पर मेरा नाम ही नहीं है, तो क्यों लूँ?"

"हुजूर! ले लीजिए, भूल हो गयी।"

"आकिल खान को इस जहान में कोई भी धोखा



नहीं दे सकता। मैं तुम्हारे जाल में फँसने वाला नहीं हूँ।"

"मैं काजी शेख इस्लाम और धर्मगुरु शेख निजाम को देकर आ रहा हूँ। उन्होंने तो ले लिया। आप भी ले लीजिए।"

"मैं किसी की भी देखा-देखी नहीं करता। जब इस पर मेरा नाम नहीं है, तो लेने का प्रश्न ही नहीं है।"

"हुजूर! यदि नहीं लेना है, तो एक बार पढ़ ही लीजिए।"

"तुम मुझे सिखापन देने की हिमाकत क्यों कर रहे हो? मेरे पास इन फालतू कामों के लिये समय ही नहीं है। तुम मेहरबानी करके यहाँ से चले जाओ।"

अब कान्हजी भाई के पास वहाँ से चले जाने के सिवाय कोई भी चारा नहीं था।

रिज़वी खान औरंगज़ेब के दीवान और प्रमुख सलाहकार थे। कान्हजी भाई ने उन्हें भी पत्र दिया।

रिज़वी खान ने पूछा— "तुम अभी तक कितनों को ये नलुए देकर आए हो और अभी तुम्हारे पास कितने नलुए हैं?"

"आपको लेकर चार व्यक्तियों के पास मैं पत्र पहुँचा चुका हूँ। केवल सिद्दीक फौलाद का ही बाकी है। अब मैं वहीं पर जा रहा हूँ।"

"ठीक है, तुम उनके पास भी पहुँचा आओ। खुदा की जैसी मर्जी होगी, वैसा ही मैं जवाब दूँगा।"

वहाँ से चलकर कान्हजी भाई सिद्दीक फौलाद के यहाँ पहुँचे। सिद्दीक फौलाद का व्यक्तित्व बहुत ही खुँखार था। उसने दरबार-ए-हाल में छत्रपति शिवाजी जैसी

महान शख्सियत को भी कैद करने में सफलता प्राप्त की थी। सिद्धीक फौलाद दिल्ली का सबसे बड़ा कोतवाल था। कान्हजी भाई ने उसे पत्र दिया और कहा—

"मैं आपके अतिरिक्त अन्य चार व्यक्तियों के पास इन नलुओं को पहुँचा आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप इनका शीघ्र उत्तर दीजिए।"

सिद्धीक फौलाद बोला— "पहले औरों से जबाब ले आओ, तब मैं दूँगा।"

कान्हजी भाई वहाँ से चल पड़े। थोड़ी दूर पर उन्हें वे सुन्दरसाथ भी मिल गये, जो उनकी देखरेख के लिये कुछ दूरी पर रहा करते थे। सभी मिलकर श्री जी के पास दौड़े हुए आए और उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

अगले दिन प्रातःकाल कान्हजी भाई उन पाँचों के

पास गये, किन्तु किसी ने भी लिखकर उत्तर नहीं दिया। सभी का यही कहना था कि पहले वे चार उत्तर दें, तो मैं भी दूँगा।

इस तरह से सभी के यहाँ लगभग पन्द्रह दिनों तक कान्हजी भाई फेरी लगाते रहे, लेकिन किसी को भी खुदा की बातों पर यकीन नहीं था। वे केवल नाम के ही मुसलमान थे।

शेख निज़ाम के पास जाकर कान्हजी भाई ने कहा— "आप उस फकीर के नलुए का जवाब दीजिए। उन्होंने मँगवाया है।"

शेख निज़ाम का उत्तर था— "यह काम इतनी जल्दी का नहीं है। उस फकीर ने तो कियामत आने की बात करके स्वयं को ही इमाम महदी के रूप में घोषित किया

है। पूर्ण रूप से इस काम को केवल बादशाह ही कर सकते हैं। हम सभी मिलजुल कर ही इसका उत्तर दे पायेंगे। तुम इतनी जल्दी न मचाओ।"

इसके पश्चात् कान्हजी भाई काज़ी शेख इस्लाम के यहाँ गये और उनसे जबाब माँगा।

काज़ी ने उत्तर दिया— "यह काम जब अकेले मेरे वश का नहीं है, तो मैं अकेले ही कैसे उत्तर दे सकता हूँ? कियामत के दावे को तुम छोटी बात समझते हो। जब मैं तुम्हारे लाये हुए पत्र को पढ़ते-पढ़ते थक गया, तो चुपचाप रख दिया। तुम फकीर को यह बता देना कि हम पाँचों इकट्ठे होकर ही उत्तर दे पायेंगे।"

काज़ी से इस प्रकार का उत्तर पाकर कान्हजी भाई सिद्दीक फौलाद के यहाँ गये और बोले— "कोतवाल

साहब! आपने मुझे अब तक जवाब नहीं दिया। उधर फकीर का कहना है कि जब तक तुम जवाब नहीं लाओगे, तब तक तुम्हारे काम का पैसा नहीं मिलेगा। अब आप ही बताइए, मेरा गुजारा कैसे होगा?"

"यह कार्य काजी-मुल्लाओं का है। मुझे कुरआन की कोई भी जानकारी नहीं है। भला मैं क्या जानूँ कि कियामत क्या बला होती है?"

"आपसे गुजारिश है कि आप केवल बादशाह को सूचना ही दे दीजिए कि आपके पास कहीं से किसी फकीर ने पत्र भेजा है। वह आपसे नलुए को मँगवाकर उत्तर दे देंगे।"

"बादशाह के सामने जबान चलाने की मेरी हिम्मत नहीं है। यदि भूलवश कोई ऐसी बात मेरे मुख से निकल

जाये, जो कुरआन के विरुद्ध हो, तो उसका अन्जाम क्या होगा, यह सोचकर ही मेरी रूह काँपती है?"

वहाँ से कान्हजी भाई रिज़वी खान के पास गये और गुहार लगायी- "दीवान साहब! मैं आपके लिये कियामत और इमाम के प्रकटन की खुशी का पैगाम लेकर आया हूँ। आपको तो खुशियाँ मनानी चाहिए। फकीर के पत्र का उत्तर कब मिलेगा?"

"तुमने खुशी का नहीं, बल्कि मौत का पैगाम दिया है। कियामत का मतलब ही होता है, सारी दुनिया का फना हो जाना। इससे तो घर, पत्नी, और बच्चों का सारा सुख ही छूट जायेगा। तुम्हारे इस गुनाह के लिये तो तुम्हें मार ही डालना चाहिए।"

"हुजूर! इसमें मेरा कोई भी कसूर नहीं है। यह

नलुआ तो उस फकीर का भेजा हुआ है। मुझे तो केवल अपने मेहनताने के पैसे से मतलब है। आप कुछ भी दो शब्द लिख दीजिए, ताकि मैं अपने पैसे तो पा लूँ।"

"यह अकेले मेरा काम नहीं है। हम पाँचों मिलकर ही इसका उत्तर दे पायेंगे।"

राह में चलते हुए कान्हजी भाई सोचते चले जा रहे थे कि ये कैसे मुसलमान हैं, जो इतने बड़े पद पर बैठे हैं, लेकिन कियामत का सही अर्थ तक नहीं जानते?

यह कहावत पूर्णतया सच है कि ऊँची दुकान फीका पकवान। श्री जी के चरणों में आकर उन्होंने सारा वृत्तान्त सुना दिया।



## (२५)

सुन्दरसाथ कुछ दिनों तक रामचन्द्र वकील के यहाँ भी गये। उसे क्षर से परमधाम तक की बहुत चर्चा सुनायी, लेकिन उस पर जरा भी असर नहीं हुआ।

ब्रह्मज्ञान के लिये पात्रता का होना आवश्यक है। सिंहनी का दूध सोने के ही बर्तन में रखा जा सकता है, लोहे के बर्तन में नहीं।

गँगाराम जी के बड़े भाई उद्धव दास ने दो दिन तक श्री जी की सेवा की और इसी में अपने को कृतार्थ माना। सुन्दरी नामक एक सन्यासिनी ने भी अपने को मात्र दीदार तक ही सीमित रखा।

दो माह तक सुन्दरसाथ नलुओं द्वारा पैगाम पहुँचाने में लगे रहे, लेकिन इस कार्य में न तो किसी हिन्दू की

सहायता मिली और न मुसलमानों की।

तब सभी सुन्दरसाथ श्री जी से कुछ दूर एक बाग में बैठकर विचार करने लगे कि शरियत के इस राज्य में हमें कैसे औरंगज़ेब तक पैगाम पहुँचाना चाहिए?

उस सभा में सबको अपने विचार रखने की पूरी स्वतन्त्रता थी। अन्त में सर्वसम्मति से यही निर्णय लिया गया कि यदि औरंगज़ेब तक पैगाम पहुँचाने में हमें अपनी हिन्दू वेशभूषा भी बदलनी पड़े, तो इसमें डरने की कोई बात नहीं है। यदि इस कार्य में हमें मरना भी पड़े तो डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे असली तन तो परमधाम में हैं। वैसे भी औरंगज़ेब के अन्दर परमधाम की शाकुमार की आत्मा है, इसलिये वह हमें मरवाना तो नहीं चाहेगा।

इस प्रकार सभी सुन्दरसाथ सायंकाल अपने निवास पर आ गये तथा रात्रि को एकत्रित होकर जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर सनन्ध की वाणी गाने लगे। यह प्रतिदिन का कार्यक्रम सा बन गया।

जामा मस्जिद में घड़ियाल बजाने की सेवा नन्दराम जी किया करते थे। उन्होंने अपने पूरे परिवार सहित तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। वे हमेशा श्री जी की सेवा में अपने को धन्य-धन्य मानते थे।

नन्द लाल जी ने अपने भाइयों के साथ विचार-विमर्श किया। अन्त में यही निर्णय लिया गया कि रात्रि के समय गुसलखाने (स्नानघर) के दरवाजे पर रुक्का (पत्र) चिपका दिया जाये।

एक रुक्का तैयार किया गया, जिसमें लिखा था—

"जो भी सच्चा मुसलमान हो, उनके लिये यह सूचना है। पढ़कर अवश्य ही ईमान लाना।

"अर्श-ए-अजीम से रुह अल्लाह (श्यामा जी) ब्रह्मसृष्टियों के साथ आ चुके हैं। उनके साथ इस्राफील तथा जिबरील भी आये हैं। साथ में मुहम्मद साहिब भी हैं। खुदा ने कियामत के जिस समय इमाम महदी के रूप में प्रकट होने का वायदा किया था, वह समय आ चुका है। जिसे मुझसे मिलने की इच्छा हो, वह मिल लेवे। हम अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं। बाद में यह मत कहना कि हमें सूचना नहीं दी गयी। इस रुक्रे को पढ़े बिना जो नमाज के लिये अन्दर प्रवेश करेगा, उसे खुदा की लानत होगी।"

रात्रि के समय अपने काम पर तैनात नन्द लाल जी ने वह रुक़्का स्नानघर के दरवाजे पर चिपका दिया। बिना

हाथ-पैर धोए नमाज तो पढ़ी जा नहीं सकती थी, इसलिये प्रातःकाल की नमाज के समय से ही रुक़्के को पढ़ा जाने लगा। जो भी आता, पहले रुक़्का पढ़ता, बाद में नमाज। ऐसा करते-करते प्रातःकाल दरबार का समय हो गया।

इस रुक़्के की सूचना औरंगज़ेब बादशाह तक जा पहुँची। उसने रुक़्के को मँगवाकर स्वयं पढ़ा। पढ़ने के बाद उसे पता चल गया कि मुहम्मद इमाम महदी दिल्ली आ पहुँचे हैं।

इस तरह की सूचनाओं को देने का कार्य शेख सुलेमान का था। बादशाह शेख सुलेमान की हरकतों को समझ गया और गुस्से में बोला—

"शेख सुलेमान! तुम्हारा यही काम था कि जो भी

मुझसे मिलना चाहता हो, उसे मिलाना। इस रुक़्के के चिपकाने का यही अर्थ है कि वे लोग तुम्हारे घर बारम्बार भटके होंगे, तब निराश होकर उन्होंने रुक़्का चिपकाया होगा। तुम्हारे अन्दर अक्ल नाम की चीज नहीं है। अब तुम्हें शाही दरबार की सेवा से बर्खास्त किया जाता है।"

शेख सुलेमान की जगह पर धर्मगुरु शेख निज़ाम के बेटे अब्दुल्ला को नियुक्त किया गया। औरंगज़ेब ने यह ढिंढोरा फिराने का हुक्म दिया कि "रुक़्का चिपकाने वाला फरियादी मुझसे उस समय मिल सकता है, जब मैं जुम्मे की नमाज पढ़ने जामा मस्जिद जाऊँगा।"

किन्तु, औरंगज़ेब की इच्छा के विपरीत यह ढिंढोरा फिराया गया कि जिस किसी भी फरियादी की इच्छा हो, वह जुम्मे की नमाज के दिन बादशाह से मिल सकता है।

जुम्मे की नमाज पढ़कर जब बादशाह ने देखा कि ये तो सैकड़ों लोग न जाने कहाँ से चले आ रहे हैं, तो सोचा था कि फरियादी तो एक-दो ही होंगे। वह इस दृश्य को देखकर बहुत अचम्भित हुआ, लेकिन वास्तविकता को नहीं समझ सका कि ढिंढोरा ही गलत फिराया गया है।

अब्दुल्ला सबके रुक्रे लेकर इकट्ठा करता जा रहा था। जब लालदास जी ने अपना रुक्का दिया तो उसने पढ़कर समझ लिया कि ये वही हैं, जिन्होंने गुसलखाने पर चिपकवाया था। पढ़कर उसने रुक्रे को फाड़ डाला तथा अपनी जेब में डाल लिया।

लालदास जी तथा निर्मलदास जी बोलते ही रह गये— "हमारे लिये ही बादशाह प्रतीक्षा कर रहे हैं। गुसलखाने पर रुक्का चिपकाने वाले हम ही हैं। हमारा

रुक्का बादशाह तक तुमने क्यों नहीं पहुँचाया? लगता है, तुम्हें अपने गुनाहों के लिये खुदा से जरा भी डर नहीं है।"

नागफनी के खिले हुए सुन्दर फूलों को देखकर यह कभी भी नहीं सोचना चाहिए कि उसके काँटे समाप्त हो गये हैं।

लालदास तथा निर्मलदास जी की बातों से बेखबर अब्दुल्ला अपना काम करता रहा। उधर प्रतीक्षा करते-करते परेशान नजर आ रहे बादशाह ने अब्दुल्ला से कहा— "मुझे देर हो रही है। तुम सभी कागजात इकट्ठा करके लेते आना। अब मैं चल रहा हूँ।"

यह कहकर औरंगज़ेब ने घोड़े को एड़ लगायी। पल भर में ही घोड़ा हवा से बातें करने लगा। लालदास जी घोड़े के पीछे भागे, लेकिन उसका पीछा कहाँ तक कर



सकते थे। अन्त में निराश होकर लौट आये।

अब सुन्दरसाथ ने श्री जी के पास पत्र लिखा – "हे धाम धनी! हमने पैगाम पहुँचाने का सारा प्रयास कर लिया, किन्तु माया के वश में होने के कारण शरियत को मानने वाले लोग हमारी बात नहीं सुनते। आपके हुक्म से हम पैगाम को अवश्य पहुँचायेंगे। अब हमारे लिये 'करो या मरो' की स्थिति है। जब सर्वसमर्थ पूर्णब्रह्म के स्वरूप आप ही हमारे सिर पर हैं, तो हमें किसी भी बात की चिन्ता नहीं है।"

कान्हजी भाई ने वह पत्र श्री जी को दिया। श्री जी ने पत्रोत्तर में लिखा – "अभी तुम जल्दबाजी न करो। मेरे आए बिना इस दिशा में कुछ भी नहीं करना।"

पत्र के अनुसार सब सुन्दरसाथ श्री जी की प्रतीक्षा

करने लगे। दूसरे दिन श्री प्राणनाथ जी दिल्ली आ गये। चाँदनी चौक की हवेली में इस विषय पर विचार किया गया। श्री जी ने पूछा— "पैगाम पहुँचाने के लिये अब तुम क्या करना चाहते हो?"

सुन्दरसाथ ने जोश में उत्तर दिया— "हमें तो केवल आपके आदेश की ही प्रतीक्षा है। हमें अब किसी भी बात की कोई चिन्ता नहीं है। इस कार्य में हम तन—मन को न्योछावर करने के लिए तैयार हैं।"

पैगाम देने के लिये इनका जोश देखकर श्री प्राणनाथ जी बहुत प्रसन्न हुए। सुन्दरसाथ में से १२ सदस्य ऐसे चुने गये, जो सच्चे दिल से समर्पित थे। उन सभी ने मुसलमान फकीरों वाली वेश—भूषा भी पहन रखी थी। वे आपस में खूब हँस—हँसकर बातें कर रहे थे।

इन सुन्दरसाथ की इच्छा थी कि पैगाम देने के लिये जाने से पहले, वे श्री जी को अपने हाथों से बनाया हुआ भोजन करायें। श्री जी की स्वीकृति मिलने पर सबने खुश होकर भोजन कराया। धाम धनी श्री प्राणनाथ जी ने अति प्रसन्न होकर उनकी मंगल कामना की।

सुन्दरसाथ ने श्री जी से प्रार्थना की— "हे धाम धनी! अब आप किसी एकान्त स्थान में निवास करें। आपकी कृपा से हम औरंगज़ेब को पैगाम देने में अवश्य ही सफल होंगे।"

धनी की राह पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले ये बारह सुन्दरसाथ धन्य-धन्य हैं, जिन्होंने यह महान कार्य किया। इन बारह सदस्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कायर थे, जिनके दिल में मौत का खौफ छाया हुआ था, किन्तु ऊपर से वे ऐसा प्रदर्शित करते थे, जैसे इनके

समान समर्पण करने वाला संसार में कोई है ही नहीं।

## (२६)

स्वनाम धन्य इन बारह सुन्दरसाथ की यश पताका आज भी सर्वत्र फहरा रही है। इनके चरण कमल जहाँ पड़े, वहाँ की धरती धन्य-धन्य हो गयी। इनके शरीर को स्पर्श करती हुई हवा जहाँ भी गयी, वहाँ पवित्रता की सुगन्धि लेती गयी।

इनमें सर्वप्रथम आते हैं ठठानगर के श्री लालदास जी, जिनका रोम-रोम श्री जी के ऊपर न्योछावर है। उसके बाद दिल्ली के शेख बदल और मुल्ला कायम हैं, जो मुसलमान होते हुए भी शरियत के नाम पर होने वाले जुल्म को चुनौती दे रहे हैं। वेदान्त के आचार्य भीम भाई भी हैं, जो सूरत से आये हैं। नागजी भाई भी सूरत के ही हैं, जिन्होंने भीम भाई की तरह अपना घर-परिवार सब त्याग दिया है। कबीर पन्थ के आचार्य चिन्तामणि जी भी

हैं, जो ठठानगर के रहने वाले हैं, सोमजी भाई खम्भात के हैं, और बुन्देलखण्ड के खिमाई भाई हैं। दयाराम, चञ्चल, गँगाराम, और बनारसी ये चारों दिल्लीवासी हैं।

इन बारह सुन्दरसाथ ने आपस में यह निर्णय किया कि जामा मस्जिद में चलक मुहम्मद की सिफत सम्बन्धी सनन्धें पढ़ी जायें। ऐसा करने से बादशाह के पास जाने का कोई न कोई अवसर निकल आयेगा।

अब सब सुन्दरसाथ जामा मस्जिद में जाकर जोश में सनन्ध वाणी का गायन करने लगे। उस समय जो मस्जिद के इमाम थे, उन्हें जब इमाम मुहम्मद महदी की महिमा सुनायी पड़ी, तो वह अपने कमरे से बाहर निकल आये। ये बारह सुन्दरसाथ उन्हें धर्म के रक्षक लगे। उन्होंने रहमत-रहमत कहकर अल्लाह तआला से यह दुआ मागी कि इन मोमिनों पर मेहर की वर्षा हो। उन्होंने

स्वयं ही सुन्दरसाथ से कहा- "मैं आप सभी को बादशाह के पास ले जाकर भेंट कराऊँगा।"

यह कहते हुए इमाम ने सुन्दरसाथ का हाथ पकड़ लिया और प्रेमपूर्वक लाल किले के अन्दर ले गया।

महल के अन्दर जाकर इमाम ने औरंगज़ेब से कहा- "इमाम महदी का पैगाम लेकर उनके आदमी आए हैं। आप उनसे बात कीजिए।"

अपने महल में से निकलकर औरंगज़ेब बादशाह आया और चबूतरे पर खड़ा हो गया। उसके एक हाथ में छड़ी थी।

सुन्दरसाथ चबूतरे के नीचे बादशाह के नजदीक खड़े हो गये। औरंगज़ेब बादशाह ने संकेत करके आने का कारण पूछा।

इसके उत्तर में सुन्दरसाथ ने कलमा कहा – "ला इलाह इल्लिह्लाह, मुहम्मद रसूल अल्लाह।"

फिर बादशाह ने संकेत करके पूछा कि आपके आने का क्या कारण है?

"हम दीन-ए-इस्लाम के आशिक हैं। हमें इस फानी दुनिया की कोई भी चीज नहीं चाहिए।"

"आखिर आप लोग मेरे दरबार में आए हैं। मुझसे कुछ तो माँगिए।"

"आपसे एक ही चीज माँगते हैं कि आपके सामने बैठकर हम कुरआन पर चर्चा करें। केवल आप ही हमसे पूछिए और हमारी बातें सुनिये। बीच में अन्य कोई भी दखलंदाजी न करे।"

"यह तो ठीक है, लेकिन कुछ तो माँगिए। शाही



दरबार में आपकी हर इच्छा पूरी की जायेगी।"

"हम आपको पहले ही बता चुके हैं कि हमें इस नासूती दुनिया की कोई भी वस्तु नहीं चाहिए।"

इस बात से औरंगज़ेब बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने तीन बार अपनी लाठी को चूमा और अल्लाह तआला को याद किया।

फिर सुन्दरसाथ जोश भरी वाणी में बोले – "गुसलखाने के दरवाजे पर रुक्का चिपकाने वाले हम ही हैं। आपके पाँच प्रमुख अधिकारियों पर पाँच नलुए भी हमने ही भेजे थे। शेख निज़ाम, रिज़वी खान, शेख इस्लाम, आकिल खान, और सिद्दीक फौलाद के पास हमने ही नलुए भेजे थे। आकिल खान ने तो लेने से भी मना कर दिया था।"

इधर, शेख सलेमान थर-थर काँप रहा था कि कहीं ये मेरा भी नाम न ले लेवें। उसे याद था कि उसने किस तरह कई महीने तक सुन्दरसाथ को टरकाया था। बादशाह ने पूछा— "क्या आप लोगों के पास कोई किताब है?"

सुन्दरसाथ बोले कि आप जो भी किताब कहेंगे, उसे हम तुरन्त ही मँगा देंगे।

फिर बादशाह ने कहा— "आखिर मेरे दरबार में आए हैं, मुझसे कुछ तो माँग लीजिए।"

सुन्दरसाथ ने बेधड़क होकर उत्तर दिया— "हम आपको पहले ही कह चुके हैं कि मुहम्मद साहिब के बताये हुए सच्चे धर्म के सिवाय कुछ भी नहीं चाहिए।"

यह बात सुन्दरसाथ ने इतने जोशीले अन्दाज में

कही थी कि औरंगज़ेब बादशाह के दिल में डर बैठ गया।

उसने अपने मन में सोचा कि मेरे सामने बात करने में बड़े-बड़े राजा और नवाब भी घबराते हैं, किन्तु क्या वजह है कि ये लोग इतने सख्त शब्दों में बात कर रहे हैं।

जब यह बात चल रही थी, तब औरंगज़ेब के सभी दरबारी दूर खड़े हुए थे और थर-थर काँप रहे थे।

वक्त की नजाकत को भाँपते हुए दरबारियों ने बादशाह से कहा— "जहाँपनाह! खुद को इमाम महदी के आदमी कहने वाले इन लोगों में से पाँच तो दिल्ली के ही हैं। इनमें दो मुसलमान हैं— पहला है शेख बदल तथा दूसरा है मुल्ला कायम। शेष तीन सदस्य चञ्चल, दयाराम, और बनारसी हैं।

"ऐसा लगता है कि आपके दुश्मन किसी हिन्दू राजा

की इसमें चाल न हो? ये अकेले में आपसे जो बात करना चाहते हैं, उसका मतलब यह है कि दाल में कुछ काला है। यदि ये कुरआन के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की बात करना चाहते हैं, तो हमसे क्यों नहीं करते? आखिरकार, हम लोग किसलिए हैं? शाहजहाँ के शासनकाल में यदि कोई इस तरह के कठोर शब्द बोलता था, तो तुरन्त ही उसकी गर्दन उड़ा दी जाती थी। जब सबके सामने ये लोग इतने कठोर शब्द बोल रहे हैं, तो एकान्त में बातें करना आपके लिये घातक हो सकता है। शरियत आपको ऐसा करने की इजाजत नहीं देती।"

यह बात सुनकर औरंगज़ेब ने सिद्धीक फौलाद से कहा— "तुम इनके बारे में जाँच-पड़ताल करो कि ये कौन हैं? इन्हें अच्छी तरह से रखना। मैं इनको तुम्हें सौंप रहा हूँ। इनके खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था

करना तथा यह ध्यान रखना कि इन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न हो।"

बादशाह के इस कथन के विपरीत काजी शेख इस्लाम ने सिद्दीक फौलाद से कहा— "कोतवाल साहिब! बादशाह के सामने बातें करने में दुनिया काँपती है। किसी की भी आज तक इतनी मजाल नहीं हुई कि वह बादशाह के मुँह पर इतने कठोर शब्द बोल सके। इसलिये इनकी अच्छी तरह खबर लेना तथा यह भी पता लगाना है कि ये लोग कौन हैं तथा कहाँ से आये हैं?"

कोतवाल सिद्दीक फौलाद ने उन बारह सुन्दरसाथ से पूछा— "आपमें दो दिल्ली के मुसलमान हैं। क्या उनके लिये माँस का प्रबन्ध किया जाये?"

शेख बदल तथा मुल्ला कायम ने उत्तर दिया—

"कोतवाल साहिब! हम आखरूल इमाम महदी के बताये हुए मार्ग पर चलने वाले हैं। हमारे लिये माँस खाना हराम है। हम सभी एक जैसा शुद्ध सात्विक भोजन करेंगे।"

भोजन के पश्चात् रात्रि के उस अन्धकार में सिद्दीक फौलाद ने यातना का भयानक दौर आरम्भ किया, जिसको सुनने मात्र से ही सिहरन होती है। प्रत्येक कोड़े की मार पर हर मोमिन (ब्रह्मसृष्टि) के मुख से केवल यही शब्द निकलता था— "या अल्लाह! या रसूल!"

सिद्दीक फौलाद यह सारी जानकारी चाहता था कि इन बारह सदस्यों के प्रमुख कहा हैं, जो स्वयं को इमाम कहलाते हैं? कोड़े मारते-मारते सिद्दीक फौलाद भी थक कर बैठ गया। सुन्दरसाथ के कोमल शरीरों पर घाव बन गये, लेकिन उन्होंने श्री जी के बारे में एक भी शब्द नहीं बताया। वे अन्त तक अपने को मोमिन ही कहते रहे।

अपने मजहबी उन्माद में मानवता को कलंकित करने वाले अत्याचारियों की एक लम्बी सूची है। महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर लंग, चंगेज खान, सिकन्दर लोदी, नादिर शाह, तथा अहमदशाह अब्दाली की तलवारों ने न जाने कितने लाख मासूम इन्सानों का रक्तपान किया होगा?

इन्ही मजहबी ठेकेदारों ने गुरु गोविन्द सिंह के सुपुत्र फतहसिंह और जोरावरसिंह, जिनकी उम्र मात्र सात और आठ साल की थी, को जीवित ही दीवार में चुनवा दिया था। इनका गुनाह यही था कि इन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया। क्या कट्टरपंथियों का खुदा मासूम बच्चों को दीवारों में चुनवाने से ही खुश होता है?

दुनिया में अपने मजहब का परचम फहराने की इच्छा से गुरु अर्जुन देव को पहले गर्म जल में डाला गया, फिर

गर्म तवे पर बैठाकर ऊपर से गर्म रेत डाली गयी। बन्दा वैरागी को गर्म सलाखों से तड़पा-तड़पा कर एक-एक अंग काटा गया। पानी माँगने पर उनकी आँखों के सामने उनके पुत्र का कलेजा निकालकर उनके मुँह में ठूँस दिया गया। क्या इसी को धर्म कहते हैं?

ईरान और अफगानिस्तान का वर्तमान मजहब पारसियों और लाखों बौद्ध भिक्षुओं के रक्त बहाने पर ही दिखायी दे रहा है। स्वयं औरंगज़ेब बादशाह रात्रि का भोजन तभी करता था, जब पता चल जाये कि तलवार या कलमे द्वारा एक निश्चित मात्रा में हिन्दुओं का जनेऊ उतारा जा चुका है। गुरु तेगबहादुर का बलिदान तो विश्व प्रसिद्ध है ही।

सिद्दीक फौलाद ने काजी के पास सारा विवरण लिख कर भेज दिया— "ये लोग सच्चे मोमिन हैं। मैंने इन्हें



जितनी यातना दी है, उतनी यातना यदि मैं किसी मुसलमान को दे दूँ तो वह स्पष्ट रूप से कह देगा कि मैं मुसलमान नहीं हूँ। इनको कष्ट देकर मैं पछता रहा हूँ कि मेरे इस गुनाह का क्या प्रायश्चित्त होगा?"

सिद्दीक फौलाद से इस प्रकार की सूचना मिलने पर काज़ी शेख इस्लाम ने सब सुन्दरसाथ को अदालत में बुलवाया और सारी बातें पूछीं।

लालदास जी सहित सुन्दरसाथ ने कोड़ों की प्रताड़ना के घावों को दिखाते हुए पूछा— "क्या कुरआन और हदीस में यही कहा गया है कि जो सच्चे दिल से खुदा और रसूल पर ईमान लाये, उसके साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार करो?"

सुन्दरसाथ के शरीर पर बने हुए कोड़ों के घावों को

देखकर काज़ी शेख इस्लाम भी रो पड़ा। वह बोला—  
 "आप लोग हमारे पैगम्बर रसूलल्लाह मुहम्मद साहिब पर  
 ईमान लाने वाले हैं। हमसे बहुत बड़ी भूल हुई है।"

लालदास जी ने फिर कहा— "न तो हमने किसी का  
 धन लिया और न कोई चरित्रहीनता का ही कार्य किया।  
 हमने कोई चोरी भी नहीं की, फिर भी हमें कोड़ों से  
 सताया गया। अब हमें औरंगज़ेब बादशाह से भी मिलने  
 की कोई आवश्यकता नहीं है। हम आपके ही पास रहना  
 चाहते हैं। आप हमसे कुरआन-सम्बन्धी कोई भी बात  
 पूछिए।"

काज़ी ने कुरआन की "इन्ना इन्जुलना" सूरत का  
 अर्थ पूछा। श्री लालदास जी ने जब उसका सटीक उत्तर  
 दे दिया, तो काज़ी शेख इस्लाम बहुत प्रसन्न हुआ। उसने  
 बादशाह से अर्जी की कि मैं इन लोगों की अपनी

देखभाल में सेवा करना चाहता हूँ।

बादशाह का तुरन्त उत्तर आया— "इनको आप अपने पास रखिए। इन्हें अच्छे—अच्छे भोजन कराइए तथा इतनी अच्छी सेवा कीजिए कि इन्हें थोड़ी भी तकलीफ न हो।"

दूसरे दिन काज़ी ने सुन्दरसाथ को बुलाकर बातें की। उसके बाद सब लोग काज़ी के भाई के घर पर गये। वहाँ शेख बदल के तेजस्वी व्यक्तित्व को देखकर काज़ी का भाई अपने घर में ही छिपा रहा।

तीसरे दिन काज़ी ने सुन्दरसाथ को अपने पास बुलाया। श्री लालदास जी ने उन्हें एक हदीस दी। उस हदीस द्वारा कियामत के खास प्रसंगों का वर्णन पढ़कर काज़ी ने कहा— "यह तो आप लोगों की बनाई हुई है,

इसलिये इसमें आप लोगों की सारी बातें लिखी हुई हैं।"

सुन्दरसाथ को इस बात से बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा— "आप इतने बड़े काज़ी होकर भी इस प्रकार की बातें क्यों करते हैं? हम लोग इस किताब को उर्दू बाज़ार से खरीद कर लाये हैं। आप इसकी जाँच करवा सकते हैं।"

जब काज़ी ने सनन्ध ग्रन्थ से मुहम्मद साहिब की सिफत और दोजख का प्रकरण सुना, तो खुश होकर कहने लगा कि इसे बार—बार गाइए।

माल गोदाम का दरोगा हिन्दू था, जो नागर जाति का था। काज़ी ने उससे कहा— "देखो ये लोग हिन्दू हैं, फिर भी इन्हें कुरआन की इतनी गहरी जानकारी है। इनकी अल्लाह तआला पर अटूट आस्था है।"

यह सुनते ही वह शर्म से इस प्रकार भागा कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए। वह सोचने लगा कि इन हिन्दुओं को क्या कहूँ जो कुरआन के ऊपर चर्चा कर रहे हैं। ये तो धर्म भ्रष्ट हो गये हैं।

अब काजी ने पूछा— "दसवीं, ग्यारहवीं, तथा बारहवीं में कियामत आने का वर्णन कुरआन में कहाँ पर है?"

सुन्दरसाथ ने जवाब दिया— "कुरआन के तीसवें पारे में यह वर्णन है कि दसवीं सदी में ईसा रूह अल्लाह का आगमन होगा, ग्यारहवीं में मुहम्मद इमाम महदी का प्रकटन होगा। कियामत का यही समय है। बारहवीं सदी में फजर की लीला होगी तथा तेरहवीं सदी में सारे ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति की बख्शीश मिल जायेगी। इसके और अधिक भेद हमारे हादी इमाम महदी

खोलेंगे।"

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया – "आप लोगों को यदि कुरआन और खुदा पर ईमान है, तो आप लोग नमाज क्यों नहीं पढ़ते?"

सुन्दरसाथ ने उत्तर दिया – "हमारे लिये चौदह तबक की यह फानी दुनिया मुर्दार है। हमने इश्क-ए-हकीकत की राह अपनायी है, इसलिये हमारा उठना, बैठना, चलना सभी कुछ नमाज ही है। आप लोगों को दुनिया का सुख चाहिए, इसलिये आप शरियत की नमाज पढ़ते हैं। वह हम नहीं पढ़ सकते।"

यह सुनकर काज़ी के पास बैठे सभी लोगों का मुँह खुला का खुला ही रह गया। सभी शर्मिन्दा होकर एक दूसरे से कहने लगे कि इनका जवाब क्यों नहीं देते?

फिर काजी ने कहा कि मुझे सनन्ध ग्रन्थ से वे प्रसंग सुनाइए, जिससे हम अपनी पहचान कर सकें। लालदास जी तथा भीम भाई ने जब इमाम के मिलाप की सनन्ध सुनायी, तो काजी शेख इस्लाम को इमाम महदी की पहचान हो गयी और उसने स्पष्ट कहा – "मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इमाम महदी प्रकट हो चुके हैं, लेकिन तुम्हें अभी इस बात को छिपाना पड़ेगा, अन्यथा हमारी शरियत का राज्य समाप्त हो जायेगा। जब वे स्वयं जाहिर होंगे, तो मैं भी उनके चरणों में आ जाऊँगा।"

## (२७)

औरंगज़ेब से मुलाकात के बाद जब सुन्दरसाथ को यातनाएँ दी गयीं, तो कान्हजी भाई ने यह सारा समाचार श्री जी को कह सुनाया। यह सुनते ही श्री जी का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने तुरन्त आदेश दिया— "जिबरील! इसी क्षण इस दुनिया को मिटा दो।"

लेकिन हृदय धाम में विराजमान अक्षरातीत ने कहा— "महामति! अभी तो जागनी का दौर शुरू ही हुआ है। सम्पूर्ण ब्रह्मवाणी अभी उतरी ही नहीं। शाकुण्डल की आत्मा जगी ही नहीं है, इसलिये खेल को अभी बढ़ाया जा रहा है।"

श्री जी के व्यथित हृदय से ये स्वर फूटने लगे— "सत्ता के मद में डूबे हुए मुसलमानों! मैंने परमधाम के



अपने लाडले सुन्दरसाथ को पैगाम देकर भेजा था। बदले में तुमने उन्हें कोड़ों से पीटा। यह अत्याचार तुमने एक प्रकार से मेरे ऊपर ही किया है। इस गुनाह के कारण अब तुम्हारा जड़ से विनाश हो जायेगा।"

इधर श्री जी के मुखारविन्द से ये शब्द निकले, उधर मुगल साम्राज्य पर विनाश के बादल मण्डराने लगे। रुक्कों को पढ़कर बादशाह यह तो समझ ही गया था कि इमाम महदी प्रकट हो चुके हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में उनके चरणों में जाने की वह हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहा था। उसे डर था कि यदि उसने ऐसा किया तो उसके दरबारी ही उसका वध कर डालेंगे।

उधर शरियती शासन के अधिकारियों ने भी यह तय कर रखा था कि यदि बादशाह उस हिन्दू फकीर (इमाम महदी) का शिष्यत्व स्वीकार करेगा, तो हम उसे जिन्दा

नहीं रहने देंगे, क्योंकि ऐसा हो जाने पर तो हमारी शरियत का सारा साम्राज्य तथा आन-बान ही धूल में मिल जायेगी।

औरंगज़ेब के सामने एक तरफ आत्मिक सुख का साम्राज्य था, तो दूसरी तरफ सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की बादशाहत। निदान, आत्मिक बल की कमी के कारण वह आन्तरिक रूप से श्री जी के दीदार का प्यासा था, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में उसमें शरियत की सीमाओं को तोड़ने का साहस नहीं था। मायावी साम्राज्य और जीवन के मोह के कारण वह उस सुख को नहीं पा सका, जिसकी उसे तलाश थी।

जिस समय दिल्ली में सुन्दरसाथ को यातना दी गयीं, उसी समय मक्का की मस्जिद की दो मीनारें टूटकर गिर पड़ीं। इन मीनारों के टूटने का संकेत यह था कि

हिन्दुस्तान में इमाम महदी प्रकट हो चुके हैं। वहाँ से वसीयतनामें आए, जिनमें यह लिखा था कि जिबरील कुरआन और फकीरों की शफकत तथा दुनिया की बरकत को हिन्दुस्तान में इमाम मुहम्मद महदी के पास ले गया है। यह पढ़ने के बावजूद औरंगज़ेब अपने गुमान तथा सत्ता के मोह को नहीं छोड़ सका।

एक दिन बादशाह जैसे ही तख्त-ए-ताउस पर बैठने गया, उसको ऐसा लगा कि तख्त पर शेर बैठा है। औरंगज़ेब को भय से काँपते और ठिठकते हुए देखकर दरबारियों ने पूछा— "जहाँपनाह! आज आप इस तरह से घबराये हुए क्यों हैं? तख्त पर तशरीफ रखिए।"

"वहाँ पर शेर बैठा है और मेरी तरफ देखकर गुर्गुरा रहा है।"

"हुजूर! वहाँ पर तो कोई नहीं है। हम इतने सारे लोग देख रहे हैं।"

"नहीं! मैं नहीं बैठ सकता।"

"बादशाह-ए-हिन्द! यदि आपको वहाँ शेर दिख रहा है, तो निश्चित ही उस फकीर का जादू काम कर रहा है, जिसने नलुए भिजवाये थे। आप पाँचों वक्त की निमाज पढ़ने वाले अर्श-ए-अज़ीम के मोमिन हैं। भला आपको उस फकीर का जादू क्या कर लेगा?"

सबके आग्रहवश औरंगज़ेब बादशाह जैसे ही सिंहासन पर बैठने गया, धड़ाम से गिर पड़ा। शाही महल में कोहराम मच गया। बादशाह का चेहरा भय के मारे पीला पड़ गया।

उस दिन के बाद औरंगज़ेब बादशाह कभी भी

तख्त-ए-ताउस पर नहीं बैठा, भले ही कितना ही दबाव क्यों न पड़ा हो।

जब दिल्ली में सुन्दरसाथ कैद में थे , तब उन्हें सान्त्वना देने के लिये श्री प्राणनाथ जी ने अपने हाथों पत्र लिखा था। उस पत्र को सुन्दरसाथ तक कान्हजी भाई तथा शेख बदल लेकर आये थे। उसका भावार्थ संक्षेप में इस प्रकार है—

"मेरे प्राण के प्रीतम! जीव के जीवन! आत्मा के आधार! मेरे प्रेम में डूबे हुए सुन्दरसाथ सर्व श्री लालदास, भीम भाई, नागजी भाई, चिन्तामणि, दयाराम, चञ्चल, गँगाराम, बनारसी, सोमजी भाई, खिमाई भाई, अनन्त राम, लाल बाई, श्याम बाई, और राम राय! आप सभी श्री राज जी के चरणों की छत्रछाया में हमेशा आनन्द मंगल में रहिए। मैं इन्द्रावती की आत्मा

आपको करोड़ों बार प्रणाम करती हूँ।

"आप सबने शरियत के विरुद्ध बहुत बहादुरी से धर्मयुद्ध किया है। यह सब श्री राज जी के हुक्म से सम्भव हुआ है। दिल्ली में पहले छिप-छिपकर पैगाम दिया जाता था। अब आप लोग इमाम महदी के अनुयायियों के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं।

"धाम धनी ने आपको ज्ञान के अनन्त नेत्र दिये हैं। आप लोग हमेशा ही अज्ञान और अत्याचार के विरुद्ध लड़ते रहना। यह ध्यान रखना कि युद्ध में दज्जाल से सीधे न लड़कर नीतिपूर्वक लड़ना चाहिए। बादशाह से मिलने के लिये आपने जो अपने हिन्दू वेश-भूषा का परित्याग किया, उसके लिये सज्कोच न करना। आप सभी सच्चे धर्म के राही हैं। धाम धनी के हुक्म पर लोक-लज्जा के बन्धनों को आपने काट डाला है। अब गाँव-

गाँव, नगर-नगर में आप लोगों की महिमा गायी जायेगी। जाहिरी मुसलमान मेरे स्वरूप की पहचान नहीं कर पा रहे हैं। मैं तो पल-पल तुम्हारे साथ ही हूँ।

"मैं चाहता हूँ कि यदि आप सबकी स्वीकृति हो, तो मैं कहीं बाहर जाकर किसी राजा को जगाऊँ। तभी जागनी का कार्य आगे बढ़ सकेगा। वहाँ यदि मेरी आवश्यकता हो, तो मैं आने के लिये भी तैयार हूँ। आप सोच-विचार कर पत्र लिखना। आगे धाम धनी की मेहर से सब कुछ ठीक ही होगा।"

श्री जी का पत्र पाकर सुन्दरसाथ बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने भी पत्र लिखा, जिसका सार संक्षेप में इस प्रकार है—

"हे धाम धनी! जब हमारी बात काज़ी से हुई, तो

उसने सन्तुष्ट होकर बादशाह को यह सूचना दे दी कि ये लोग अल्लाह तआला पर ईमान रखने वाले मोमिन हैं। हमारे ऊपर जो पहरा था, वह भी हटा दिया गया है। कोतवाल सिद्दीक फौलाद से भी बादशाह ने कागज मँगवा लिया है। आप जहाँ उचित समझें, जागनी कार्य हेतु जाइए।"



## (२८)

यह कहावत कही जाती है कि लोहे को लोहा ही काटता है। सत्ता और धन के गुमान में चूर शरियत के बन्दों को कोई राजा ही सही उत्तर देगा। यह सोचकर श्री जी कामा पहाड़ी से राजपूताना की ओर चले, ताकि किसी हिन्दू राजा को जाग्रत कर औरंगज़ेब से लड़ने के लिए तैयार किया जा सके।

राह में चलते समय एक कीर्तन उतरा, जिसका संक्षिप्त भाव यह है— "हे राजाओं! राणाओं! तुम्हारा धर्म डूब रहा है, इसकी रक्षा के लिये कोई आगे आए। हे योद्धाओं! तुम अपनी गहरी नींद छोड़कर धर्मरक्षा के लिये तैयार हो जाओ। तीनों लोकों में भरतखण्ड सर्वश्रेष्ठ है, उसमें भी हिन्दू धर्म श्रेष्ठ है, लेकिन यह दुर्भाग्य है कि हिन्दू राजाओं को युद्ध करने में शर्म आ रही है।"

श्री प्राणनाथ जी कामा पहाड़ी से चलकर आमेर आये। वहाँ काली देवी की पूजा में प्रयुक्त होने वाले माँस और शराब को देखकर, वहाँ से सांगानेर के लिये प्रस्थान कर दिए।

जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज बोना निष्फल होता है, उसी प्रकार तामसिक स्वभाव वाले व्यक्तियों में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार नहीं हो पाता।

उस समय मुकुन्द दास जी उदयपुर में रह रहे थे। वहाँ से सांगानेर आकर चर्चा-प्रवचन में लग गये थे। वहाँ ही पता चला कि दिल्ली में १२ सुन्दरसाथ पर कोतवाल ने यातना ढायी है और श्री जी कामा पहाड़ी से चलकर आमेर आए हुए हैं, तो वे श्री जी के दीदार हेतु आमेर की तरफ प्रस्थान कर दिए।

किन्तु, वहाँ आने पर पता चला कि श्री प्राणनाथ जी सांगानेर चले गये हैं। अतः वे फिर सांगानेर की राह पर चल दिये।

उधर, दिल्ली में कान्हजी भाई के हाथ पत्र भिजवाने के पश्चात् सुन्दरसाथ को अहसास हुआ कि हमसे बहुत बड़ी भूल हो गयी, जो हमने श्री जी को जागनी कार्य हेतु कहीं भी जाने के लिये कह दिया। उनके पास तो एक भी रुपया नहीं है। आगे मार्ग में श्री जी क्या भोजन करेंगे?

इस समस्या के समाधान के लिये शेख बदल ३०० रुपये लेकर तुरन्त चल दिये। आमेर से सांगानेर जाते समय रास्ते में उनकी भेंट मुकुन्द दास जी से हो गयी।

राजस्थान की धरती भक्ति और वीरता का संगम है, अतिथि सेवा में अग्रणी है, किन्तु अपवाद स्वरूप कुछ

स्थानों पर लुटेरे लोगों का होना स्वाभाविक है। सुगन्धि से भरपूर खूबसूरत गुलाब और केवड़े में काँटे तो होते ही हैं।

शेख बदल और मुकुन्द दास जब सांगानेर के रास्ते में जा रहे थे, तो कुछ लुटेरे मवासियों की उन पर नजर पड़ गयी। उन्होंने उनको लूटना चाहा। किसी तरह भाग कर वे पुर आये।

वहाँ एक दुकान के अन्दर खाट के ऊपर श्री जी विराजमान थे। उनके आगे छबीलदास तथा मलूकचन्द भी थे। दोनों ही भूख से बहुत पीड़ित थे। उनके पास कुछ भी पैसे नहीं थे कि भोजन की कोई व्यवस्था करते।

शेख बदल ने श्री जी को पहचान लिया तथा आकर चरणों में प्रणाम किया। मुकुन्द दास जी भी आ गये।

उनके पास चार सौ रुपये थे। उसमें से भोजन का सामान मँगवाया गया। शेख बदल ने अपना सारा पैसा श्री जी के चरणों में रख दिया।

रात्रि के समय मुकुन्द दास और श्री जी की वार्ता हुई। मुकुन्द दास ने कहा— "धाम धनी! इतने बड़े बादशाह से सीधे टकराना ठीक नहीं था। इस कार्य में सुन्दरसाथ सहित आपको भी बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अब भविष्य में क्या किया जायेगा?"

"मेरे लाडले सुन्दरसाथ पर जुल्म ढाने वाले ये शरियत के मुसलमान शान्ति से नहीं रह पायेंगे। इनकी सत्ता का अब जड़ से ही विनाश हो जाएगा।"

"अब जागनी के लिये क्या करना है? इस सम्बन्ध में आदेश दीजिए। इस इलाके में 'धनी बाबा' नामक एक

सम्प्रदाय है, जिसमें अपनी साक्षियाँ हैं।"

"मेरा यह आदेश है कि तुम उन्हें जाकर चर्चा सुनाओ। उचित परिस्थिति में मुझे बुलाना।"

"जो आज्ञा" कहकर मुकुन्द दास जी मलूक चन्द के साथ चल पड़े। रास्ते में पुनः भीलों ने धन के लोभ में उन पर आक्रमण कर दिया। किसी तरह जान बचाकर वे उदयपुर पहुँचे।

मुकुन्द दास जी ने श्री जी के चरणों में रहने के लिये युवावस्था में ही अपनी पत्नी का परित्याग तो कर दिया था, लेकिन अभी पूर्ण वैराग्य की स्थिति नहीं बन पायी थी, इसलिये न तो उन्हें अभी धन का मोह खत्म हुआ था और न ही ब्रह्मस्वरूप श्री प्राणनाथ जी की ही पूरी पहचान थी। बाद में पहचान होने पर उन्हें अपनी भूल

का बहुत अधिक पश्चाताप हुआ।

उस अनावश्यक धन को धिक्कार है, जो धाम धनी और सुन्दरसाथ की सेवा में नहीं लगा। उस यौवन को भी धिक्कार है, जिसके रहते सेवा न की जा सकी।

उदयपुर में मुकुन्द दास जी ने लाधू मसानी के यहाँ जाकर चर्चा की और श्री प्राणनाथ जी की पहचान दी। लाधू मसानी ने श्री जी को अपने यहाँ लाने का आग्रह किया।

श्री बाई जी सहित अनेक महिला सुन्दरसाथ उस समय आगरा में रह रहे थे। श्री जी ने उनको वहाँ से बुलवाया तथा सभी ने उदयपुर के लिये प्रस्थान किया।

उदयपुर में लाधू मसानी ने अपनी हवेली में श्री जी को ठहराया। वेद-कतेब के एकीकरण की चर्चा का प्रवाह

चल पड़ा। आसपास के लोग काफी संख्या में आने लगे। श्री प्राणनाथ जी का साक्षात् दर्शन करके सभी ने अपने को धन्य-धन्य माना।

उदयपुर में उस समय एक बारात आयी हुई थी। उस बारात में से एक सैयद और नूर मुहम्मद ने चर्चा सुनी। दोनों ही गलितगात हो गये और तारतम्य ज्ञान ग्रहण किए।

उधर, दिल्ली में सुन्दरसाथ को चार माह हो गये थे। उन्होंने श्री जी को पत्र लिखा—

"हे धाम धनी! हमने अच्छी तरह से देख लिया है कि ये लोग शरीयत के रंग में इतना डूबे हुए हैं कि बिना दण्ड पाये किसी भी तरह ईमान लाने के लिये राजी नहीं हैं। अब हम बाट देख रहे हैं कि कब आप अपने चरणों में हमें



बुलाएँगे और आपका दीदार करके हम कृत्कृत्य होएँगे।"

उस पत्र को शेख बदल जी उदयपुर लाये थे। श्री जी ने उत्तर में लिखा— "आप सभी मेरे पास आ जाओ। श्री राज जी के हुक्म से जब इन पर डण्डा बरसेगा, तभी ये सच्ची राह पर चलेंगे।"

जब शेख बदल श्री प्राणनाथ जी का पत्र लेकर दिल्ली आये, तो सभी सुन्दरसाथ बहुत आनन्दित हो गये। क्यों न हों, आखिर उन्हें अपने प्राणनाथ के दर्शन जो मिलने थे।

सभी सुन्दरसाथ मिलकर काजी शेख इस्लाम के पास गये और बोले कि अब हमें जाने की स्वीकृति दीजिए। अब हम अपने ठिकाने पर जाना चाहते हैं। तब काजी शेख इस्लाम ने कहा— "आप लोग परसों आइए।

तब तक मैं बादशाह से आपके जाने के सम्बन्ध में बातें कर लेता हूँ।"

उस निश्चित तिथि पर काज़ी शेख इस्लाम सब सुन्दरसाथ को औरंगज़ेब के सामने ले गया और बोला— "ये वही मोमिन हैं, जिन्होंने शरियत के विरोध में लड़ाई लड़ी थी। अब ये यहाँ से जाने की स्वीकृति चाहते हैं।"

बादशाह ने सिर झुकाकर तीन बार सुन्दरसाथ की ओर देखा और धीरे से बोला— "हे खुदा! इन पर मेहर करना।"

बादशाह की ओर से रास्ते के खर्च के लिए सेवक को १०० रुपये देने का आदेश हुआ। वह दौड़ते हुए गया और रुपया लाकर सुन्दरसाथ को दे दिया।

जब औरंगज़ेब बादशाह ने जाने की रजा दी, तो

सुन्दसाथ वहाँ से विदा होकर चले। एक-दो दिन दिल्ली में रहने के पश्चात् वे उदयपुर पहुँचे।

विरह के बाद मिलन की घड़ियाँ बहुत ही मधुर होती हैं। उस समय आँखों से बहने वाले आँसू हृदय की प्रेम भरी मिठास को व्यक्त करते हैं।

लालदास, भीम भाई, गरीबदास, चिन्तामणि आदि सब सुन्दरसाथ धाम धनी श्री प्राणनाथ जी का दीदार करके भाव-विह्वल हो गये। उनके प्यासे नेत्र तृप्त हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपना मुस्लिम फकीरों वाला भेष उतार दिया और सामान्य वेश-भूषा धारण कर ली। दिल्ली के सुन्दरसाथ पारिवारिक झंझटों से मुक्त होने के लिये कुछ दिन दिल्ली में ही रुक गये थे। वे कुछ दिन बाद श्री जी के चरणों में आए।

अब उदयपुर में श्री प्राणनाथ जी के मुखारविन्द से ब्रह्मज्ञान की अमृत धारा बह रही थी। उसका रसपान करने वाला यही मानता था कि आज वह धन्य-धन्य हो गया है।

जब श्री प्राणनाथ जी चर्चा करते थे, तो उस समय सुन्दरसाथ को इन बाह्य आँखों से ही श्री राज जी के साक्षात् दर्शन होने लगे। इस तरह के दर्शन का सौभाग्य तो हजारों साल की समाधि लगाने वाले भगवान शिव को भी नहीं मिला है। यह सब मूल सम्बन्ध और श्री प्राणनाथ जी की कृपा से ही सम्भव है।

उदयपुर में होने वाली इस जागनी लीला का वर्णन वहाँ के राणा के महलों तक जा पहुँचा। वहाँ जाने वाले लोगों में कोई तो श्री प्राणनाथ जी की महिमा गाता, तो कोई जी भरकर निन्दा करता। राणा सब कुछ चुपचाप

सुनता रहता है।

एक व्यक्ति आकर कहता है- "ये तो बड़े ही सन्त पुरुष हैं, सर्वज्ञ हैं। इनसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है, या यों समझिए कि इनके अनन्त नेत्र हैं।"

दूसरा आकर बोलता है- "ये तो महाठग हैं। दुनिया को दिखाने के लिये इन्होंने परमहंसों का भेष ले लिया है।"

तीसरा आकर कहने लगा- "ये तो पक्के मुसलमान हैं। इन्हें औरंगज़ेब ने भेजा है। बप्पा रावल की सन्तानों को ये मुसलमान बनाना चाहते हैं। तभी तो दिल इनका मुसलमानों का है और भेष हिन्दुओं का। इनसे सावधान रहने की जरूरत है।"

चौथे ने आकर अपनी बात कहनी शुरू कर दी- "ये

तो हिन्दू का भेष धारण करके कुरआन पढ़ते हैं। इनकी मानसिकता ही समझ में नहीं आती।"

पाचवाँ कहने लगा— "ये दोनों धर्मों के ग्रन्थ पढ़ते हैं। ये गीता-भागवत भी पढ़ते हैं तथा कुरआन-हदीस भी पढ़ते हैं। इनकी लीला सबसे न्यारी है।"

ये सारी बातें सुनते-सुनते राणा राज सिंह के कान पक गये। उसने अपने दरबार के पण्डितों से कहा— "आप लोग जाकर यह पता लगाइए कि ये 'श्री प्राणनाथ जी' कौन हैं? इनका आध्यात्मिक ज्ञान कैसा है तथा यहाँ इनके आने का उद्देश्य क्या है?"

वे राज पण्डित श्री जी से मिलने आए। श्री जी ने उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया। श्री जी ने चर्चा के अन्तराल में भागवत के चालीस तथा वेदान्त के पन्द्रह प्रश्नों की

चर्चा की। पण्डितजनों से यह विनम्र आग्रह किया गया कि वे इनका उत्तर स्पष्ट करें।

आध्यात्मिक ज्ञान का वृक्ष तो तप-त्याग के वातावरण में ही बढ़ता है। इसलिये वेदों के व्याख्यान स्वरूप आरण्यक ग्रन्थों की रचना वनों के शान्त और तपोमय वातावरण में हुई। राजमहलों के राजसिक माहौल में ब्रह्मज्ञान का अंकुर नहीं फूटता।

भला, तारतम्य ज्ञान से रहित, गीता, भागवत का पाठ करके अपनी जीविका चलाने वाले इन कठिन प्रश्नों का उत्तर क्या देते? उन्होंने बहुत सिर खपाया, लेकिन कुछ भी नहीं सूझा।

उन्होंने अपने मन में सोचा – "इन वैरागियों को तो घर-परिवार चलाने की कोई चिन्ता है नहीं। यदि राणा

को पता चल जाये कि हम लोगों को श्री प्राणनाथ जी द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर ही नहीं आया , तो राजदरबार से हमारी छुट्टी हो जायेगी। परिणामस्वरूप, फाके मस्ती के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं रहेगा। इसलिए अपनी आजीविका की रक्षा करने के लिए एक ही तरीका है कि इनकी निन्दा की जाये।"

ज्ञान, प्रेम, शील, सन्तोष आदि गुणों को धारण करने से ही कोई ब्राह्मण कहला सकता है, जन्म से नहीं। जिन्होंने एक भी वेद को पढ़ना तो दूर, आँखों से देखा भी नहीं होता, उन्हें चतुर्वेदी कहलाने का क्या अधिकार है? वंशानुगत श्रेष्ठता का दावा विनाश की खाई खोदता है।

शास्त्रार्थ में हारे हुए वे राजपण्डित राणा के सामने जाकर "खट्टे अँगूर" की कहावत को चरितार्थ करने लगे।



उन्होंने राणा से कहा— "ये वैरागी किसी भी काम के नहीं हैं। इनका तो मुँह देखना भी पाप है।"

परमधाम का अँकुर न होने से राणा भी अपने पण्डितों के बहकावे में आ गया और श्री प्राणनाथ जी के चरणों की सान्निध्यता का कुछ भी लाभ न उठा सका।

उगते हुए सूरज का महत्व केवल कमल को ही मालूम होता है, चमगादड़ या उल्लू को नहीं।

एक दिन सुन्दरसाथ सहित श्री जी उदयपुर की झील गये। वहाँ एक हवेली ली गयी, जिसमें सभी लोग ठहरे। वाणी चर्चा का प्रवाह चलते रहने से आसपास के काफी लोग आने लगे। चारों ओर प्रसन्नता छा गयी।

इस संसार में सबको ज्ञान—विज्ञान (हकीकत एवं मारफत) की राह पर नहीं चलाया जा सकता। कलियुग

के वर्तमान दौर में कर्मकाण्ड (शरियत) का ही बोलबाला होता है। कर्मकाण्डी लोगों को अध्यात्म के चरम लक्ष्यों से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है। वे भोजन, वस्त्र, तथा बैठने में भी छुआछूत की मानसिकता से ग्रस्त रहते हैं। यदि उनका भोजन किसी ने छू दिया या कपड़ा भी छू दिया, तो धर्म भ्रष्ट होने की बात चल पड़ती है। यहाँ तक कि पास बैठने में भी छुआछूत रूपी भूत उनका पीछा करता रहता है।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" का उद्धोष करने वाली भारतीय संस्कृति में छुआछूत की मानसिकता अध्यात्म जगत पर कलंक है। विडम्बना तो यह है कि अध्यात्म की प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थी ये कर्मकाण्डी लोग स्वयं को किसी भी परमहंस से कम नहीं समझते।

मध्य काल में तो छूतछात का अजगर हिन्दू समाज

को निगले जा रहा था। स्त्री और शूद्र को गायत्री मन्त्र के जप का अधिकार नहीं था। शूद्र के कान में वेद का अंश सुनायी पड़ जाने पर उसमें शीशा भर देना तथा स्त्री द्वारा वेदोच्चारण करने पर जिह्वा काटने का नियम बनाना विद्याविहीन, वेद के ज्ञान से रहित, आसुरी प्रवृत्ति के लोगों का ही काम था। भारतवर्ष को गुलाम बनाने में इन्हीं लोगों की प्राथमिकता थी। इन लोगों ने तो स्वप्न में भी यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय के दूसरे मन्त्र को नहीं देखा था, जिसमें यह लिखा है कि इस वेद वाणी को ग्रहण करने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि सभी को है।

छुआछूत की इन्हीं संकीर्ण विचारधाराओं के संस्कारों में पले कुछ सुन्दरसाथ भी थे, जिनके मन में यह बात बनी रहती थी कि जो सुन्दरसाथ चार महीने

दिल्ली में कैद रहे हैं तथा मुस्लिम लोगों का दिया हुआ भोजन किये हैं, उनके साथ खान-पान का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

श्री जी के आदेश पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले भीम भाई, लालदास, चिन्तामणि आदि ब्रह्ममुनि सबके आदर्श हैं। इनसे छूतछात का भाव रखने वाला निश्चित ही अपराधी है। श्री जी को किसी भी कीमत पर यह सहन नहीं हो सकता था कि दिल्ली में पैगाम लेकर जाने वाले सुन्दरसाथ को कोई भी घृणा या छूतछात की नजर से देखे।

किन्तु, यह रोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा। श्री प्राणनाथ जी ने इसे जड़ से मिटाने का निर्णय किया। अपनी चर्चा में खण्डनी के शब्दों से प्रबोधित करने के पश्चात् श्री जी ने सबसे पहले अपना सिर मुड़वाया तथा वैरागियों का

वेश धारण कर लिया।

इसके पश्चात् गम्भीर स्वरों में श्री जी का आदेश हुआ— "जिन्हें मेरे साथ रहना है, उन्हें मेरी जैसी वेश—भूषा बनानी पड़ेगी। मैं सुन्दरसाथ में किसी भी प्रकार से भेदभाव की लकीर नहीं रहने दूँगा।"

मजबूर होकर मुकुन्ददास आदि ने तो रोते हुए सिर मुड़ाया तथा वैरागी वेष धारण किया, जबकि श्री लालदास जी, भीम भाई, नागजी भाई आदि ने हँसते—हँसते आदेश का पालन किया।

अब सभी एक ही रंग में रंग गये थे। पीछे से देखने पर पता ही नहीं चलता था कि कौन मुकुन्द दास है और कौन लालदास है? भेदभाव की लकीरें मिट चुकी थीं और वाहेदत (एकदिली) के सागर की लहरों की तरफ

सबका खिंचाव बढ़ने लगा था।

## (२९)

उस समय दिल्ली के सुन्दरसाथ दयाराम, चञ्चल, गँगाराम, तथा बनारसी दास भी उदयपुर में आ पहुँचे। मुस्लिम फौज का एक हिस्सा घोड़ों पर सवार होकर चला आ रहा था। उसमें अव्वल खान, सौदागर पठान, मुगल खान, इलियास खान, मिहीन खान, तथा नूर मुहम्मद इत्यादि प्रमुख व्यक्ति थे।

श्री प्राणनाथ जी तथा अन्य सुन्दरसाथ को देखकर ये सभी लोग दर्शन करने आये। अव्वल खान को ये मालूम था कि नूर मुहम्मद श्री जी से तारतम्य ज्ञान ग्रहण कर चुका है। दर्शन हेतु आने के लिए नूर मुहम्मद की प्रेरणा भी कार्य कर रही थी।

अव्वल खान ने नूर मुहम्मद से पूछा— "नूर मुहम्मद!

तुम मुझे इस वैरागी की पूरी पहचान दो कि ये कौन हैं, तथा कहाँ से आये हैं? यदि तू इनकी पहचान छिपाएगा, तो मैं तुम्हारा दामन झटककर अल्लाह तआला से न्याय कराऊँगा।"

नूर मुहम्मद ने कहा— "इनके पास इस्लाम धर्म का सच्चा ज्ञान है तथा कुरआन की हकीकत और मारिफत के रहस्यों को उजागर करते हैं। वस्तुतः ये इमाम मुहम्मद महदी हैं।"

यह सुनकर नूर मुहम्मद आदि के साथ अव्वल खान श्री जी के दीदार हेतु आया। उस समय चर्चा चल रही थी। श्री जी ने कुरआन-हदीसों में वर्णित अपने स्वरूप की जब पहचान कराई, तो अव्वल खान बहुत भावुक हो गया। वह प्रायश्चित स्वरूप अपने चाबुक से अपने शरीर पर जोर-जोर से प्रहार करने लगा तथा बारम्बार यही



बोलता- "मेरे सुब्हान अल्लाह तआला इमाम मुहम्मद महदी के रूप में वैरागी वेश में यहाँ बैठे हैं और मैं माया में अब तक कहाँ-कहाँ भटकता रहा हूँ। मेरे इस गुनाह का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है।"

तब श्री प्राणनाथ जी ने उसे ऐसा करने से रोका तथा अति प्यार से अपने पास बैठाया। अव्वल खान के साथ-साथ मिहीन खान, इलियास खान आदि को भी श्री जी के स्वरूप की पहचान हो गयी।

उस समय पाताल से लेकर परमधाम तक का पट तैयार हो रहा था। श्री प्राणनाथ जी लिखवा रहे थे तथा मुकुन्द दास जी उस कार्य में आगेवान थे।

कुछ पठान मिलकर श्री जी का दर्शन करने आये। उनसे श्री जी की वार्ता होने लगी। पठानों ने कहा- "यदि

आप रसूलल्लाह मुहम्मद साहिब का कलमा सुना देंगे, तो हम भी आपके हो जायेंगे।"

इस समय श्री जी के चेहरे पर जिबरील का असर दिखने लगा। वे बोले- "इस तरह की बातें कहने पर मुझे बहुत अफसोस है। भला मेरे और मुहम्मद साहिब के बीच दूसरा कौन हो सकता है?"

फिर अक्बल खान के ऊपर जिबरील का जोश देखकर पठान डर गये। वहाँ से जाने का बहाना लेकर वे घर तो चले गये, लेकिन वहाँ पर निन्दा करने लगे कि हिन्दू वैरागियों का एक दल आया है, जिनका मुखिया स्वयं को इमाम मुहम्मद महदी कहता है। ये लोग मुसलमानों को बहकाकर अपने दल में शामिल करते जा रहे हैं।

एक दिन राणा राज सिंह भी श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करने आये। वह दूर से ही दर्शन किए। उन्होंने अपना मुँह छिपा रखा था। उस समय सुन्दरसाथ रास की वाणी गाते हुए रास की रामतें कर रहे थे। राणा को अच्छा तो बहुत लगा, लेकिन उनको पण्डितों ने बहका रखा था, इसलिए वे श्री जी के चरणों में न आ सके।

गंगा की स्वच्छ धारा का रसपान तो भाग्यशाली ही करते हैं। बहुत से बदनसीब ऐसे भी होते हैं, जो गंगा के किनारे रहकर भी प्यास से तड़पते ही रहते हैं। राणा राज सिंह भी ऐसे ही भाग्यहीन थे।

राणा के दिल में पण्डितों ने शक भर रखा था, जबकि मुसलमान होते हुए भी अव्वल खान श्री जी पर पूर्ण आस्था रखते थे। राणा हमेशा उनसे हँसी-मजाक करते थे कि तुम्हारा ईमान तो सबसे ऊँचा है, जो एक

हिन्दू वैरागी को तुम अल्लाह तआला का स्वरूप मानते हो।

ताल से अब श्री जी उदयपुर नगर में आ गये। वहाँ चारों ओर से सुन्दरसाथ पहुँचने लगे। सूरत से गोवर्धन भट्ट भी आ गये।

उस समय, औरंगज़ेब ने उदयपुर पर चढ़ाई कर दी। उसकी फौज ने अजमेर में आकर डेरा डाल दिया। उसने मथुरिया नामक दूत को राणा के पास भेजा। मथुरिया ने राजा के पुरोहित गरीब दास को अपनी ओर मिला लिया। पुरोहित ने दूत की तरफ से जो बात कहनी थी, वह कानों में कही – "हे राजा! तुम मुसलमान बन जाओ, तो तुम्हें पाँच परगनों की जागीर मिल जायेगी।"

यह सुनते ही राणा क्रोध से भड़क उठे और बोले –

"यदि तुम पुरोहित नहीं होते तो मैं तुम्हें अभी मार डालता। अब तुम इसी क्षण मेरे राज्य से बाहर चले जाओ। पाँच परगनों का लोभ दिखाकर मुझे मुसलमान बनने का उपदेश देते समय तुम्हें शर्म नहीं आयी। क्या तुम इस बात को भूल गये कि मेरी धमनियों में राणा साँगा तथा राणा प्रताप का रक्त बह रहा है?"

फिर दूत की ओर संकेत करते हुए राणा ने कहा—  
"इस तरह की बात सुनाने वाले इस दूत को भी धक्के मारकर बाहर निकाल दो। रे दूत! जाकर अपने बादशाह से कह देना कि राजपूतों की तलवारें युद्ध क्षेत्र में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

दूत के चले जाने के बाद तो यह निश्चित ही हो गया कि अब युद्ध अवश्य होगा। उदयपुर में युद्ध तथा प्रजा के बचाव की तैयारियाँ जोर-शोर से होने लगी।

श्री जी ने राणा राज सिंह के पास अपना सन्देश कहलवाया— "तुम औरंगज़ेब की फौज को यहाँ आने दो। मैं स्वयं उससे सारी बातें करूँगा। जो स्वयं इस्लाम का सच्चा राही नहीं है, उसे दूसरे को जबरन इस्लाम स्वीकार करवाने का क्या अधिकार है? तुम किसी भी प्रकार से परेशान मत होओ।"

राणा राज सिंह का उत्तर था— "मेरा छोटा सा राज्य है और बादशाह की सेना बहुत बड़ी है। धर्म सम्बन्धी वार्ता करने में काफी समय लगता है। हम उतने समय तक सारी सेना का खर्च नहीं वहन कर सकते।"

दरबार में उस समय राजपण्डित बैठे थे। वे शास्त्रार्थ में अपनी हार को अभी तक भुला नहीं पाये थे। उन्हें अपनी ईर्ष्या की अग्नि को बुझाने का अच्छा अवसर मिला।

आग में घी डालते हुए उन्होंने कहा – "राणा! हमने आपसे पहले ही कहा था कि इन लोगों का मुख देखना भी पाप है। इनकी असलियत सबके सामने आ ही गयी। इन्हें अपने राज्य से बाहर निकालने के सिवाय अन्य कोई भी चारा नहीं है।"

कुछ लोगों ने ये भी कहा कि इन्हें लूट लेना चाहिए। राणा सब सुनते रहे, लेकिन बोले कुछ नहीं।

राणा भीमसेन पास में ही बैठे थे। उन्होंने कहा – "अपने राज्य में यदि हिन्दू वैरागी लूटे जायेंगे, तो हमारी बहुत बदनामी होगी।"

राजा ने कोतवाल के माध्यम से कहलवाया – "हे सन्त जनों! बादशाह का आक्रमण होने वाला है। हमें आपकी सुरक्षा की चिन्ता है। आप लोग मात्र कुछ दिनों

के लिए चले जाइए। बाद में शान्ति हो जाने पर खुशी-खुशी आ जाइएगा। यह आपका ही राज्य है।"

औरंगज़ेब की सेना ने उदयपुर को चारों ओर से घेर लिया। मुख्य मार्गों पर रोक लगा दी गई थी, ताकि कोई भागने न पावे।

श्री जी ने अपने मन में विचारा कि लगता है कि अब श्री राज जी का ऐसा ही आदेश है कि हमें यहाँ से चल देना चाहिए। हमारे पास जो भी सामान है, उसे यहाँ पर बाँट देना चाहिए, क्योंकि इन्हें ढोकर कहाँ-कहाँ ले जाया जायेगा।"

फिर कोतवाल राणा का आदेश लेकर दोबारा आ गया- "राणा ने आपको यहाँ से चले जाने के लिए कहा है।"



श्री जी ने अब निर्णय ले लिया कि यहाँ रहना अब ठीक नहीं है। बप्पा रावल की सन्तान होकर भी जिसके मन में हमारे प्रति श्रद्धा भावना नहीं है, उसका राज्य छोड़ देना चाहिए। श्री राज जी जहाँ भी हमें ले जायेंगे, वहीं चले जायेंगे।

इसी समय महासिंह श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करने आये। श्री जी ने उन्हें शिरोपाव (सम्मान वाले सिर से पाव तक के वस्त्र) पहनाकर कहा— "अब हम तुम्हारे राज्य से विदा हो रहे हैं। यह सारा राज्य वीरान हो जायेगा। धाम धनी तुम्हारी रक्षा करें।"

राज्य में जो भी परिचित मन्त्री, विशिष्ट व्यक्ति, और सुन्दरसाथ थे, श्री जी ने सबको शिरोपाव, वस्त्र, बर्तन आदि भेट में दिया।

सभी सुन्दरसाथ ने वैरागियों का भेष धारण किया।  
सबने अपने हाथों में तुँबा, गुदड़ी, और सुमिरनी ले ली  
तथा वहाँ से चल पड़े।

(३०)

श्री जी के साथ सुन्दरसाथ की एक बहुत बड़ी जमात थी, जिसमें बच्चे थे, युवा थे, महिलायें थीं, और कुछ अधेड़ अवस्था वाले भी थे। सबने विरक्तों का भेष धारण कर रखा था।

सबके हृदय में एक ही प्यास थी, प्रियतम परब्रह्म को पाने की। इस नश्वर जगत में श्री जी को इस स्वरूप में पाकर सबने अपने घर-द्वार और सगे-सम्बन्धियों को भी छोड़ दिया था।

इनके लिए श्री प्राणनाथ जी के चरण ही एकमात्र आधार थे। वृक्षों के नीचे शयन था और सुन्दरसाथ ही सगे-सम्बन्धी थे।

श्री जी का मुखारविन्द पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान

सुशोभित हो रहा था। उन्होंने सिर के ऊपर गोटा और कनढपी पहन रखी थी। माथे पर तिलक था। गले में मालाए भी थीं। हाथों में तूम्बा , कंधे पर लटकती हुई गुदड़ी, और पैरों में खड़ाऊँ सुशोभित थी। उन्होंने आधी धोती को पहनकर आधी को ओढ़ भी लिया था। श्री जी की ये अलौकिक शोभा थी। श्री बाई जी सहित अन्य महिला सुन्दरसाथ ने भी फकीरी वेश धारण कर रखा था।

उदयपुर से रामपुरा के बीच में पूर्णमल चारण का गाँव था। वहाँ सुन्दरसाथ ने ईंटे बनाकर हवेली खड़ी कर दी। उसमें सभी निवास करने लगे। उनकी बूढ़ी माता सब सुन्दरसाथ की सेवा में तल्लीन थी। श्री प्राणनाथ जी के अलौकिक तेज से वह बहुत प्रभावित हो गयी थी।

राजा के भाई बेरीसाल के मन में पाप आ गया कि

यदि मैं इन वैरागियों को लूट लूँ, तो मुझे काफी धन मिल जायेगा। बेरीसाल के मन का पाप देखकर सुन्दरसाथ ने पूर्णमल चारण के घर सारी बात बतायी।

तब चारण की बूढ़ी माता अकेले ही बेरीसाल से लड़ने के लिए तैयार हो गयी। उसने गर्जते हुए कहा— "इन महात्माओं की तरफ जो बुरी नजर से देखेगा, मैं उसे गधे की तरह मारूँगी। ये लोग मेरे अतिथि हैं। इनकी रक्षा में यदि मैं मर भी जाऊँगी, तो भी मारने वाले को हत्या का महापाप लगेगा, किन्तु मेरे जीवित रहते हुए कोई भी इन पर बुरी नजर नहीं कर सकता।"

यह सुनकर बेरीसाल का मुख काला पड़ गया। उसने वहाँ से चुपचाप वापस चला जाना ही उचित समझा।

उस हवेली को छोड़कर श्री जी सहित सब

सुन्दरसाथ मन्दसौर आये। वहाँ हरप्रसाद के घर पर ठहर गये।

उस समय मन्दसौर के चारों ओर शाही सेना पड़ाव डाले थी। सुन्दरसाथ वहाँ पर सनन्ध की वाणी का गायन करने लगे, जिसे सुनने के लिए कुछ लोग आने लगे।

इन सुनने वालों में दौलत खान पठान, शेर खान कोहटी, तथा कई अन्य पठानों ने भी तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। जब "बिना एक मुहम्मद की" सनन्ध पढ़ी गयी, तो दौलत खान पठान को इस कदर जोश आया कि बारम्बार उसके मुख से यही शब्द निकलते।

औरंगज़ेब के आक्रमण से उदयपुर में वीरानी छा गई थी। बहुत से सुन्दरसाथ भी घर छोड़कर पहाड़ों में जा छिपे थे और दुखी होकर विलाप कर रहे थे। सबकी ओर

से पत्र लेकर कृपा राम जी आए। श्री जी सुन्दरसाथ का दुःख देखकर बहुत दुःखी हुए। तत्पश्चात् उनकी अन्तरात्मा ने मूल स्वरूप परब्रह्म से प्रार्थना की, जिसके परिणामस्वरूप किसी अति आवश्यक कार्यवश औरंगज़ेब को उदयपुर छोड़कर जाना पड़ा।

इस समय इब्राहिम नामक मौलवी श्री जी का दीदार करने हेतु आया। उसे बहुत ही अच्छा लगा। पुनः दूसरी बार भी दर्शन के लिए आया। तब लालदास जी ने उससे आग्रह किया कि कुरआन के एक प्रसंग की टीका करवा दीजिए।

तब इब्राहिम ने कुरआन की एक सूरत की टीका करवा दी, जिसे स्वयं श्री जी ने सुना। उसमें परमधाम और ब्रह्मसृष्टियों की साक्षी देखकर पूरी कुरआन का टीका करवाने का निर्णय लिया गया। इब्राहिम भी रुपया

लेकर टीका करवाने को राजी हो गया।

अगले दिन प्रातःकाल इब्राहिम आ गया। टीका का कार्य शुरू हो गया। सबसे पहले सोलहवें पारे की टीका प्रारम्भ हुई। उसे देखकर श्री जी बहुत खुश हुए।

पूरी रात टीका का कार्य चलता था। लालदास जी लिखते थे तथा श्री जी लेटे हुए सुनते रहते थे।

टीका करते-करते एक दिन इब्राहिम बोल पड़ा— "यह तो किसी अनपढ़ ने कलम चला दी है।"

तब श्री प्राणनाथ जी ने कहा— "यह तुमने क्या कह दिया? मुझे फिर सुनाओ।"

इब्राहिम ने कहा कि कुरआन में लिखा है— "अल्लाह तआला के जो भी सच्चे मानने वाले होते हैं, उनकी मायावी इच्छायें पूरी नहीं की जाती हैं।"



यह सुनकर श्री जी ने कहा— "यह प्रसंग परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिए है, संसारी जीवों के लिए नहीं। इस प्रसंग को हर कोई नहीं समझ सकता। इसमें जैसा लिखा है, उसे सही मानकर बिना किसी परिवर्तन के उसकी टीका करवाते चलो।"

जो भी टीका हो जाती थी, श्री जी उसे बाद में स्वयं पढ़ते थे। शाम को ही टीका प्रारम्भ हो जाती तथा प्रातःकाल की लालिमा फैलने तक यह कार्यक्रम चलता रहता।

इस प्रकार कुरआन के पारा सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, तीस, एक, दो, तीन, तथा चार का टीका हो गया। पाँचवें पारे का टीका चल ही रहा था कि इब्राहिम के मन में दज्जाल बैठ गया। उसने अपने मन में सोचा कि इन हिन्दू वैरागियों के लिए कुरआन का टीका करवाना

गलत है। मुझे अपना टीका इनसे छीन लेना चाहिए। इनसे टीका वापस लिए बिना मेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी।

तब बिना किसी प्रसंग के बहाने बनाकर वह झगड़ने लगा— "यह शरियत इजाजत नहीं देती कि किसी हिन्दू (गैर मुस्लिम) के पास कुरआन का टीका हो। इससे तो कुरआन ही नापाक हो जायेगी। मेरा कराया हुआ टीका वापस दीजिए। मैं इसे अपने घर ले जाऊँगा।"

लालदास जी समझ गये कि अब इसके मन में पाप आ गया है और यह अपने ईमान से गिर गया है। उन्होंने भी यह निर्णय कर लिया कि भले ही यह कितना भी शोर क्यों न मचाये, किसी भी कीमत पर इसे टीका नहीं देना है।

इनकी नोंक-झोंक देखकर श्री जी बोले- "टीका तो तुम्हें नहीं मिलेगी, चाहे तुम कुछ भी करो।"

मुहब्बत खान पठान ने जब यह बात सुनी, तो दौड़ा-दौड़ा श्री जी के चरणों में आया। उसकी आत्मा श्री प्राणनाथ जी के प्रति पूरी तरह समर्पित थी। उसने आकर देखा कि श्री जी कुछ उदास से हैं।

वह बोला- "मेरे हादी! आप कुछ उदास से लग रहे हैं।"

"ऐसी कोई बात नहीं है। इब्राहिम धमकी दे गया है कि यदि आप लोग टीका वापस नहीं देते हैं, तो मैं फौज द्वारा गिरफ्तार करवा दूँगा।"

"उस नाचीज की ये हिम्मत। मैं इसी मन्दसौर के बीच में उस जाहिल का सिर फोड़ दूँगा।"

यह कहते हुए मुहब्बत खान पठान ने अपने कंधे पर एक बड़ा सा लट्ट लिया और इब्राहिम के घर जा पहुँचा। इब्राहिम को गालियाँ देते हुए उसने उसकी पत्नी से पूछा— "कहाँ है इब्राहिम?"

उसकी पत्नी बोली— "वे तो निकाह पढ़ाने गये हैं।"

उसका पता लेकर मुहब्बत खान वहीं पहुँच गया। जाते ही कटु शब्दों से इब्राहिम को आवाज दी। इब्राहिम बाहर आया और बोला— "आप मेरे ऊपर इतने नाराज क्यों हैं? मैं तो आपका गुलाम हूँ। आप जो भी आदेश देंगे, मैं उसका पालन करूँगा।"

मुहब्बत खान ने कहा— "तूने मेरे हादी का दिल दुखाया है। पहले तो तुमने मुझसे कहा था कि ये मेरे सम्माननीय हैं, मैं तो इनका गुलाम हूँ। क्या अब उन

बातों को भूल गये हो? रसूलल्लाह मुहम्मद साहिब की कसम! अब मैं तुझे मार डालूँगा।"

थर-थर काँपता हुआ इब्राहिम मुहब्बत खान के चरणों में गिर पड़ा। गिड़गिड़ाते हुए बोला – "मेरी जान बख्श दो। मैं दोबारा इस तरह का गुनाह नहीं करूँगा।"

मुहब्बत खान ने कहा – "यदि तुम जिन्दगी चाहते हो तो श्री जी के चरणों में जाकर माफी माँगो। जब तक प्रत्येक सुन्दरसाथ क्षमा नहीं करेगा, तब तक तुम ये मत सोचो कि तुम्हारी जिन्दगी है।"

प्रातःकाल इब्राहिम दौड़ा-दौड़ा श्री जी के पास आया और अपना सिर उनके चरणों में रख दिया। बहुत कहने पर भी सिर नहीं उठाता था।

नूर मुहम्मद भी वहीं पर था। उसने रोष भरे स्वर में

कहा- "उठ, खड़ा हो जा मुर्दार! मन में तो आ रहा है कि मैं तुम्हारे पेट में कटारी मारकर तुम्हें खत्म कर दूँ, लेकिन मैं मजबूर हूँ कि ऐसा करने के लिए हादी का हुक्म नहीं है। नहीं तो इतना दुर्व्यवहार करने के बाद तू जिन्दा नहीं रह सकता था।"

इब्राहिम ने गिड़गिड़ाते हुए कहा- "मैं तो आपका गुलाम हूँ। मुझसे भूल हो गयी। मुझे माफी दी जाये। मैं आपके पाँव पकड़ता हूँ। अब मैं कभी भी इस तरह की गुस्ताखी नहीं करूँगा।"

नूर मुहम्मद के पाँव पकड़ने के बाद उसने एक-एक कर सभी सुन्दरसाथ के पाँव पकड़े। तब सभी ने उसे क्षमा कर दिया।

तब इब्राहिम के भाई ने पाँचवें पारे का टीका करवाना

प्रारम्भ किया। जैसे ही पाँचवें पारे का टीका पूरा हुआ, दज्जाल का अत्याचार शुरू हो गया।

इब्राहिम ने माफी अवश्य माँग ली थी, लेकिन उसके मन में खोट था। वह किसी भी स्थिति में इस बात को पचा नहीं पा रहा था कि हिन्दू वैरागियों के पास कुरआन का टीका हो।

अपने मन का गुब्बार निकालने के लिए उसने शाही फौज के सिपहसालार के पास जाकर भड़काया – "यहाँ पर बहुत से हिन्दू वैरागी आये हुए हैं। वे कुरआन पढ़ते हैं तथा इनके पास कुरआन का टीका भी है। इनके पास कुरआन रहने से वह नापाक हो जाएगी। बिना कलमा पढ़े और मुहम्मद पर ईमान लाये, किसी भी गैर मुस्लिम को कुरआन पढ़ने की इजाजत शरियत में नहीं है। दीन-ए-इस्लाम की हिफाजत के लिए इन वैरागियों को आप

पकड़वाइए।"

मुगल सेना सुन्दरसाथ को पकड़ने के लिए चारों तरफ खोजने लगी। सुन्दरसाथ अलग-अलग होकर छिप गये। श्री जी का दर्शन करने हेतु एक बार आते थे और आहार के लिए घर-घर जाकर भिक्षा माँग लाते थे।

प्रियतम परब्रह्म की यह कैसी लीला है? जिन ब्रह्ममुनियों की चरण धूलि से यह ब्रह्माण्ड पवित्र हुआ है, जिनकी मेहर की छाँव तले यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शाश्वत मुक्ति को प्राप्त करेगा, वही मायावी जीवों के घर-घर से भिक्षा ग्रहण करते थे।

इन ब्रह्ममुनियों में वेदान्त के विद्वान भीम भाई थे, चिन्तामणि जैसे गादीपति थे, लालदास जी जैसे धनवान व्यक्ति थे, फिर भी इनके लिए श्री जी का आदेश सर्वोपरि



था।

सबकी लायी हुई भिक्षा एक जगह एकत्रित की जाती थी। श्री जी कभी-कभी झोली उठाकर पूछते थे कि यह किसकी झोली है? झोली वाला हँसते हुए बताता था कि यह मेरी झोली है। बिना किसी गिले-शिकवे के हर सुन्दरसाथ आपस में यही कहता था कि इतने मस्ती भरे दिन फिर कभी नहीं आयेंगे।

श्री बाई जी ने इस समय सुन्दरसाथ की बहुत अधिक सेवा की। कोई किसी पर भी शक नहीं करता था। सब एक-दूसरे की सेवा में तल्लीन थे तथा आत्मीय प्रेम की रसधारा में डूबे हुए थे। यहाँ की इस स्थिति ने सुन्दरसाथ की सांसारिक मैं खुदी के बन्धनों को बहुत कुछ ढीला कर दिया।

दुधलाई गाँव रामपुर के पास ही स्थित है। श्री जी ने दुधलाई से केशवदास, खिमाई भाई, और वल्लभ जी को मुकुन्ददास जी के साथ राजा भावसिंह के पास भेजा। श्री जी ने मुकुन्ददास जी को यह निर्देश दिया कि पहले तुम भावसिंह को ज्ञान चर्चा द्वारा जाग्रत करो। जब वह मुझे बुलाने के लिये कहें, तो लिखना, मैं आ जाऊँगा।

मुकुन्ददास जी ने जाकर राजा भावसिंह को ज्ञान चर्चा सुनाई। भावसिंह को बहुत अच्छा लगा और उन्होंने श्री जी को औरंगाबाद लिवा लाने के लिए आग्रह किया।

मुकुन्ददास जी ने मन्दसौर आकर सारी बात बतायी। तब सब सुन्दरसाथ वहाँ से चलने के लिए तैयार हुए। मन्दसौर में अब तक आठ महीने बीत चुके थे।

## (३१)

औरंगाबाद पहुँचने के बाद मुकुन्द दास और खिमाई भाई विरक्त भेष में रहकर यह प्रयास करते रहे कि किसी भी तरह से राजा भावसिंह से भेंट हो जाये।

लेकिन जब वे सफल न हो सके, तो निराश होकर लौटने की इच्छा करने लगे, किन्तु पुनः आत्मिक बल ने जोर पकड़ा। उन्होंने सोचा कि मैं कौन सा मुँह लेकर श्री जी के सामने जाऊँ? दिल्ली में १२ सुन्दरसाथ ने तो औरंगज़ेब जैसे बादशाह से बात कर ली और मैं एक हिन्दू राजा से भी बात करने में असफल रहा। अब तो, हर हालत में बात करनी ही होगी।

यदि किसी महान कार्य में दृढ़ संकल्प से लगा जाये तो उस अनन्त शक्ति का सम्बल अवश्य ही प्राप्त होता

है। हिमालय से निकलने वाली गंगा के लिये मार्ग का बन जाना अवश्यम्भावी है।

मुकुन्द दास तथा खिमाई भाई ने भिक्षा माँगी। उससे मिले हुए धन से उन्होंने प्रसाद तैयार किया। उस प्रसाद को उन्होंने रेशमी कपड़े की थैली में रखा। साथ ही उसमें वेदान्त तथा भागवत के कुछ प्रश्न भी डाल दिये। प्रसाद देने के लिये वे राजमहल में गये तथा राजा भावसिंह से भेंट कर आ गये।

राजा के गुरु महन्त रामदास ने मुकुन्द दास को बाजार में घूमते हुए देख लिया। बस फिर क्या था?

रामदास ने मुकुन्द दास जी के ऊपर डण्डे बरसाना शुरू कर दिया। मारते-मारते वह मुकुन्द दास को नाले के पार पहुँचा आया और हिदायत भी दी कि यदि तुम

औरंगाबाद में रहोगे तथा भावसिंह को भटकाओगे, तो इससे भी बुरी मार मारूँगा।

यह कैसा जगत है, जिसमें अध्यात्म क्षेत्र का एक उपदेशक दूसरे उपदेशक को ईर्ष्याविश डण्डों से मारता है? निःसन्देह ईर्ष्या की अग्नि रुई की अग्नि से भी अधिक प्रज्वलित होती है, किन्तु अध्यात्म का चोगा पहनकर किसी को भी शारीरिक या मानसिक प्रताड़ना देना क्या अध्यात्म को कलंकित करना नहीं है?

अब मुकुन्ददास जी ने विचार किया कि यह राजगुरु तो बहुत ही क्रूर व्यक्ति है। यह मुझे किसी भी कीमत पर भावसिंह से मिलने देने के लिये तैयार नहीं है। अब मुझे इससे बहुत ही सावधान रहना होगा।

एक ही तरीका है कि मैं भावसिंह से वहाँ मिलूँ, जहाँ

रामदास न हो। देवी के उस मन्दिर में दर्शन करने राजा भावसिंह हमेशा ही आता है। मुझे उसी में छिपकर रहना चाहिए तथा अवसर मिलते ही राजा को प्रसाद और प्रश्नों की पाती भेंट करनी चाहिए।

ऐसा सोचकर मुकुन्ददास उस देवी के मन्दिर में छिपकर बैठ गये। जब राजा भावसिंह प्रणाम करने के लिये आये, तो मुकुन्द दास जी ने उन्हें थैली में रखकर प्रसाद और प्रश्नों की पाती भेंट की।

राजा भावसिंह ने बहुत श्रद्धापूर्वक उस थैली को ग्रहण किया। अपने महल में जाकर उन्होंने मुकुन्ददास जी को अन्दर बुलवाया और पूछा— "श्री प्राणनाथ जी कहाँ हैं? उन्होंने आपको मेरे पास क्यों भेजा है? आपकी इच्छा क्या है?"

यह कहकर राजा भावसिंह प्रश्नों की उस पाती को खोलकर पढ़ने लगे। उसमें लिखे हुए भागवत तथा वेदान्त के प्रश्नों पर बातचीत शुरू हो गयी।

वहीं पर ईर्ष्या और क्रूरता की प्रतिमूर्ति राजगुरु रामदास भी बैठा हुआ था। उसने जलते-भुनते हुए कहा— "ये तो कहते हैं कि श्री कृष्ण जी दो हैं। एक तो बाल मुकुन्द और दूसरे किशोर स्वरूप वाले बाँके विहारी। ऐसा किसी भी ग्रन्थ में नहीं लिखा है। इनका तो मुख भी नहीं देखना चाहिए। ऐसे लोगों से चर्चा ही करना निरर्थक है।"

भाव सिंह ने कहा— "आप ऐसा क्यों कहते हैं? ये तो बिल्कुल ही सच-सच ज्ञान देते हैं। ये हमारी आत्मा के निज स्वरूप की पहचान कराते हैं।"

राजा भाव सिंह की तेज आँखों ने यह पहचान लिया कि राजगुरु रामदास के मन में मुकुन्ददास जी के प्रति शत्रुता के भाव हैं, फिर भी उन्होंने शालीनता बरतते हुए कहा कि मुकुन्ददास जी को मेरी हवेली के पास ही रहने की जगह दी जाए।

अपने हृदय की कटुता को दबाकर बनावटी स्नेह दिखाने का प्रयास करते हुए रामदास बोला— "मैं अपने घर ले जाकर इनकी सेवा करना चाहता हूँ।"

यह सुनते ही मुकुन्ददास जी के शरीर में सिहरन सी दौड़ गयी। वे तुरन्त ही बोल पड़े— "नहीं, नहीं! महाराज! मुझे इनके घर भूलकर भी नहीं भेजिए। यह देखिए, मेरी पीठ.....।"

यह कहते हुए मुकुन्ददास जी ने अपना वस्त्र उतारा।



उनकी पीठ पर डण्डों के निशान अभी भी साफ नजर आ रहे थे। उसे देखकर राजा भावसिंह बहुत दुःखी हो गये। उन्होंने राजगुरु रामदास को गाली देकर धक्का दे दिया और बोले— "जो भी साधु-सन्त मेरे यहाँ आते हैं, तुम उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करते हो। अभी मेरे महल से तुम बाहर निकल जाओ।"

इसके पश्चात् भाव सिंह ने मुकुन्द दास जी से कहा— "हे महात्मन्! आपको यहाँ जो कुछ भी कष्ट हुआ, उसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ। आपका मेरे राज्य में स्वागत है।"

मुकुन्द दास जी बोले— "मुझे अब किसी से कोई भी शिकायत नहीं है।"

राजा ने गम्भीर वाणी में अपने पण्डितों को सम्बोधित करते हुए कहा— "यह हमारा सौभाग्य है कि

हमारे राज्य में महान सन्त श्री मुकुन्द दास जी आये हुए हैं। इनके कुछ प्रश्न हैं, जो भागवत और वेदान्त से सम्बन्धित हैं। मैं उन प्रश्नों को आप लोगों से पूछता हूँ और आशा करता हूँ कि आप लोग उन प्रश्नों का यथोचित उत्तर देंगे।"

राजा भाव सिंह ने प्रश्न पढ़ना शुरू कर दिया। प्रश्नों को सुनकर ही पण्डितों के चेहरों पर घबराहट बढ़ने लगी। कुछ सन्नाटे के अन्दर उत्तर के सम्बन्ध में कानाफूसी भी चलती रही। संकेतों से पण्डितों ने आपस में यह मान लिया कि उनमें से किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर समझ में नहीं आ रहा है। अपनी कमजोरी छिपाने के लिये इन्होंने निन्दा का सहारा लिया। समवेत स्वर में वे बोले— "ये सारे प्रश्न बेढंगे हैं। इनको बनाने वाला ही अनाड़ी प्रतीत होता है। शास्त्रों में इस तरह की कहीं भी

कोई बात नहीं है।"

भावसिंह पण्डितों की परेशानी समझ रहे थे। सपाट स्वर में उन्होंने कहा – "आपको उत्तर नहीं आता, तो प्रश्नों को ही गलत ठहराना नादानी है। यह बात तो वैसे ही है कि 'नाच न जाने, कहे आगन टेढ़ा'।"

मुकुन्ददास जी ने कहा – "निष्पक्ष निर्णय के लिये एक ही रास्ता है कि पण्डितजन मुझसे प्रश्न पूछें तो मैं उत्तर दूँ और मैं पूछूँ तो पण्डितजन उत्तर देवें। जिसको उत्तर नहीं आयेगा, उसके सिर पर जूता रखकर चारों ओर घुमाया जाये, ऐसी शर्त होनी चाहिए।"

पण्डितों द्वारा यह शर्त स्वीकार कर ली गयी। पण्डितों ने अस्सी प्रश्न लिखे तथा मुकुन्ददास जी ने मात्र तेईस प्रश्न।

मुकुन्ददास जी ने उसी दिन ८० प्रश्नों का उत्तर दे दिया। पण्डितों को मुकुन्ददास जी के प्रश्न समझ में ही नहीं आ रहे थे कि इनका क्या उत्तर दिया जाये। अन्त में उन्हें १५ दिन का समय दिया गया।

पण्डितों को प्रतिदिन दरबार से धन मिला करता था। राजा भावसिंह ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि अब आप लोगों को पैसा तभी मिलेगा, जब इन प्रश्नों का उत्तर देंगे।

पण्डितों ने कई दिनों तक बहुतेरा प्रयास किया कि इन प्रश्नों का हल निकाल लें, लेकिन उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया। राज दरबार से पैसा मिलना तो बन्द हो ही गया था। अब उनके सामने भोजन के लाले पड़ने की सम्भावना नजर आने लगी थी।

एक दिन सभी पण्डित मिलकर मुकुन्द दास जी के पास आये और बोले- "यदि श्री प्राणनाथ जी यही चाहते हैं कि पण्डितों के परिवार वाले भूखे मरें , तो हमारा कोई वश नहीं। हम सन्तोष कर लेंगे कि हमारे भाग्य में यही है, नहीं तो हमारी रोजी-रोटी की व्यवस्था कीजिए। जहाँ तक हार-जीत की बात है, हम यह लिखकर देते हैं कि हम लोग आपसे दस बार हारे, हारे, हारे.....।"

तब मुकुन्द दास जी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा- "आप चिन्ता न करें। मैं राजा से इस सम्बन्ध में बात करूँगा।"

मुकुन्द दास जी ने राजा भाव सिंह के पास जाकर कहा- "जिन प्रश्नों का उत्तर आज तक नहीं हो पाया , उन प्रश्नों का उत्तर तारतम्य ज्ञान से रहित ये पण्डित

लोग भला कैसे दे सकते हैं? इन प्रश्नों में प्रकृति से परे अखण्ड धाम से सम्बन्धित बातें हैं, जिनका उत्तर संसार में तारतम्य ज्ञान से रहित कोई भी नहीं दे सकता।"

तब भाव सिंह बोले- "आपके आग्रह से मैं केवल इतनी छूट दे सकता हूँ कि अब इनको पहले से आधी धनराशि मिला करेगी।"

प्रातःकाल मुकुन्द दास जी ने पण्डितों से मिलकर कहा कि मैंने आप लोगों का काम कर दिया।

अब मुकुन्द दास जी ने राजा भावसिंह को चर्चा सुनानी प्रारम्भ की। पाताल से लेकर परमधाम का सारा ज्ञान धर्मग्रन्थों के प्रमाणों से समझाया। भाव सिंह ने दो-तीन दिन तक श्रद्धापूर्वक श्रवण किया और तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।

अब भाव सिंह ने श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान करके मुकुन्द दास जी से कहा- "आप श्री जी को सम्मानपूर्वक लेकर आइए। मैं इसके लिये घोड़ा देता हूँ तथा आप बूँदी से हथिनी ले लीजिए।"

इसके अतिरिक्त एक पत्र भी लिखकर दे दिया , जिसमें यह आदेश था कि बूँदी में एक हवेली की व्यवस्था की जाये, जिसमें श्री बाई जी को ठहराया जाएगा।

मुकुन्द दास जी औरंगाबाद से चलकर मन्दसौर पहुँचे। श्री प्राणनाथ जी को लाने के लिये वे घोड़े की व्यवस्था भी करके गये थे।

घोड़े की सवारी पर श्री जी को बिठाकर सब सुन्दरसाथ सहित मुकुन्द दास जी मन्दसौर से चलकर

औरंगाबाद पहुँचे।



## (३२)

श्री जी जैसे ही हवेली में पहुँचे, भाव सिंह ने आकर चरणों में शीश झुकाया। धाम धनी श्री प्राणनाथ जी का दर्शन करके उन्होंने अपने को धन्य-धन्य माना।

भाव सिंह ने श्री जी सहित सब सुन्दरसाथ को अपनी हवेली में ठहराया तथा सच्चे हृदय से सेवा करने लगे। एक बार सुन्दरसाथ नरसैया के पद गा रहे थे। भाव सिंह उसे सुनकर इतने भाव विह्वल हो गये कि स्वयं को रोक नहीं सके और सारी राजकीय मर्यादाओं को भुलाकर सबके सामने नाचने लगे।

उनमें श्री जी के प्रति कोई संशय नहीं था। वे सच्ची भक्ति भावना के साथ उनकी सेवा करते थे। जब रास लीला के कीर्तन गाये जाते थे, तब वे बहुत प्रसन्न होते

थे।

एक दिन श्री प्राणनाथ जी ने भाव सिंह से कहा— "जिस प्रकार हिन्दू धर्मग्रन्थों में मुझे 'विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप' या 'अक्षरातीत' कहा गया है, उसी प्रकार कुरआन-हदीसों में भी मुझे 'आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां' कहा गया है।"

यह सुनकर भाव सिंह ने कहा— "मेरे दरबार में चार अधिकारी मुसलमान हैं। आप उन्हें कुरआन द्वारा समझाइए। यदि वे स्वीकार कर लेंगे कि कुरआन और हदीसों के कथनानुसार आप ही आखरूल इमाम मुहम्मद महदी हैं, तो मैं औरंगजेब से लड़ने के लिये तैयार हूँ।"

तब श्री जी ने कहा— "अपने उन मुस्लिम अधिकारियों को मेरी चर्चा सुनने के लिये भेजो। उनको

मैं कुरआन-हदीसों की साक्षियों से समझाऊँगा। मेरे वचनों में आस्था रखकर वही कहेंगे कि कुरआन के अनुसार ये ही आखरूल इमाम हैं। उस समय तुम्हें धर्म रक्षा के लिये तैयार हो जाना चाहिए।"

तब भाव सिंह ने स्पष्ट रूप से कह दिया – "हे श्री जी! आप मेरे अधिकारियों को समझाइए। यह तो बहुत बड़ी बात है। इसके पश्चात् मेरा यह तन-मन-धन आपके चरणों में अर्पित है।"

इसके पश्चात् प्रातः-सायं दोनों समय चर्चा प्रारम्भ हो गयी। इस समय भवानी भट्ट आये, जो उदयपुर के रहने वाले थे। उदयपुर में श्री जी से उनका परिचय हो चुका था। श्री जी का दीदार पाकर वे बहुत आनन्दित हुए। दक्षिण भारत से वे बुद्ध गीता तथा बुद्ध स्तोत्र लेकर आए थे, जिसमें श्री प्राणनाथ जी की पहचान है।

भाव सिंह के दरबार में चार मुस्लिम अधिकारी थे— अक्कल खान, मिहीन खान, जहान मुहम्मद, और फतह मुहम्मद।

सबसे पहले चर्चा सुनने अक्कल खान आये। यह वही अक्कल खान हैं, जिन्होंने उदयपुर में श्री जी की पहचान होने पर अपने शरीर को अपने ही कोड़े से पीटना शुरू कर दिया था।

आते ही उन्होंने अपने परवरदिगार को पहचान लिया। इसके पश्चात् वे जहान मुहम्मद तथा महीन खान को बुला लाये। कुछ दिनों की चर्चा सुनते ही महीन खान को ईमान आ गया और उन्होंने तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया।

जहान मुहम्मद को सम्पूर्ण कुरआन कण्ठस्थ थी।

पढ़े-लिखे लोगों में उनकी ख्याति अरबी खान के नाम से थी। वह सभी पठानों को कुरआन की तालीम दिया करते थे। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उस तन में परमधाम की आत्मा विराजमान थी।

भवानी भट्ट साढ़े दस बजे तक बुद्ध गीता तथा बुद्ध स्तोत्र आदि ग्रन्थों की चर्चा करते थे। उसके पश्चात् श्री जी दोपहर का भोजन करके सेज्या पर पौढ़ते थे।

संध्या आरती के पश्चात् श्री जी की चर्चा प्रारम्भ होती थी। एक तरफ श्री लालदास जी कुरआन लेकर तथा दूसरी तरफ भवानी भट्ट भागवत लेकर बैठते हैं।

श्री जी भागवत तथा कुरआन से वेद-कतेब का एकीकरण करते हैं। यदि कोई जिज्ञासावश प्रश्न भी करता है, तो तत्काल ही उसका समाधान हो जाता है। श्री जी

की अलौकिक चर्चा को सुनकर सुन्दरसाथ आनन्दमग्न हो जाते हैं।

जहान मुहम्मद दो माह तक निष्ठापूर्वक चर्चा सुनते हैं और बहुत प्रभावित भी होते हैं, लेकिन एक दिन लालदास जी तथा उत्तमदास जी ने उनसे परमधाम की लीला तथा युगल स्वरूप की शोभा का वर्णन कर दिया। यह बात जहान मुहम्मद को बहुत नागवार गुजरी, क्योंकि हदीसों के कथनानुसार – "अल्लाह तआला की सूरत-ए-हाल का वर्णन केवल अल्लाह तआला ही कर सकते हैं। यदि कोई दूसरा ऐसा करता है, तो वह काफिर है।"

जहान मुहम्मद जाते समय यह कह गये कि आप काफिर हैं, जो खुदा की सूरत-ए-हाल का वर्णन करते हैं। अब मैं आप लोगों का दिया हुआ जल भी ग्रहण नहीं करूँगा। मैंने दो माह तक चर्चा सुनी, फिर भी मेरी आत्मा

निर्मल नहीं हुई।

उत्तम दास जी ने श्री जी से प्रार्थना की- "हे धाम धनी! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं जहान मुहम्मद को बुला लाऊँ।"

श्री जी ने कहा- "उसने मेरी चर्चा सुनी है। वह घर पर शान्ति से रह ही नहीं पाएगा। तुम देखना, वह कल अवश्य ही आयेगा।"

दूसरे दिन जहान मुहम्मद स्वयं ही आ गया और श्री जी से बोला- "आप मुझे वास्तविक रहस्य क्यों नहीं समझाते हैं? मुझे आपके ही चरणों की आशा है।"

श्री जी ने कहा- "तुम आठ दिन तक श्रद्धाभाव से मात्र एक प्रहर की चर्चा सुनो। फिर देखना, तुम्हें सब कुछ समझ में आ जाएगा।"

जब चर्चा सुनने जहान मुहम्मद आया, तो उसने एक प्रश्न किया कि कियामत के समय कब्रों से मुर्दे कैसे उठेंगे?

श्री जी ने कुरआन की साक्षी देकर बताया— "जहान मुहम्मद! यह शरीर ही कब्र है और इस शरीर के अन्दर विराजमान रूह सोई हुई है। उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि—

"अल्लाह तआला ने रूहों तथा नूर जलाल की इच्छा पूरी करने के लिए इस फानी दुनिया को बनाया। इस दुनिया में ब्रज की लीला तथा योगमाया में रास की लीला करके दोनों की इच्छा पूरी की। नूर जलाल की रूह ही ब्रज-रास के पश्चात् अरब में मुहम्मद साहिब के रूप में अवतरित हुई, जिन्होंने कुरआन का ज्ञान दिया। उन्होंने वायदा किया कि मैं फिर उस समय आऊँगा, जब ब्रज



तथा रास वाली रूहें फिर आयी होंगी। उस समय स्वयं अल्लाह तआला सबका न्याय करेंगे। उस समय अक्षर और अक्षरातीत (नूर और नूर तजल्ला) की पहचान सभी कर लेंगे और उस परमधाम को याद करेंगे, जहाँ से रूहें खेल देखने आयी हैं। इसके परिणामस्वरूप अखण्ड मुक्ति की प्राप्ति जीव को होगी तथा आत्मा अपने निज घर जायेगी। इसे ही कब्रों से मुरदों का उठना कहते हैं। जाहिरी शरीर तो कब्र में ही नष्ट हो जाता है, भला उससे कौन उठेगा?"

यह सुनते ही जहान मुहम्मद के ज्ञान-चक्षु खुल गये। कुरआन की हकीकत और मारिफत का ज्ञान होते ही उसकी आत्मा अध्यात्म-सुधा का पान करने लगी।

अब तो नित्य ही अव्वल खान, मिहीन खान, और जहान मुहम्मद चर्चा में आते, उनके साथ कई अन्य

मुसलमान भी आते थे। चर्चा के समय जब कभी भी परमधाम (लाहूत) का जिक्र आता, तो प्रेम के जोश में जहान मुहम्मद गिर पड़ता। उस समय श्री जी उसके सिर पर बहुत ही प्यार से हाथ रखकर दिलासा देते कि तुम परमधाम की आत्मा हो। किसी भी बात की चिन्ता मत करो।

रात्रि में जो चर्चा होती थी, वह प्रायः भोर के साढ़े चार बजे तक चलती रहती थी। उसके पश्चात् श्री जी हिंडोलों के पलंग पर पौढ़ते थे। सुन्दरसाथ में आत्म-जाग्रति की इतनी लगन थी कि उस समय भी रास की रामतें गाना शुरू कर देते थे। ऐसा करते-करते प्रातःकाल हो जाता था। प्रतिदिन ही उत्सव-कीर्तन होते रहने से सुन्दरसाथ आनन्द में डूबा रहता था। इस प्रकार यह लीला चार माह तक चलती रही।

रात्रि में निद्रा का सुख केवल संसारी लोगों के लिये ही होता है। अध्यात्म सुख की कामना करने वालों के लिये रात्रि जागरण के लिये ही होती है, निद्रा या विलास के लिये नहीं।

जब पठान फतह मुहम्मद ने देखा कि मेरे अन्य साथी अक्बल खान, मिहीन खान, और जहान मुहम्मद एक हिन्दू वैरागी के शिष्य बन चुके हैं, तो उसने जहान मुहम्मद से कहा— "तुम मुझे भी इन वैरागी की पहचान कराओ। तुम कुरआन के इतने बड़े विद्वान होकर भी एक हिन्दू वैरागी को खुदा का स्वरूप मान रहे हो, इसे सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य होता है। मैं तुम्हें ये चालीस हदीसों देता हूँ। यदि ये हिन्दू वैरागी इनके भेदों को स्पष्ट कर देंगे, तो मैं भी मान लूँगा कि ये आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां हैं।"

उन हदीसों को जहान मुहम्मद श्री जी के पास लाया और सारी बातें बतायी।

श्री जी ने कहा- "यदि तुम तारतम्य ज्ञान प्राप्त कर लो, तो इनके भेद तुम भी खोल सकते हो।"

जब जहान मुहम्मद ने तारतम्य की इच्छा की और श्री जी ने उसे प्रदान किया, तो जहान मुहम्मद को अध्यात्म के वास्तविक स्वरूप की पहचान हो गयी। उसे उन चालीस हदीसों की हकीकत तथा मारिफत के सारे भेद स्पष्ट हो गये। उसकी आत्मिक दृष्टि ने परमधाम में विराजमान अक्षरातीत परब्रह्म का भी दीदार कर लिया।

इसके पश्चात् जहान मुहम्मद फतह मुहम्मद के पास गया और कहा- "तुम मुझसे इन चालीस हदीसों के भेद पूछ सकते हो।"

फतह मुहम्मद के पूछने पर उसने सबके गुह्य भेद स्पष्ट कर दिया। फिर फतह मुहम्मद ने कहा – "मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ। यदि तुम इसका उत्तर दे दोगे, तो मैं तुम्हारे ऊपर पूरी तरह विश्वास कर लूँगा कि ये हिन्दू वैरागी सचमुच आखरूल इमाम मुहम्मद महदी है। मेरा प्रश्न यह है कि खुदा की सूरत क्या है? यदि कुरआन-हदीसों में कहा गया है, तो मेरी खुशी के लिए उत्तर दो।"

जहान मुहम्मद ने उत्तर दिया – "एक आयत है – 'रुएतरवी फी लैल तुलमेराज।' यह आयत कुरान के पन्द्रहवें पारे की है। इसमें कहा गया है कि मेयराज (दर्शन) की रात्रि में मुहम्मद की रूह ने अल्लाह तआला की हसीन सूरत का दीदार किया। क्या इस प्रकार कुरआन का कथन नहीं है? यदि तुम्हारे मन में कुरआन के प्रति भी कोई शक है, तो मुझे बताओ?"

फतह मुहम्मद ने कहा— "कुरआन के इस कथन पर मुझे कोई भी शक नहीं है। यह भी सच है कि जिन हिन्दू वैरागी की कृपा से तुमने यह गुह्य भेद जाना है, वे ही आखरुल इमाम मुहम्मद महदी हैं, किन्तु हमारी मजबूरी है कि हम इस बात को जाहिर नहीं कर सकते, क्योंकि इस समय शरियत का राज्य है। यदि हम जाहिर करते हैं, तो औरंगज़ेब बादशाह हमें मरवा देगा।"

जहान मुहम्मद ने पूछा— "उन चालीस हदीसों के भी गुह्य अर्थ मैंने अपने हादी की कृपा से कर दिये। अब क्या कहते हो?"

फतह मुहम्मद ने कहा— "जब तक औरंगज़ेब बादशाह उन्हें आखरुल इमाम मुहम्मद महदी के रूप में स्वीकार न करे, तब तक हम कैसे कर सकते हैं?"

तब जहान मुहम्मद ने कहा – "जब तुम्हें कुरआन – हदीसों से साक्षी मिल रही है, तो तुम ऐसा क्यों कहते हो? तुम्हारा ईमान बादशाह पर ही है, अल्लाह तआला पर नहीं।"

इस बात पर दोनों में झगड़ा हो गया, तब जहान मुहम्मद ने पठान फतह मुहम्मद का साथ छोड़ दिया और श्री जी के पास चला गया।

इसके पश्चात् फतह मुहम्मद वहाँ के पठानों के पास गया और उनसे कहा कि वे जहान मुहम्मद को उस हिन्दू वैरागी के पास जाने से रोकें।

सभी पठानों ने जहान मुहम्मद से कहा – "तुम्हें उस वैरागी में क्या खासियत दिखायी दी है, जो तुमने उनके चरण पकड़े हैं?"

इस पर गर्मागर्म बहस होने लगी। श्री जी ने जब झगड़े की बात सुनी तो जहान मुहम्मद को समझाया—  
 "तुम इन जाहिल लोगों से झगड़ा मत करो। इनसे सावधान होकर रहना चाहिए।"

जहान मुहम्मद ने कहा— "वे मुझको मना कर रहे थे कि मैं आपके पास न आऊँ। यदि मैं उनका कहना मान लूँ, तो मेरा ईमान गिरा हुआ माना जाएगा। मैंने तो आपको इन आँखों से प्रत्यक्ष रूप से अल्लाह तआला के रूप में देखा है। भला मैं इनकी बातें कैसे मान सकता हूँ?"

पठानों ने आपस में निर्णय किया कि जहान मुहम्मद को मार डालें, क्योंकि उसने अपना इस्लाम धर्म छोड़ दिया है और एक हिन्दू वैरागी की शरण में चला गया है। सबसे पहले हमें उस वैरागी से ही लड़ना चाहिए। यह



सोचकर वे दस-बारह की संख्या में मिलकर उस समय आये, जब रात्रि को श्री जी की चर्चा चल रही थी।

रात्रि की उस चर्चा में सुन्दरसाथ दो समूहों में बँटा हुआ था। एक में पुरुष सुन्दरसाथ तथा दूसरे में महिलायें। श्री जी के आगे तसीर-ए-हुसैनी रखी थी। पीतल के दीपकों से चारों ओर प्रकाश फैल रहा था। सुन्दरसाथ श्री जी के साथ चर्चा-सत्संग में व्यस्त थे।

उन पठानों ने आते ही जोर-जोर से शोर मचाना शुरू कर दिया। वे बोले- "ए भगत जी! हम लोग आपसे लड़ाई करेंगे। तुम तिलक लगाते हो और माला पहनते हो। फिर, कुरआन भी पढ़ते हो। शरियत इस बात की इजाजत नहीं देती कि आप कुरआन की चर्चा करें या सुनें।"

तब श्री जी ने उत्तर दिया— "मैं तो खुदा और रसूल मुहम्मद साहिब से सबकी मुहब्बत का सम्बन्ध जोड़ता हूँ। तुम तो इस नेक काम में बाधा खड़ी कर रहे हो। इस तरह की शिक्षा तुमको किसने दी है?"

तब जहान मुहम्मद ने कहा— "मैं तुम्हारा उस्ताद हूँ। तुम मुझसे तालीम लेते थे। इस समय तुम्हारे अन्दर इतना बड़बोलापन क्यों आ गया है?"

इस बहस में मिहीन खान, गाजी खान, अव्वल खान, और जहान मुहम्मद के ऊपर जिबरील का असर हुआ। इनका जोश देखकर लड़ने आये पठानों के होश उड़ गये। वे कहने लगे— "ए भगत जी! हमें माफ कीजिए। हमें आपसे कोई भी गिला-शिकवा नहीं है। अब हम यहाँ से जा रहे हैं।"

यह कहते हुए वे भाग गये, किन्तु उन्होंने वहाँ की सेना में यह बात फैला दी— "यारों! यह वैरागी तो बहुत बड़ा जादूगर है। जो भी मुसलमान इसके पास जाता है, वह इसी को अल्लाह तआला मानने लगता है।"

जब भाव सिंह को मालूम हुआ कि उसके दरबार के मुस्लिम अधिकारियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि श्री प्राणनाथ जी ही आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां हैं, तो वह शरियत के विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार हो गया। किन्तु, उसके मन में चमत्कार की इच्छा हो गयी। उसने श्री जी से प्रार्थना की— "हे धाम धनी! मेरा तन, मन, और धन आपके चरणों में समर्पित है। मैं औरंगज़ेब के खिलाफ लड़ने के लिये तैयार हूँ। मेरी एक ही इच्छा है कि मैं परमधाम का दर्शन कर लूँ।"

श्री जी ने उसे समझाया— "भाव सिंह! अभी तुम्हारा

राजसिक भाव गया नहीं है। उचित समय आने पर अवश्य ही दर्शन हो जायेंगे। अभी जल्दी न करो।"

किन्तु, भाव सिंह अपनी माँग पर अड़ा रहा। आखिरकार, श्री जी ने अभी जरा सी योगमाया की ही झलक दिखायी, तो भावसिंह का जीव वहाँ के प्रेम, सुख, और तेज की झलक को सहन नहीं कर सका। उसकी सुरता अक्षरधाम में लगी, तो लगी ही रह गयी। शरीर छूट गया।

कई दिनों के भूखे व्यक्ति को यदि एक ही दिन बहुत अधिक भोजन करा दिया जाये, तो स्थिति भयंकर हो जाती है। किसी कंगाल को यदि अचानक ही हीरों से भरी तिजोरी मिल जाये, तो वह पागल हो जाता है।

इसी प्रकार, यदि सांसारिक दुःखों की अग्नि में जलने

वाले जीव को अचानक ही ब्रह्म का दर्शन करा दिया जाये, तो वह उस अनन्त सुख को पाकर छोड़ने की इच्छा नहीं कर पाता। शरीर छूटने का मुख्य कारण यही है।

किन्तु, यदि उसने अपने हृदय को निर्मल बना लिया है, प्रेम से भर लिया है, तो उसमें धनी की कृपा से इतना आत्मिक बल पैदा हो जाता है कि वह साक्षात्कार के सुख को आत्मसात् कर लेता है तथा सुख हटने पर भी शरीर को जीवित रखने का धैर्य रखता है। ऐसे लोगों का शरीर कभी भी नहीं छूटता। प्रेम के इस मार्ग में कभी भी उतावलापन नहीं दर्शाना चाहिए, बल्कि परब्रह्म की कृपा पर आश्रित होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए।

फतह मुहम्मद जो राजा भावसिंह का दीवान था, श्री जी के स्वरूप को जानते हुए भी उसने शरियत की रक्षा

के लिए सेना को हुक्म दे दिया कि औरंगाबाद में आए हुए सभी वैरागियों को कैद कर लिया जाये।

श्री जी फतह मुहम्मद के ही मुहल्ले में उसी की हवेली के पास एक मुल्ला के घर पर ठहर गए, इसलिये कोई सोच ही नहीं सका कि श्री जी यहाँ पर हो सकते हैं।

उस मुल्ला को पैसे से कुरआन का टीका करवाने का वायदा कराया गया। टीका का कार्य शुरू हो गया। इस कार्य में लालदास जी लग गये।

सारी फौज सुन्दरसाथ को ढूँढती फिर रही थी। अचानक उसकी पकड़ में भवानी भट्ट आ गये। सिपाहियों ने उन पर दबाब बनाया कि हमें वैरागियों को दिखाओ। हम खोजते-खोजते थक गये हैं। किसी प्रकार झांसा देकर भवानी भट्ट फौज के चंगुल से निकल भागे।

औरंगाबाद के भड़कल दरवाजे पर फौज को लोगों ने यह कहकर झांसा दे दिया कि सब वैरागी चले गये हैं, अब उनको खोजने के लिये भटकना व्यर्थ है।

जहान मुहम्मद फतह उल्लाह के घर आया। वहाँ पास में कुछ सुन्दरसाथ को देखकर उनसे पूछा कि श्री जी कहाँ हैं?

सुन्दरसाथ ने बता दिया कि वे तो इस हवेली में ही हैं। जहान मुहम्मद ने कहा— "यह फतह उल्लाह का मुहल्ला है। आप लोगों को फतह उल्लाह के आदमी ढूँढते फिर रहे हैं। मुझे सबसे पहले यह बताइए कि श्री जी कहाँ पर हैं? उसके पश्चात् यहाँ से तुरन्त निकल जाइए।"

सुन्दरसाथ जहान मुहम्मद को श्री प्राणनाथ जी के पास ले गये। जहान मुहम्मद ने सारी बात बतायी कि

किस प्रकार सारी फौज उन्हें ढूँढ रही है।

उस समय तक सूर्यास्त होने लगा था। श्री जी एवं लालदास जी, जो कुरआन का टीका मुल्ला से करवा रहे थे, उसे बन्द कर दिया। अब तक जो भी टीका हो पाया था, उसे चरन दास जी के जिम्मे सौंप दिया गया। रात ही रात सब सुन्दरसाथ ने सात कोस की दूरी तय कर ली।

अब फौज उनका क्या बिगाड़ सकती थी। श्री जी सहित सब सुन्दरसाथ बुरहानपुर पहुँच चुके थे।



## (३३)

एक के बाद एक लगातार कष्टों का अनुभव करने से सुन्दरसाथ विचलित से होने लगे थे। दिल्ली में सिद्धीक फौलाद के हाथों कोड़ों की यातना सहना, उदयपुर में वैरागी भेष धारण करना, तथा मुगल सेना के आक्रमण के कारण वहाँ से चलने के लिये विवश किया जाना, मन्दसौर में कई माह भिक्षा द्वारा अपना गुजारा चलाना, पुनः औरंगाबाद में फौज से छिपते-छिपते फिरना। इन घटनाओं ने सुन्दरसाथ के हृदय को झिंझोड़ कर रख दिया।

कितने उत्साह से वे घर-द्वार छोड़कर निकले थे। मन में उमंग थी कि जब प्रियतम परब्रह्म ही हमारे साथ-साथ हैं, तो हमें कभी भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उनके हृदय में हताशा ने अपना निवास बनाना

शुरु कर दिया था। उनके मन-मस्तिष्क में ये प्रश्न गूँजने लगे थे कि जब स्वयं श्री प्राणनाथ जी अक्षरातीत परब्रह्म के स्वरूप हैं, तो हमें इतना कष्ट क्यों झेलना पड़ रहा है? स्वयं श्री प्राणनाथ जी को भी भिक्षा में मिला हुआ भोजन मन्दसौर में करना पड़ा। जब दुनिया के देवी-देवता इतने सामर्थ्यवान हैं, तो अक्षरातीत कहलाने वाले श्री जी इन कष्टों को क्यों नहीं दूर कर देते? यदि हम परमधाम के ब्रह्ममुनि हैं, अक्षरातीत के अर्धांग हैं, तो हम इतनी परेशानियों से क्यों गुजर रहे हैं? दुनिया के जीव तो हमसे अच्छे हैं, जो देवी-देवताओं की भक्ति करके भी चैन की जिन्दगी जी रहे हैं।

अध्यात्म जगत का यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि अहं की ग्रन्थि को तोड़े बिना ब्रह्म का साक्षात्कार या शाश्वत आनन्द की प्राप्ति असम्भव है। सुख-दुःख, लाभ-हानि,

मान-अपमान सभी कुछ अन्तःकरण के ही धरातल पर अनुभव में आते हैं। चेतन के शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाने पर ये द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं।

अग्नि में तपाये बिना सोना कभी भी शुद्ध नहीं होता। संघर्षों की अग्नि में तपकर ही व्यक्तित्व में निखार आता है। किसी महान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये कष्टों का आलिंगन तो करना ही पड़ेगा। इसी कारण लक्ष्मण को चौदह वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए घोर तप करना पड़ा, सत्यवादी हरिश्चन्द्र को चण्डाल के यहाँ नौकरी करनी पड़ी, पाण्डवों को बारह वर्ष वनों में भटकना पड़ा, और महाराणा प्रताप को घास की रोटियाँ खानी पड़ी, नग्न शरीर, कमर में भोजपत्र की कोपीन लगाए दयानन्द जी को गंगोत्री के बर्फीले पहाड़ों में वर्षों तप करना पड़ा।

सुन्दरसाथ को भी परमधाम का आनन्द देने के लिये सांसारिक द्वन्द्वों से मुक्त करना आवश्यक था। सुन्दरसाथ में पहले कोई आचार्य, कोई गादीपति, और कोई करोड़पति था। इन सांसारिक उपलब्धियों का अहं भाव छोड़े बिना कभी भी अध्यात्म के चरम लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता था।

अक्षरातीत परब्रह्म तो अनन्त प्रेम और आनन्द के सागर हैं। वे तो स्वप्न में भी किसी को दुःख दे ही नहीं सकते। दुःख की थोड़ी सी झलक दिखाकर अनन्त आत्मिक आनन्द में डुबोना ही अक्षरातीत को अभीष्ट है। दुःख की अनुभूति हुए बिना आत्मा जागनी के सोपानों को जल्दी पार नहीं कर सकती, इसलिये दिल्ली, उदयपुर, मन्दसौर, तथा औरंगाबाद में दुःख की एक झलक सी दिखायी गयी।

मेहर (कृपा) के सागर परब्रह्म अपनी आत्माओं पर दो प्रकार की मेहर करते हैं। पहली जाहिरी मेहर, जो प्रत्यक्ष में दिखायी पड़ती है। दूसरी बातिनी, जिसका अनुभव केवल आत्मा को ही होता है, अन्य कोई नहीं जान पाता।

भयानक कष्टों से छूट जाना, प्रत्यक्ष मौत से बच जाना, तथा हर तरह की सुख-सुविधाओं को प्राप्त हो जाना जाहिरी मेहर है। बातिनी मेहर का तात्पर्य है – अक्षरातीत परब्रह्म के इश्क, शोभा, श्रृंगार, और वहदत में इस प्रकार डूब जाना कि खुद का भी अस्तित्व भुला देना।

इस दुनिया में आज तक बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, देवी, देवता, और पैगम्बर हो गये, लेकिन कोई भी अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप व धाम को न पा सका। अक्षर से परे

अक्षरातीत की बात तो मात्र एक कल्पना ही रही है। बहुतेरे भक्त तो वैकुण्ठ या निराकार में ही रह गये। कोई-कोई हुआ, जो निराकार को पार करके योगमाया में जा सका।

यह अक्षरातीत की असीम मेहर ही है, जो उनके धाम, स्वरूप, तथा लीला के ज्ञान का रसपान करके आत्माएँ अलौकिक आनन्द में गोता लगा रही हैं।

व्रज लीला में इन्द्र के कोप से व्रज की रक्षा होना, भयानक राक्षसों के प्रहार से बचाना, शाहजहाँपुर बूड़िया में नागजी भाई की प्रत्यक्ष मृत्यु से रक्षा करना, औरंगज़ेब को तख्त से उलट देना, मन्दसौर में कई माह तक फौज द्वारा ढूँढने पर भी सुन्दरसाथ को बचाये रखना, तथा औरंगाबाद में भी रक्षा करना, सब कुछ जाहिरी मेहर है।

श्री जी की वाणी से सबके मन के संशय मिट गये और उन्होंने अपने ऊपर आए कष्टों को उसी तरह भुला दिया, जिस तरह स्वप्न को भुला दिया जाता है।

सूर्य उगते समय भी लाल रंग का होता है और डूबते समय भी। इसी प्रकार ब्रह्ममुनि परमहंस सुख और दुःख में समान रहते हैं।

बुरहानपुर से श्री जी ने लालदास जी तथा नूर मुहम्मद को दिल्ली भेजा। लालदास जी ने काज़ी शेख इस्लाम से भेंट की। काज़ी अन्दर बुलाकर पूछने लगा— "आज दिन तक कहाँ थे? अब किस कार्य हेतु आए हैं?"

"हमारे हादी ने आपके पास भेजा है। पहले आपके पास अजमेर से मलूक चन्द कुरआन के सवाल लेकर

आए थे। अब मैं आया हूँ। कृपया इस बार इन प्रश्नों का उत्तर अवश्य दीजिए।"

"कुरआन के गुह्य अर्थ तो आपको ही स्पष्ट रूप से मालूम हैं। इस समय तो मैं कुछ आवश्यक कार्यवश जा रहा हूँ। यदि आप प्रातःकाल आयेंगे, तो मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दे सकूँगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल लालदास जी और नूर मुहम्मद ने जाकर काज़ी शेख इस्लाम से भेंट की। वहाँ काज़ी शेख इस्लाम के मित्रगण बैठे थे। लालदास जी ने कुरआन के प्रश्नों से सम्बन्धित एक किताब मँगवायी।

उस किताब के सम्बन्ध में काज़ी के पक्ष के लोगों ने कहा— "यह तो किताब ही गलत है।"

तब लालदास जी ने कहा— "जब आप लोग कुरआन



और हदीसों से सम्बन्धित ग्रन्थों को ही गलत कहते हैं, तो आपसे कियामत के सम्बन्ध में बातें करना गलत है।"

काज़ी शेख इस्लाम ने उत्तर दिया— "हम इस किताब को गलत नहीं कह रहे हैं। असल में खास बात यह है कि लिखने में ही चूक हो गयी है, क्योंकि इस पर कम पढ़े-लिखे लोगों के हस्ताक्षर हैं।"

तब लालदास जी ने कहा— "इस किताब में कोई भी दोष नहीं है। जब इसके कथनों का गुह्य अर्थ लिया जाएगा, तो वास्तविकता मालूम हो जाएगी।"

काज़ी शेख इस्लाम किताब को देखने लगा। उसके दिल पर इबलीश की बैठक थी। उसने उसके दिल को भटका दिया था। जब उन्हें सवाल का जबाब नहीं आया, तो क्रोध में भरकर बहुत ही कठोर शब्दों में कहने लगे—

"यह बात बिल्कुल झूठी है।"

लालदास जी को भी क्रोध आ गया। उन्होंने काज़ी के हाथ से किताब ले ली।

फिर काज़ी ने कहा कि इस किताब को हम रखेंगे। यह कहते हुए उसने लालदास जी के हाथ से किताब लेकर अपने मित्र को दे दी।

इसके बाद काज़ी झुककर कहने लगा— "अब तुम इस प्रश्न के सम्बन्ध में क्या कहते हो?"

काज़ी की आँखों की तरफ देखकर लालदास जी समझ गए कि इनकी नीयत में खोट है। ये लोग किसी भी तरह से मुझे मारना चाहते हैं और कितनी भी सच्ची बात हो, उसे स्वीकार करने के लिये राजी नहीं हैं।

तब लालदास जी ने पूछा— "आप इस प्रश्न के

सम्बन्ध में क्या कहते हैं?"

इस पर काज़ी ने कहा— "तुम इस किताब के कथन द्वारा इमामत का दावा करते हो।"

थोड़ी देर के पश्चात् फिर इसी बात को बार-बार दोहराया। तबलाल दास जी ने कहा— "हम आपसे क्या कहें? यह तो निश्चित ही है कि हम ऐसा कहते हैं।"

इस पर शेख इस्लाम ने कहा कि इस किताब को लिखने वाले को कुरआन का सही ज्ञान ही नहीं है।

यह सुनते ही लालदास जी को क्रोध आ गया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा— "अब हम जा रहे हैं। तुम्हें पैगाम देने के लिये अब कभी भी नहीं आयेंगे।"

यह कहकर लालदास जी वहाँ से चल दिए। काज़ी के मित्रों ने उन्हें बुलाना शुरू कर दिया। लेकिन लालदास

जी ने निर्णय कर लिया था कि श्री जी के पैगाम को न मानने वालों का मुख भी नहीं देखना चाहिए।

यहाँ से चलकर लालदास जी मुफ्ती अब्दुर्रहमान के घर पर आए। उन्होंने काजी शेख इस्लाम से होने वाली बातचीत का भी जिक्र किया और मुफ्ती के प्रति भी यह बात कही— "हम तुम एक ही परमधाम के रहने वाले हैं। इसलिये मैं श्री जी का पैगाम लेकर आया हूँ। कियामत आ चुकी है। तुम उस पर ईमान ले आओ।"

दोनों में तीन दिन तक सत्संग हुआ, लेकिन कोई स्पष्ट निर्णय नहीं निकल सका।

इसी बीच श्री जी का पत्र लेकर नारायण दास जी आये, जिसमें लिखा था— "तुम पत्र पाते ही वहाँ से चल देना। वहाँ पानी भी नहीं पीना।"

पत्र पाते ही लालदास जी, नारायण दास और नूर मुहम्मद के साथ चल दिए।

यह श्री प्राणनाथ जी की अलौकिक कृपा थी, जिससे लालदास जी साक्षात् मौत से बचकर चले आये।

## (३४)

बुरहानपुर से श्री जी सुन्दरसाथ सहित आकोट आये। वहाँ पर चार महीने रहे। वहाँ से उन्होंने औरंगाबाद में फतह उल्लाह के पास कुरआन के प्रश्न लिखकर भिजवाये। उन प्रश्नों के साथ पत्र में ये बातें भी लिखकर भिजवायीं—

"फतह उल्लाह! तुम सच्चे इस्लाम की राह में बाधक हो। एक तरह से तुम खुदा से दुश्मनी ले रहे हो। हम लाखों हिन्दू इस्लाम के सच्चे मन्तव्यों को मानने के लिये तैयार हैं। क्या तुम शरियत की दीवारों को तोड़कर हकीकत और मारिफत से युक्त सच्चे इस्लाम की पहचान करवा सकते हो? कुरआन के ज्ञान से तुम यह बताओ कि तुम कौन हो? क्या तुम नाजी फिरके में हो, अमेत सालून में वर्णित परमधाम की रूहों में से हो , या

परमधाम से उतरने वाले मोमिनों में हो, या बनी इस्राईल के गिरोह में से हो?"

श्री जी द्वारा लिखे हुए प्रश्नों में से जब किसी का भी उत्तर फतह उल्लाह को नहीं आया, तो वह शर्म से पानी-पानी हो गया। इसी प्रकार के प्रश्न काजी हिदायत उल्लाह, अमानत खान दीवान, तथा बहादुर खान के पास भेजे, लेकिन इनमें से किसी को भी उत्तर नहीं आया। भला मुर्दे दिल कुरान की हकीकत-मारिफत को क्या जानें?

अव्वल खान के हृदय में विरह फूट पड़ा। उसे श्री जी के बिना सारा संसार फीका लगने लगा। परिणामस्वरूप उसने गृह त्याग दिया और श्री जी के पास आकोट में आ गया।

मेहर के स्वरूप श्री प्राणनाथ जी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा— "तुम दुःखी न होवो। जब मैं पन्ना जी में विराजमान होऊँगा, तब मैं तुम्हें वहाँ पर बुलवा लूँगा। तुम तो परमधाम की आत्मा हो। माया तुम्हें जरा भी मोह में नहीं डाल सकती है। अभी कुछ दिन भाइयों के साथ गुजारा कर लो।"

आकोट के चौधरी ने लौकिक गुरु के रूप में श्री जी को माना। उसने दो-चार बार सुन्दरसाथ सहित श्री जी को भोजन का निमन्त्रण दिया और प्रेमपूर्वक भोजन कराया। चर्चा-कीर्तन में भी उसकी काफी लगन बनी रही।

वहाँ पर बराड़ परगने के हाकिम का सेवक एक ब्राह्मण आया। उसने श्री जी के मुखारविन्द से कबीर जी की वाणी पर चर्चा सुनी। उसे क्षर, अक्षर, तथा



अक्षरातीत की पहचान हो गयी। उसकी सुरता अखण्ड अक्षरधाम तक पहुँच गयी।

उसने श्री प्राणनाथ जी को अक्षरातीत के स्वरूप में पहचाना। उसे अपने शरीर की जरा भी सुध नहीं रही। वह घर से आता-जाता तो था, लेकिन उसे कुछ भी पता नहीं था। उसके मुख से बस एक ही आवाज निकलती थी- "तुम ही तुम हो.....।"

एक दिन प्रातःकाल श्री जी नदी के उस पार दातुन कर रहे थे। उसकी नजर श्री जी पर पड़ गयी। बस, फिर क्या था? उसे अपने शरीर की सुध तो थी नहीं, कपड़े समेत वह नदी में चला गया। बस, मुख से एक ही आवाज निकल रही थी- "तुम ही तुम हो.....।"

जब नदी में उसकी पाग भी खुलकर गिर गयी, तो

सुन्दरसाथ ने दौड़कर उसे नदी से निकाला। बाद में उसके कपड़े सुखाकर पहनाए गये।

उसकी मस्ती का आलम यह था कि जब भोजन के बारे में पूछा गया, तो उसे उसकी भी सुध नहीं थी। उसके मुख से तब भी यही बात निकल रही थी— "तुम ही तुम हो, तुम ही लाये हो, तुम ही घर ले जाओगे।" उसके परिचित लोगों ने बताया कि इसने तीन दिनों से कुछ भी खाया-पीया नहीं है।

श्री जी ने उसकी सुरता को पुनः वापस लौटाना चाहा, लेकिन उसे धाम की शोभा छोड़कर नाचीज़ संसार में आना मन्जूर नहीं था। विरह की अधिकता ने उसे शरीर छोड़ने के लिये मजबूर कर दिया।

**वीणा के तार यदि ढीले हों, तो आवाज नहीं**

निकलती। यदि उन्हें ज्यादा कस दिया जाये, तो वे टूट जाते हैं। जीवन भी संगीत की तरह है। समत्व ही योग है। किसी भी क्षेत्र में अति से बचना चाहिए। अतिवाद की उपेक्षा और समत्व का आचरण ही आध्यात्मिक और भौतिक सफलता का मूल मन्त्र है।

फिर भी, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि ईश्वरी सृष्टि होते हुए भी उस ब्राह्मण ने श्री जी के प्रति जितनी निष्ठा, विरह, और पहचान का नजारा प्रस्तुत किया, वह ब्रह्ममुनियों की शोभा धारण करने वाले लोगों के लिये खुली चुनौती है।

आकोट से चलकर श्री जी कापस्तानी आए। वहाँ कुछ दिन चर्चा हुई, जिसमें कई सुन्दरसाथ ने अखण्ड वाणी का रसपान कर अपनी आत्मा को मूल स्वरूप श्री राज जी से जोड़ा।

वहाँ लगभग दस दिन रहकर श्री जी एलचपुर पहुँचे। वहाँ एक किसान था। उसने बहुत ही निश्छल और भावुकता से सब सुन्दरसाथ सहित श्री जी की सेवा की। वह तीन-चार दिन तक मक्के के बने हुए तरह-तरह के व्यन्जनों से सबकी सेवा करता रहा।

श्री जी वहाँ से चल पड़े। कई दिन की यात्रा के पश्चात् वे देवगढ़ आये। वहाँ के राजा ने अध्यात्म या सेवा के प्रति कोई भी रुचि नहीं दिखाई।

सुन्दरसाथ का यह कारवा वहाँ से चल पड़ा। श्री प्राणनाथ जी एक सफेद घोड़े समद (प्रतिष्ठित) पर विराजमान थे। सुन्दरसाथ का समूह साथ-साथ चलता था। सभी सुन्दरसाथ जहाँ ठहरते थे, वहाँ के लोगों से भिक्षा माँग कर लाते थे। पहले श्री जी को भोजन कराकर सबमें वह बाँटी जाती थी।

परब्रह्म की यह कितनी विचित्र लीला है? जब सारे संसार के पण्डे, पुजारी, महन्त, मौलवी, तथा पादरी अपने-अपने स्थानों में सुख-चैन की जिन्दगी बिता रहे थे, उस समय श्री जी गाँव-गाँव, नगर-नगर, जँगल-जँगल घूमते रहे, केवल इस बात की तड़प लिये कि सम्पूर्ण मानवता तक परमधाम का अलौकिक ज्ञान पहुँचे, सभी लोग धर्म की ओट में होने वाली लड़ाइयों से बचें, और सच्चे आत्मिक आनन्द को प्राप्त करें।

आने वाली पीढ़ियों के लिये यह सिखापन है कि ब्रह्मज्ञान जो अमृत का स्वरूप है, उसे प्रचारित करने में आने वाले प्रत्येक कष्ट को हँसते हुए सहन करना चाहिए। उसके प्रचार में हम जितना ही लौकिक सुखों का परित्याग करेंगे, हम उतना ही महानता की तरफ कदम बढ़ायेंगे।

श्री जी सहित सब सुन्दरसाथ विरक्त के भेष में हैं। ब्रह्ममुनियों ने पहचाना कि ये ही हमारे धाम धनी हैं, प्राणवल्लभ हैं, प्राण प्रियतम हैं। बाहर की दृष्टि रखने वाले संसारी जीव उनको नहीं पहचान पाए।

कई दिनों की मन्जिल पूरी करने के पश्चात् श्री जी सहित सब सुन्दरसाथ रामनगर पहुँचे। वहाँ केतकी नदी के किनारे गणेश महन्त का आश्रम था। सुन्दरसाथ ने भी वहाँ आवास हेतु एक भवन बनाया, जिसमें कुछ दिन बिताये जा सकें।

यही तो इस संसार के नाटक की लीला है, जिसमें माया के जीव चैन की वंशी बजाते हैं और अनन्त सुख वाले परमधाम के ब्रह्ममुनियों को जहाँ जँगल-जँगल भटकना पड़ता है, वहीं निवास तथा भोजन के भी लाले पड़े रहते हैं। किन्तु, माया के जीवों को माया का क्षणिक

सुख ही मिलता है, जबकि ब्रह्ममुनियों के हृदय में  
परमधाम के आनन्द का सागर लहरा रहा होता है।

## (३५)

हरि सिंह को पता चला कि केतकी नदी के किनारे कुछ विरक्त सन्त लोग आए हुए हैं। उन्होंने यह बात सुजान सिंह के माध्यम से सूरत सिंह को भी बतायी।

जब हरिसिंह ने श्री जी की चर्चा सुनी, तो बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने श्री जी सहित सब सुन्दरसाथ को भोजन का निमन्त्रण दिया।

दूसरे दिन सब सुन्दरसाथ भोजन करने उसके घर गए। उसने श्री जी को बहुत अच्छे स्थान पर बैठाया और स्वयं सेवा करने में लग गया। उसने सभी को अच्छे-अच्छे पकवानों का भोजन कराया।

भोजन के पश्चात् श्री जी को वह मकान के एकान्त में ले गया। वहाँ बहुत हाव-भाव के साथ अपनी श्रद्धा



प्रदर्शित करने लगा। उसने कहा— "हे श्री जी! मैं आपका दास हूँ। मेरे ऊपर कृपा कीजिए। मेरे कष्ट दूर हो जायें।"

श्री जी ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी कामनायें पूर्ण हों। उसकी लौकिक इच्छा पूर्ण हो गयी। उसने अपने को उसी में धन्य-धन्य माना। यह स्पष्ट है कि जीव सृष्टि माया की ही इच्छायें अधिक करती है।

दूसरों के मुख से श्री जी की महिमा सुनकर कुँवर किशोरी सिंह ने भी चर्चा सुनी तथा तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया। उन्होंने भी सब सुन्दरसाथ सहित श्री जी को अपने महल में ले जाकर भोजन करवाया।

रामनगर में अभी जागनी कार्य की शुरुआत हुई ही थी कि माया ने जोर पकड़ा। मिर्गी की बीमारी फैल गयी, जिसमें चिन्तामणि, निर्मलदास, मलूक चन्द आदि बहुत

से सुन्दरसाथ ने अपना तन छोड़ दिया। इस घटना से सुन्दरसाथ बहुत दुःखी हो गये। श्री जी की कृपा से वहाँ इस मिर्गी की बीमारी का समापन हुआ।

औरंगज़ेब, जो दिल्ली में श्री जी के चरणों में नहीं आ सका था, मिलना तो चाहता था, लेकिन विनम्रतापूर्वक नहीं, बल्कि पकड़वाकर। अपनी सत्ता का अहम् और मोह उसकी राह में सबसे बड़ी बाधा थी।

औरंगज़ेब ने पुरदल खान को आदेश दिया कि रामनगर में जो वैरागी रहते हैं, उनके बारे में तुम यह पता लगाओ कि ये कौन हैं, कहाँ से आये हैं, तथा क्या चाहते हैं?

पुरदल खान ने अपने सेनापति शेख खिज़्र को भेजा कि उन वैरागियों को पकड़ लाओ। शेख खिज़्र अपनी

फौज के साथ दनदनाते हुए गढ़ा आया और वहीं से रामनगर के राजा के पास सन्देश भिजवाया— "मैं औरंगज़ेब बादशाह के हुक्म से आया हूँ। या तो तुम इन वैरागियों पकड़कर मेरे हवाले कर दो या लड़ने के लिये तैयार हो जाओ।"

यह बात सुनकर राजा ने अपने कोतवाल से श्री जी को कहलवाया— "बादशाह का आपको पकड़ने के लिये हुक्म आया है। आप यहाँ से कुछ दिनों के लिये चले जाइए। पुनः शान्ति हो जाने पर आ जाइएगा।"

उसे श्री जी ने जबाब दिया— "हम बादशाह से जरा भी नहीं डरते। हम तो यह चाहते ही हैं कि वह किसी तरह हमारे सामने आए। राजा से कह देना कि वे अपने महल में शान्ति से बैठे रहें।"

कोतवाल ने जाकर राजा से कहा— "वे लोग तो कह रहे हैं कि हम बादशाह से जरा भी नहीं डरते। आप लोगों को हमारी सहायता करने की आवश्यकता नहीं है।"

तब राजा ने कहा— "उनसे जाकर पुनः प्रार्थना करो कि यदि मेरे राज्य में हिन्दू महात्माओं को मुगल फौज पकड़कर ले जाये, तो सभी हिन्दू राजा मुझे धिक्कारेंगे। उनसे मेरी तरफ से यह भी आग्रह कर देना कि आप अभी दस-बीस कोस छिपकर बैठ जाइए। बाद में हम आपको बुलवा लेंगे।"

फिर कोतवाल ने आकर श्री जी को राजा का सन्देश कह सुनाया।

तब श्री प्राणनाथ जी ने उत्तर दिया— "तुम हमारी जरा भी चिन्ता न करो। उन्हें हमारे सामने आने दो।

हमारे ऊपर इनकी कोई भी शक्ति काम नहीं करेगी।"

तब कोतवाल ने राजा से सारी बात कह दी। सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ कि यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। इन्हें तो शाही फौज का जरा भी डर नहीं है।

तब राजा ने अपने मन्त्री सुवंश राय से कहा— "तुम जाकर उन वैरागियों से कहो कि आप लोग क्यों नहीं डर रहे हैं? शाही फौज के आ जाने के बाद हम क्या करेंगे? यदि वे आपको पकड़कर ले जाएँगे, तो चारों तरफ हमारी बदनामी होगी।"

सुवंश राय ने आकर श्री जी से वह सारी बातें कह दीं, जो राजा ने कही थीं।

तब श्री जी ने चर्चा करके अपने आत्मिक बल का थोड़ा सा परिचय दिया और कहा कि हमारी सुरक्षा को

लेकर तुम जरा भी मत डरो।

सुवंश राय ने राजा को जाकर बताया कि हमने जो कुछ भी कहना था, सब कह दिया। अब इन महात्मा लोगों की जो इच्छा हो, वह करें।

दूसरे दिन, शेख खिज़्र अपनी फौज के साथ आ पहुँचा। आते ही उसने कहा— "मैं इन वैरागियों को पकड़कर ले जाने के लिये आया हूँ। या तो तुम मुझे इन्हें पकड़कर सौंप दो, या लड़ने के लिए तैयार हो जाओ।"

तब राजा ने उत्तर दिया— "मुझे उन वैरागियों से कुछ भी लेना-देना नहीं है। आप उन्हें पकड़कर ले जाइए। मैं औरंगज़ेब के आदेश को शिरोधार्य करता हूँ।"

यह सुनकर शेख खिज़्र अपने निवास पर आ गये और अपने दीवान भिखारी दास से विचार-विमर्श किया

कि अब हमें क्या करना चाहिए ? किस प्रकार उन्हें पकड़ा जाये।

तब भिखारी दास ने कहा कि पहले आप मुझे उनके पास भेजिए। उनकी पूरी जानकारी लेने के बाद उनको पकड़ने का प्रयास किया जाएगा।

भिखारी दास ने आकर श्री जी के चरणों में प्रणाम किया और बोला- "औरंगज़ेब का यह आदेश आया है कि हम आपको पकड़कर उसके पास ले चलें। हम यह भी जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं और बादशाह आपको क्यों पकड़वाना चाहता है?"

तब श्री जी ने उत्तर दिया- "हम तो स्वयं ही यह चाहते हैं कि किसी भी तरह से औरंगज़ेब से भेंट हो जाये। यदि तुम यह जानना चाहते हो कि मैं कौन हूँ तथा

औरंगज़ेब ने ऐसा आदेश क्यों दिया है, तो तुम्हें सर्वप्रथम मेरी चर्चा सुननी पड़ेगी।"

भिखारी दास ने कहा— "मेरी आप पर अटूट निष्ठा है। मैं आपके चरणों को कभी भी नहीं छोड़ूँगा। आप मुझे अच्छी तरह समझाइए।"

तब श्री जी ने तीन दिन और तीन रात तक तारतम्य ज्ञान द्वारा क्षर, अक्षर, तथा अक्षरातीत की पहचान करायी। भागवत तथा कुरआन का एकीकरण करके एक सत्य का बोध कराया, जिससे भिखारी दास के मन का सारा संशय मिट गया। उसने शेख खिज़्र के पास जाकर सारी बात बतायी।

"हुजूर! ये तो सबके स्वामी श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप आखरूल इमाम मुहम्मद महदी



साहिबुज्जमां हैं।"

"तुम इस तरह की बातें कैसे करते हो? इनके स्वरूप को तुमने कैसे पहचाना? हादी के जाहिर होने की क्या साक्षी है?"

"जो कुछ वेद पक्ष में कहा गया है, वही कतेब पक्ष में भी है, किन्तु भाषा-भेद और कर्मकाण्डों के नाम पर सभी लड़ते हैं। वेद पक्ष में जिसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अक्षर ब्रह्म, अक्षरातीत, मृत्यु लोक, वैकुण्ठ, अक्षरधाम, और परमधाम कहा जाता है, उसे ही कतेब पक्ष में क्रमशः मैकाईल, अजाजील, अजराईल, नूरजलाल, नूरजमाल, नासूत, मलकूत, जबरूत, और लाहूत कहा जाता है। कियामत के सभी निशान जाहिर हो गये हैं। सबके काजी, सबके हादी श्री प्राणनाथ जी जाहिर हो गये हैं।"

जब भिखारी दास श्री जी के पास गये थे, उस समय उनके साथ सैयद अब्दुर्रहमान और रघुनाथ भी थे। उन्होंने भी इस बात की साक्षी दी कि भिखारी दास की बातें शत-प्रतिशत सत्य हैं।

## (३६)

यह बात सुनकर शेख खिज़्र के मन के संशय तो समाप्त हो गये थे, फिर भी कुछ सोच रहे थे।

अत्यधिक उत्साह से भरे हुए भिखारी दास जी ने शेख खिज़्र से कहा – "यदि आप वहाँ चलकर उनका दीदार करें और वास्तविकता को समझें, तो आपकी अन्तरात्मा से ही यह आवाज आयेगी कि मैंने अपने परवरदिगार अल्लाह तआला को पा लिया है।"

यह बात कहते हुए भिखारी दास का चेहरा खुशी से चहक रहा था।

शेख खिज़्र ने पहले ही एक सन्देशवाहक श्री जी के पास यह कहलाकर भेज दिया कि मैं आपके दीदार के लिए आ रहा हूँ।

इसके पश्चात् शेख खिज़्र अपनी फौज के साथ श्री जी का दीदार करने आये। उन्हें देखते ही श्री जी ने पहचान लिया कि अरे! इसके अन्दर तो परमधाम की आत्मा है और यह मुझे ही गिरफ्तार करने के उद्देश्य से आया है।

शेख खिज़्र ने श्री जी को प्रणाम किया। उसके पश्चात् कियामत के सम्बन्ध में चर्चा प्रारम्भ हो गयी। जब उसने सनन्ध वाणी की चर्चा सुनी, तो उसे पूरा यकीन आ गया कि इनके अन्दर निश्चित ही हक की लीला चल रही है।

पड़ोस में ही बेदड़े के मुसलमान रहते थे। उन्होंने सोचा कि जब शेख खिज़्र हिन्दू वैरागियों को पकड़ने के लिये आ रहे हैं, तो हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। इस तरह दीन-ए-इस्लाम को बढ़ावा मिलेगा।

**धर्म सत्य है और सत्य ही परमात्मा का स्वरूप है।**

इस प्रकार धर्म अनादि और अखण्ड है। साम्प्रदायिक विचारधाराओं या अनुयायियों को तो नष्ट किया जा सकता है, किन्तु धर्म को नहीं। जो लोग हिंसा के बल पर अपने धर्म की वृद्धि समझते हैं, उनकी नादानी पर तरस आता है। ये लोग धर्म के स्वरूप-बोध से करोड़ों कोस दूर होते हैं। उनकी बुद्धि उस मेंढक के समान होती है, जो कुँए को ही महासागर समझता है।

उस समय वहाँ पर कुरआन का टीका रखा हुआ था। बेदड़े के मुसलमानों ने धमकी भरे अन्दाज में कहना शुरू किया कि मुहम्मद साहिब और कुरआन के ऊपर चर्चा करने का अधिकार हिन्दुओं को नहीं है।

उनकी इस हरकत पर शेख खिज़्र को बहुत क्रोध आया। उन्होंने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि इन लोगों को धक्के देकर डण्डे लगाओ और यहाँ से भगा दो।

सभी लोगों ने उन्हें फटकार लगायी और उनको सभा से बाहर निकाल दिया। अपना काला मुँह लिये हुए वे वहाँ से उठकर चले गये।

शेख खिज्र ने अपनी पूरी फौज के साथ तारतम्य ज्ञान ग्रहण किया और श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पूरी पहचान करके अपने डेरे में वापस आया।

दूसरे दिन शेख खिज्र राजा से मिलने गये। उन्होंने राजा को काफी शर्मिन्दगी के वचन कहे— "हे राजा! तुझे धिक्कार है! इस नगर में इतने महान पुरुष आए हुए हैं और तुम अभी तक उनके दर्शन के लिये भी नहीं गए। मैं तुम्हें क्या कहूँ जो अब तक भी तुम उनको पहचान नहीं पाये?"

राजा ने उत्तर दिया— "अब तो तुम उनकी महिमा

गाने लगे हो। अच्छा हुआ, जो तुमने उन्हें कैद नहीं किया।"

तब शेख खिज़्र ने कहा – "मैं क्या कर सकता था? उस समय तो मुझे उनकी जरा भी पहचान नहीं थी। मैं औरंगज़ेब के हुक्म से बँधा हुआ था। जब मैंने उन्हें हादी और आखरूल इमाम के रूप में पहचान लिया है, तो अब मैं उनका गुलाम हूँ। अब मैं वही करूँगा जो उनका हुक्म होगा।"

शेख खिज़्र के चले जाने पर राजा के सलाहकारों ने कहा कि इन वैरागियों के पास भुर्की है। जब कोई उनसे मिलने जाता है, तो वे चुपके से उसके सिर पर डाल देते हैं। वह व्यक्ति उसके प्रभाव से कहने लगता है कि आप ही पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द हैं, अक्षरातीत हैं, अल्लाह तआला हैं।

राजा ने अपनी विवशता प्रकट की कि मुझे तो जाना ही पड़ेगा, क्योंकि शेख खिज़्र ने मुझे काफी शर्मिन्दा किया है, लेकिन मैं पास नहीं बैठूँगा। दूर से ही उनके दर्शन कर लूँगा।

दूसरे दिन राजा ने सब सुन्दरसाथ सहित श्री प्राणनाथ जी को भोजन का निमन्त्रण दिया। बाग में जहाँ सब सुन्दरसाथ के साथ श्री जी भोजन कर रहे थे, राजा भी गया और दूर से ही खड़े होकर प्रणाम किया। उसके मन में यह डर बैठ गया था कि उनके पास बैठने पर मेरे सिर पर भी भुर्की डाल दी जायेगी और मुझे भी उनका अनुयायी बनना पड़ेगा।

राजा बहुत ही भाग्यहीन था। दूसरों के बहकावे में आकर न तो उसने चर्चा सुनी और न पहचान ही की। जीव सृष्टि अपने अँकुर से अधिक ले भी नहीं सकती।



शेख खिज़्र ने श्री जी से प्रार्थना की कि आप जैसा आदेश करें, वैसा ही मैं लिखकर भेज दूँ।

तब श्री जी ने कहा— "मैं तुमसे इस सम्बन्ध में क्या कहूँ? तुम्हारी बुद्धि ने जैसी मेरी पहचान की होगी, वैसा ही लिखकर पुरदल खान के पास भेज दो। वह बादशाह के पास भेजेगा। जिसमें परमधाम की आत्मा होगी, वह मुझे पहचान लेगी।"

शेख खिज़्र कुछ दिन तक श्री जी के चरणों में रहे और उन्होंने श्री जी की पहचान लिखकर भेज दी। शेख की सेना के जिन लोगों में बहुत अधिक ईमान था, वे श्री जी के चरणों में ही रह गये। उन्होंने दोबारा घर से नाता नहीं जोड़ा।

भिखारी दास ने शेख खिज़्र को उनके स्थान पर

पहुँचा दिया और अपने पूरे परिवार को लाकर श्री जी के चरणों में सौंप दिया।

पुरदल खान का एक रिश्तेदार था, गुलाम मुहम्मद। वह धमोनी में रहा करता था। जब उसने सुना कि शेख खिज़्र वैरागियों को कैद नहीं कर पाये, तो सोचा कि यह काम मैं ही क्यों न कर डालूँ?

पुण्य लेने के चक्कर में उसने यह कार्य करने का निर्णय लिया। धमोनी से ही उसने राजा के पास सन्देश भिजवाया कि वैरागियों को पकड़कर मुझे सौंप दो।

तब राजा डर गया कि इन वैरागियों से औरंगज़ेब शत्रुता रखता है। ये लोग जब तक यहाँ रहेंगे, तब तक मुगल फौजों का हमला होता रहेगा। रोज-रोज के झंझट से मुक्त होने के लिये यह आवश्यक है कि ये लोग ही यहाँ

से चले जायें।

तब राजा ने अपने सेवकों से कहलवा भेजा – "सभी वैरागी मेरे देश से चले जायें। हम प्रतिदिन इस तरह की समस्या नहीं होने देना चाहते।"

राजा की जहर जैसी कटु भावना को देखकर श्री जी ने यह निर्णय ले लिया कि अब यहाँ थोड़ी भी देर रहना ठीक नहीं है।

श्री जी अब रामनगर से चलकर एक बाग में रुके। उधर गुलाम मुहम्मद रामनगर पहुँचा। वहाँ से पता चलने पर उसने अपने पाँच सैनिकों को बाग में भेजा।

उन पाँच सैनिकों ने बाग में सुन्दरसाथ को रोक लिया। इसी बीच देवकरण भी वहाँ पहुँच गये।

पूरा दिन सुन्दरसाथ की उन सैनिकों से धर्म चर्चा

चलती रही। रात्रि चर्चा में जब श्री जी ने सनन्ध की वाणी सुनायी, तो वे शर्मसार हो गये। प्रातः होते ही वे वहाँ से भाग खड़े हुए।

जाते-जाते वे कह रहे थे- "यह तो बहुत अच्छा हुआ, जो हमने इनके साथ कुछ बुरा व्यवहार नहीं किया। यदि हम ऐसा कर देते, तो हमारे सिर पर बहुत बड़ा गुनाह लग जाता और हमारे रहने का कोई ठिकाना नहीं होता। ये तो खुदा के प्यारे पैगम्बर हैं।"

वहाँ से चलकर श्री जी गढ़ा आये। वहाँ भगवन्त राय के पुत्र हाकिम राय ने सोचा कि मैं इन वैरागियों को लूट लूँ। उसने यह बात और लोगों से भी कह दी।

कोई मुसलमान किसी मौलवी को या कोई ईसाई किसी पादरी को लूटने की बात नहीं सोचता, लेकिन

इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि धन के लोभ में हिन्दू वैरागियों को लूटने के लिये हिन्दू ही तैयार दिखते हैं। बेरीसाल के बाद हाकिम राय ने यही पाप करना चाहा। मुसलमानों के सामने समर्पण करना और निहत्थे वैरागियों पर हमला करना यही दर्शाता है कि उस समय का क्षत्रिय वर्ग अपने प्राचीन आदर्शों से बहुत दूर जा चुका था।

वहीं पर गँगाराम वाजपेयी का आश्रम था। विरक्त भेष में होने के कारण सुन्दरसाथ से वह दो बार आकर मिल भी गये थे।

उन्होंने जाकर हाकिम राय को मना किया – "हाकिम राय! क्या तुम्हें और कोई काम नहीं है? क्या तुम्हारी बहादुरी हिन्दू वैरागियों के लिये ही है? क्या तुमने कभी भी यह नहीं सोचा कि यह कार्य आसुरी है। ऐसा काम

करने पर तुम पूरी तरह से बदनाम हो जाओगे। इन महात्माओं को तुम इतना कमजोर भी न समझो। हमला करने पर तुम भी खतरे में पड़ सकते हो।"

रामनगर में रहने वाले सूरत सिंह ने केतकी के किनारे पर श्री जी का दीदार किया था। वाणी चर्चा सुनकर उनके मन में अटूट आस्था बन गयी कि ये पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द के स्वरूप हैं तथा परमधाम की आत्माओं को जाग्रत करने के लिये सर्वत्र विचरण कर रहे हैं।

उन्होंने अपने मन में सोचा कि यह बात मैं किससे कहूँ कि यही अक्षरातीत के स्वरूप श्री विजयाभिनन्द बुद्ध जी हैं? मेरी बात पर तो लोग हँसी ही उड़ायेंगे कि बड़े आये अक्षरातीत। क्या अक्षरातीत ऐसे ही विरक्त होकर जँगल-जँगल भटकते हैं और मुगल फौज उनका पीछा करती है?

कुछ सोचकर वे दीवान देवकरण जी के पास गये और बोले- "एक बात है, जो मैं केवल तुमसे ही कह रहा हूँ। केतकी नदी के किनारे परमहंस ब्रह्ममुनियों का आगमन हुआ है। उनके साथ परब्रह्म स्वरूप श्री प्राणनाथ जी भी आये हुए हैं। यदि तुम वहाँ चलो, तो मैं तुम्हें उनका दर्शन कराऊँ।"

दीवान देवकरण ने आकर श्री जी के चरणों में प्रणाम किया। थोड़ी सी चर्चा सुनने के पश्चात् उनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि ये ही परब्रह्म स्वरूप श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध हैं। उन्होंने मन में ले लिया कि मैं अपने चाचा छत्रसाल जी को यह बात बताऊँगा, क्योंकि वे तो १२ वर्षों से इन्हीं की बाट देख रहे हैं।

विदा होते समय श्री जी ने देवकरण जी से पूछा- "तुम अपना प्रान्त छोड़कर इधर कैसे आये?"

देवकरण जी ने उत्तर दिया- "किसी बात पर मैं घर वालों से रूठ गया था। इसी कारण यहाँ चला आया और कभी वापस नहीं गया।"

श्री प्राणनाथ जी ने कहा- "तुम्हारा यहाँ आना तो मात्र एक बहाना है। श्री राज जी के आदेश से तुम्हें यहाँ बुलाया गया था, छत्रसाल तक सन्देश पहुँचाने के लिये। मैंने बड़े-बड़े बहुत से राजाओं को देखा है, लेकिन परमधाम का अँकुर किसी में भी नहीं था। छत्रसाल जी के अन्दर शाकुण्डल की आत्मा है। अब उसके जाग्रत होने का समय आ गया है।"

श्री जी ने देवकरण जी के पास सन्तदास तथा धर्मदास को पत्र देकर भेजा तथा महाराजा छत्रसाल जी को प्रबोधित करने के लिये श्री लालदास जी, उत्तम दास जी, जीवन जी, और गोविन्द दास जी को अगरिये से



भेजा।

## (३७)

देवकरण जी के मन में इस बात को लेकर बहुत ही उत्साह था कि मैं श्री प्राणनाथ जी के आगमन की सूचना अपने चाचा छत्रसाल जी से कहूँगा। उन्हें विदित था कि उनके चाचा १२ वर्षों से यह बाट देख रहे थे कि कब श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध उन्हें दर्शन देंगे।

बुन्देलखण्ड की स्वतन्त्रता और हिन्दुत्व की रक्षा के लिये चिन्तित छत्रसाल एक रात्रि निद्रा के वशीभूत हो गये। अचानक ही वे स्वप्न देखने लगे। स्वप्न में ही श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध ने उन्हें दर्शन दिया और बोले— "छत्ता! तुम चिन्ता न करो। मैं पल-पल तुम्हारे साथ हूँ। तुम अपने कार्य में लग जाओ। मैं एक निश्चित समय पर तुमसे अवश्य मिलूँगा। मैं अपनी पहचान की एक मुहर देता हूँ। उसे हमेशा अपने पास रखना।"

स्वप्न टूटने के साथ ही नींद भी समाप्त हो गयी , किन्तु उनकी दृष्टि जब अपने हाथ की ओर गयी तो देखा कि सचमुच उनकी हथेली पर सोने की मुहर रखी हुई है। छत्रसाल जी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने उस मुहर को आभूषण के रूप में गले में धारण कर लिया और अपने इष्ट के आगमन की बाट देखने लगे।

छत्रसाल जी को श्री जी के आगमन की सूचना देने के लिये देवकरण जी रामनगर से चलकर मऊ आए और महाराजा छत्रसाल जी को सारी बातें बता दीं। बलदीवान की उपस्थिति में उन्होंने यह भी बताया कि औरंगज़ेब उनसे कटुता रखता है। श्री प्राणनाथ जी का यहाँ आगमन होने पर औरंगज़ेब से युद्ध अवश्य करना पड़ेगा। श्री जी ने अनेक राजाओं को औरंगज़ेब से युद्ध करने के लिये उत्साहित किया था, किन्तु कोई तैयार नहीं हुआ।

इधर लालदास जी और उत्तमदास भी छत्रसाल जी के पास पहुँच गये। लालदास जी ने सत्संग के समय भागवत के श्लोकों से यह स्पष्ट किया कि "श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध" का प्रकटन हो चुका है। छत्रसाल जी के मन में तब श्री जी के दीदार की प्यास बहुत बढ़ गयी। उन्होंने देवकरण जी से कहा— "तुम श्री जी को स्वागत करके ले आओ। साथ में श्री लालदास जी तथा उत्तमदास जी को भी ले जाओ। मैं यहाँ आने पर उनका स्वागत करूँगा।"

देवकरण जी की श्री जी से भेंट अगरिए में हुई। उन्होंने अपने परिवार वालों के साथ श्री जी और सब सुन्दरसाथ की बहुत सेवा की।

इसके पहले श्री प्राणनाथ जी ने देश-विदेश के अनेक स्थानों को अपनी चरण धूलि से पवित्र किया।

मस्कत, अब्बासी, सूरत, मेड़ता, दिल्ली, हरिद्वार, उदयपुर, मन्दसौर आदि में कहीं भी जागनी का ध्वज फहराने की इच्छा नहीं हुई। इस शोभा के लिए उन्होंने एकमात्र पन्ना को ही चुना था।

अगरिए से चलकर श्री जी पन्ना में किलकिला नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ आम के घने वृक्षों का झुण्ड था। इसलिए उस स्थान को अमराई घाट भी कहते थे। श्री जी के साथ चलने वाले सुन्दरसाथ की संख्या लगभग पाँच हजार थी। सभी यहाँ की प्राकृतिक शोभा को निहार ही रहे थे कि अचानक क्षेत्रीय निवासी, जो गोंड कहलाते थे, दौड़ते हुए आये। उनके परेशान होने का कारण यह था कि कहीं उन्होंने किलकिला का जल तो नहीं पी लिया।

क्या पानी पीना गुनाह था? नहीं! यह तो उनकी

सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए स्थानीय निवासियों ने यह सूचित किया कि इस नदी का पानी इतना विषैला है कि पी लेने पर कोई भी नहीं बचेगा।

जिनके दर्शन से माया का विष दूर हो जाता है, जिनकी चरण धूलि से यह सारा ब्रह्माण्ड अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होगा, क्या उनकी दृष्टि के सामने भी किलकिला का विषैला पानी किसी को मार सकेगा?

नहीं! यह कदापि नहीं होगा। क्षेत्रीय निवासियों की बातों को अनसुना करते हुए श्री सुन्दरसाथ ने श्री प्राणनाथ जी के चरणों के अँगूठे को धोकर नदी में डाल दिया और बिना कुछ सोचे-विचारे अपने प्राणवल्लभ को दिल में बसाकर स्नान करना प्रारम्भ कर दिया।

स्थानीय निवासी इस दृश्य को अचम्भित होकर देख

रहे थे कि विषैला पानी, जिसको पीने के बाद मनुष्य हो या पशु-पक्षी, तड़प-तड़प कर मर जाते थे, कैसे स्वादिष्ट जल में परिवर्तित हो गया था? अन्त में उनके मन में यह धारणा बन गयी कि लगता है ये वही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हैं, जिन्होंने व्रज में यमुना के विषैले जल को शुद्ध किया था।

श्री जी ने छत्रसाल जी के पास यह सूचना भेज दी कि हम पन्ना में अमराई घाट में ठहरे हैं। यह सुनकर छत्रसाल जी ने उत्तर भिजवाया कि इस समय शेर अफगन ने आक्रमण कर दिया है, इसलिये मेरा आना सम्भव नहीं हो पा रहा है। यदि आप कृपा करके केवल युवा सुन्दरसाथ के साथ यहाँ पधारकर मुझे दर्शन दें, तो मैं स्वयं को धन्य-धन्य समझूँगा।

तब श्री जी ने श्री बाई जी आदि सभी महिला

सुन्दरसाथ को वहीं छोड़ दिया और युवा सुन्दरसाथ के साथ पन्ना से चलकर मऊ सिंहानिया पहुँचे और तिंदुनी दरवाजे के पास अपना डेरा लगा दिया।

छत्रसाल जी ने भेष बदलकर दूर से दर्शन किया। पुनः दूसरी बार शिकारी के वेश में आये। उन्होंने अपने वस्त्रों के भीतर सभी अस्त्र-शस्त्र छिपा रखे थे।

सब सुन्दरसाथ के बीच में श्री प्राणनाथ जी विराजमान थे। छत्रसाल जी उनसे कुछ दूर जानबूझकर अनपढ़ की तरह खड़े हो गये और बोले- "बाबा जू! राम-राम!"

श्री जी ने भी कहा- "राम-राम बाबा! यहाँ बैठो।"

जिस बिछौने पर सुन्दरसाथ बैठे थे, छत्रसाल जी उस पर दूर किनारे बैठ गये, तब श्री जी ने कहा-



"बाबा! और आगे आओ। मेरे पास सामने बैठो।"

यह सुनकर छत्रसाल जी थोड़ा सा आगे आए। फिर श्री जी ने कहा— "और आगे आओ। अब तो तुम मेरे फन्द में फँस गये हो, अब कहाँ भागकर जाओगे?"

चुनौती के ये शब्द स्वाभिमानी छत्रसाल जी सहन नहीं कर पाये। उन्होंने बेधड़क होकर कहा— "इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी नहीं है, जो मुझे फन्दे में डाल सके। हाँ! केवल श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध जी के फन्दे में मैं जरूर हूँ। आज से बारह वर्ष पहले उन्होंने अपनी छाप का जो सिक्का दिया था, वह यह है। मैं उसी दिन से उनकी बाट देख रहा हूँ और उनका गुलाम हूँ।"

तब श्री जी ने अपने बिछौने का एक कोना ऊपर

उठा दिया। बिछौने के नीचे मुहरों की बहुतायत थी। छत्रसाल जी ने उनका मिलान अपनी मुहर से किया। दोनों में समरूपता देखकर छत्रसाल जी पानी-पानी हो गये। तुरन्त चरणों में शीश झुकाकर अपने महल में गये और सारी घटना बता दी। अपनी महारानी से भी कह दिया कि आज पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द आये हुए हैं , जिसको भी दर्शन करना हो, वह अवश्य कर लेवे।

रानी देव कुँवरि ने अपना भेष बदला और ब्राह्मण महिलाओं के साथ जाकर उनका दर्शन किया।

फिर प्रत्यक्ष रूप से बाजे-गाजे और सेना के साथ सम्पूर्ण राज परिवार ने धूम-धाम के साथ श्री जी का स्वागत किया।

ठीक इसी समय शेर अफगन खान ने मऊ पर हमला

बोल दिया। युद्ध का बिगुल बज जाने पर भला क्षत्रिय कैसे शान्त रह सकते हैं?

जब युद्ध के लिये सेना तैयार हो गयी, तो महाराजा छत्रसाल ने श्री जी के चरणों में अपना शीश झुकाया और बोले— "धाम धनी! सम्भवतः यह मेरा आखिरी प्रणाम हो सकता है, क्योंकि मेरे पास सेना बहुत कम है, मात्र १०००, जबकि शेर अफगन खान के पास ८००० सैनिक हैं, जिसमें ५००० पैदल और ३००० घुड़सवार हैं।"

श्री जी ने कहा— "छत्रसाल तुम चिन्ता न करो। विजयश्री तुम्हारी ही होगी। मैं तो पल-पल तुम्हारे साथ हूँ।" यह कहकर श्री प्राणनाथ जी ने अपना रुमाल छत्रसाल जी के सिर पर रखकर अपना वरद् हस्त भी रख दिया।"

अक्षरातीत की मेहर की छाँव तले रहने वाले छत्रसाल जी को भला अब कोई कैसे हरा सकता था?

उस समय सेना के लोग यह कहने लगे कि यदि हमारी विजय हो जाये, तो हम मान लेंगे कि श्री प्राणनाथ जी निश्चित ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के स्वरूप हैं।

युद्ध में कदम -कदम पर श्री जी का आशीर्वाद दिखायी दे रहा था। शेर अफगन खान रात्रि को नाच-गान में मस्त था। अचानक ही छत्रसाल जी ने आक्रमण कर दिया। मुगल सेना सतर्क नहीं थी। वह नाच-गान एवं शराब में डूबी थी। बहुत से मुसलमान सैनिक मारे गए। अन्त में छत्रसाल जी का शेर अफगन से युद्ध हुआ। छत्रसाल जी के वार को फुर्ती से अफगन ने झुकते हुए बचा लिया, जिससे छत्रसाल जी लड़खड़ा गए। अब बारी अफगन खान की थी। जैसे ही उसने तलवार से प्रहार

करना चाहा, तलवार उसके हाथ से छूट गयी। अगले ही क्षण वह नीचे था और उसकी छाती पर थी छत्रसाल जी की तलवार।

अब शेर अफगन अपने प्राणों की भीख माँग रहा था। शेर अफगन बन्दी बना लिया गया। हजर्ने के रूप में काफी धन देकर वह मुक्त हो सका।

अफगन खान पर विजय पाने के बाद छत्रसाल जी ने अपने मन में विचारा कि श्री जी ने कहा था कि मैं पल – पल तुम्हारे साथ हूँ। यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। इसी कारण अफगन खान के हाथ से तलवार छूट गयी तथा मेरी विजय हुई। सेना के सभी लोगों ने भी यही माना कि अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की कृपा के फलस्वरूप ही हमारी विजय हुई है।

महाराजा छत्रसाल जी को जैसे ही तारतम्य ज्ञान मिला, उनके हृदय में विरह-वैराग्य की धारा बहने लगी। उनकी आत्मा जाग्रत हो गयी। उन्हें लगने लगा कि इस संसार का सारा व्यवहार झूठा है।

## (३८)

जब श्री प्राणनाथ जी मऊ से चलकर पन्ना जी आए, तो चोपड़े की हवेली में रहने वाली मँझली रानी ने उनके स्वरूप को पहचाना और सच्चे भाव से सेवा की। श्री तेज कुँवरि जी ने उन्हें तारतम्य ज्ञान का प्रकाश दिया।

महाराजा छत्रसाल मऊ से पन्ना जी उस समय आये, जब श्री जी स्नान करके भोजन के लिये तैयार थे। छत्रसाल जी ने श्री जी के दोनों चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। श्री प्राणनाथ जी के भोजन कर चुकने के पश्चात् प्रसादी के रूप में महाराज छत्रसाल जी तथा उनके साथ आये हुए अन्य चार व्यक्तियों— हिम्मत सिंह, पर्वत सिंह, देवकरण, तथा रूप सिंह— ने भी भोजन ग्रहण किया।

**सत्य का मेल कभी झूठ को अच्छा नहीं लगता,**

किन्तु सत्य की राह ही सुन्दर और कल्याणमयी होती है, जबकि झूठ की राह विनाश की खाड़ी में धकेल देती है।

महाराजा छत्रसाल जी का श्री जी पर समर्पित होना बलदीवान जैसे लोगों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने छत्रसाल जी को राह से भटकाने का बहुतेरा प्रयास किया, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली।

महाराजा छत्रसाल जी ने श्री जी की जिस समर्पण भावना से सेवा की है, उसे आज तक इस ब्रह्माण्ड में न तो कोई कर सका है और न ही भविष्य में कर सकेगा।

चौपड़े की हवेली में छत्रसाल जी ने श्री जी को विराजमान किया। इस कार्य में श्री जी के सुखपाल में उन्होंने स्वयं कन्धा लगाया।



महानता का आंकलन विनम्रता और दूसरों को सम्मान देने की भावना से होता है। आध्यात्मिक सफलता के लिये तो स्वयं को ताड़ मानने की प्रवृत्ति छोड़नी ही पड़ती है।

द्वार पर सुखपाल रखते ही छत्रसाल जी खुशी में कुछ पलों के लिये यह भूल ही गये कि इसके आगे क्या करना है? इतने में मझली रानी ने अपने दिल में अत्यधिक प्रेम भरकर अपनी साड़ी का पाँवड़ा बिछा दिया। छत्रसाल जी यह देखकर अचम्भित रह गये।

उन्होंने अपने लौकिक अधिकार का हवाला देते हुए कहा— "महारानी! आत्मिक रूप से तुम्हारा भी मेरे जितना अधिकार है, लेकिन लौकिक पति होने के नाते पहले मुझे पाँवड़ा बिछाने दो।"

यह कहते हुए महाराजा छत्रसाल जी ने रानी की साड़ी को उठा दिया और उसकी जगह अपनी पाग का पाँवड़ा बिछा दिया।

किन्तु, यह क्या? सिंहासन तक पाग पहुँच नहीं पायी। श्री जी ने रानी के उदास मुख की ओर देखा और साड़ी बिछाने का संकेत किया। इसके पहले रानी यही सोच रही थी कि यदि मेरे जीव ने भी पुरुष तन धारण किया होता, तो मुझे इस अधिकार से कोई भी वंचित नहीं कर सकता था।

श्री जी का संकेत पाते ही मझली रानी की आँखों से खुशी के आँसू निकल पड़े। उन्होंने पुनः अपनी साड़ी का पाँवड़ा बिछाया। श्री जी उस पर चलकर सिंहासन पर विराजमान हो गये।

महाराजा छत्रसाल जी ने कहा— "हे धाम धनी! परमधाम में आप युगल स्वरूप हैं, इसलिये मेरी प्रार्थना है कि इस दुनिया में भी आपके साथ श्री बाई जी विराजमान हों, ताकि मैं आप दोनों की आरती उतार सकूँ।"

श्री जी का संकेत पाकर श्री बाई जी जैसे ही श्री प्राणनाथ जी के बगल में विराजमान हुईं, महाराजा छत्रसाल जी की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने सबके बीच में यह घोषणा की—

"सिंहासन पर विराजमान ये युगल स्वरूप साक्षात् अक्षरातीत हैं। ये वही पूर्ण ब्रह्म हैं, जो अक्षर से भी परे हैं, जिनको शिव और सनकादिक खोजते रहते हैं। जो इन्हें अक्षरातीत का स्वरूप नहीं मानता, निश्चित रूप से वह जीव सृष्टि है। मेरा अब अपना कुछ भी नहीं है। मैंने

तो अपना शीश भी युगल स्वरूप के चरणों में न्योछावर कर दिया है। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी कृपा कीजिए।"

यह सुनकर श्री प्राणनाथ जी ने कहा— "मैंने बहुत से राजा, राणा, और बादशाहों को देखा है, लेकिन एक ब्रह्मसृष्टि जो समर्पण और प्रेम कर सकती है, वह जीवों से कदापि नहीं हो सकता। छत्रसाल! आज से मैं तुम्हें अपने हुक्म की शक्ति सौंपता हूँ।"

यह कहकर स्वयं श्री जी ने छत्रसाल जी के माथे पर तिलक कर दिया और महाराजा कह कर सम्बोधित किया। श्री जी का यह कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ, जब भविष्य में सबने छत्रसाल जी को महाराजा के रूप में माना।

इसी तरह महाराजा छत्रसाल जी ने कई बार अपने महल में श्री जी की पधरावनी की। एक तरफ सुखपाल में वे कन्धा देते थे, तो दूसरी तरफ महारानी। श्री जी और बाई जी को उन्होंने परमधाम के युगल स्वरूप के रूप में मानकर हीरे, मोतियों, तथा अन्य वस्त्र-आभूषणों से सजाया और उनकी सेवा की।

अपना तन, मन, और धन समर्पित करने के बाद भी वे हाथ जोड़कर खड़े रहते थे।

चाचा बलदीवान की संकुचित भावनाओं के कारण श्री जी ने छत्रसाल जी से कभी भी कुरआन पक्ष की चर्चा नहीं की थी।

लेकिन, एक दिन बंगला जी में श्री लालदास जी कुरआन पढ़ रहे थे तथा श्री जी उसके अर्थ कर रहे थे।

साथ में दो-चार सुन्दरसाथ भी बैठे थे। इसी बीच छत्रसाल जी आ गये। उन्होंने अपने मन में विचारा कि आज श्री जी के साथ कैसी वार्ता हो रही है?

लालदास जी को संकेत से बुलाकर जब यह बात पूछी तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि बिना श्री जी के हुक्म के मैं आपको कुछ भी बताने में असमर्थ हूँ। जब श्री लालदास जी ने यह बात श्री जी से पूछी तो उन्होंने छत्रसाल जी को बुलवाया।

श्री जी ने बताया कि कुरआन की बात, जो मैंने अब तक छिपाई थी, उसे मैं प्रकट करता हूँ। जिस प्रकार हिन्दू धर्मग्रन्थों में मुझे विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप कहा गया है, उसी प्रकार कुरान-हदीसों में भी मुझे आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां कहा गया है। कथानकों के माध्यम से अलग-अलग नामों से

मेरा, तुम्हारा, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र, तथा सुन्दरसाथ का वर्णन है।

यह बात सुनते ही महाराजा छत्रसाल जी को जोश आ गया और बोले- "हे धाम धनी! जब कुरआन में हमारे घर की बातें हैं, तो हम क्यों छिपावें? ये शरियती मुसलमान हमारा क्या कर लेंगे? अब मैं औरंगज़ेब का मुकाबला तलवार से करूँगा तथा उसे आपके चरणों में लाऊँगा। वेद-कतेब का एकीकरण करने वाले आपके इस अलौकिक ज्ञान को जो सच्चे हृदय से स्वीकार करेगा, उस पर मेरा तन, मन, तथा धन सभी कुछ कुर्बानि है।"

राजमहल में इस विषय में चारों ओर कानाफूसी सी होने लगी कि ये लोग हिन्दू होकर भी कुरआन क्यों पढ़ते हैं? इस विवाद को हल करने के लिये यह निर्णय किया

गया कि काजियों, मुल्लाओं, तथा पण्डितों को बुलाकर शास्त्रार्थ करवाया जाये, तब यह निर्णय होगा कि श्री प्राणनाथ जी की वास्तविक पहचान क्या है।

कुरआन पक्ष की ओर से महोबा के काजी अब्दुल रसूल को बुलाया गया। उसकी वार्ता श्री लालदास जी से हुई।

श्री लालदास जी ने कहा— "मैं आपसे कुरआन का एक प्रश्न पूछता हूँ। आपसे निवेदन है कि उत्तर केवल एक ही होना चाहिए।"

"यह तो तुम ऐसे कह रहे हो, जैसे कोई अनपढ़ कहता है। मुझसे कुरआन के सम्बन्ध में कोई भी नहीं जीत सकता है। मुझे सम्पूर्ण कुरआन कण्ठस्थ है।"

"आपके ज्ञान को देखकर डर लगता है। हम आपसे



केवल इतना ही पूछते हैं कि दुनिया की पैदाइश कितने प्रकार की है?"

"यदि मेरे कथन और कुरआन के कथन में अन्तर होगा, तो मैं हार मान लूंगा। कुरआन में पाँच तरह की पैदाइश लिखी है।"

तब लालदास जी ने कुरआन आगे रखकर कहा—  
"आप इसमें से खोजकर बताइए कि कहाँ लिखी है?"

काजी कुरआन के पारा पाँच, सात, दस, बीस, पच्चीस, और तीस में भटकता फिरा, लेकिन उसे प्रमाण नहीं मिल सका। तब श्री लालदास जी ने कुरआन के तीसरे पारे को दिखाया, जिसमें पाँचों तरह की पैदाइश का वर्णन है। काजी उसे पढ़कर चुप हो गया।

तब लालदास जी ने पूछा— "आप यह बताइये कि ये

पाँचों तरह की पैदाइश किस प्रकार की हैं तथा आप उसमें से किस तरह की पैदाइश में आते हैं?"

यह सुनते ही काजी घबड़ा गया। वह पाँचों तरह की पैदाइश की व्याख्या नहीं कर पा रहा था। वह यह भी नहीं बता सका कि इन पाँचों में उसका सम्बन्ध किससे है?

तब काजी ने हार मानकर श्री जी के चरणों में अपना शीश झुका दिया और कहा कि निश्चय ही ये श्री प्राणनाथ जी आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां हैं।

इस पर बलदीवान जी बोले— "कहीं तुम छत्रसाल जी को खुश करने के लिये तो ऐसा नहीं कह रहे हो। कुरआन सिर पर रखकर कहो, तो मैं मानूँगा।"

काजी ने कुरआन को अपने सिर पर रखकर कहा—

"यदि मैं झूठ बोलूँ, तो मेरा नाश हो जाये। अल्लाह तआला ने कियामत के समय में आने का जो वचन दिया था, अब वह समय आ गया है। ये वही खुद हकी स्वरूप आखरुल इमाम मुहम्मद महदी हैं।"

## (३९)

काजी अब्दुरसूल के कसम खा लेने पर बलदीवान को लगा कि सचमुच ही श्री प्राणनाथ जी कोई अलौकिक व्यक्तित्व हैं, लेकिन उनके हृदय से अभी सन्देह के बादल छँटे नहीं थे।

जब तक पण्डित लोग न कहें, तब तक कैसे यह माना जा सकता है कि श्री प्राणनाथ जी कोई मानव या देवता नहीं, बल्कि सर्वेश्वर हैं?

इसके निर्णय के लिये पण्डितों में से तीन शास्त्रार्थ महारथियों को चुना गया – "सुन्दर, वल्लभ, और बद्री।" इनमें से बद्री को सर्वोपरि विद्वान मानकर शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ।

श्री जी की ओर से स्वयं महाराजा छत्रसाल जी ने ही

मोर्चा सम्भाला। श्रीमद्भागवत् तथा ब्रह्म के धाम और स्वरूप से सम्बन्धित प्रश्नों को छत्रसाल जी ने पूछा।

बद्रीदास ने सावधानी से उन प्रश्नों को सुना और स्पष्ट कह दिया— "श्री कृष्ण की इन रहस्यमयी लीलाओं तथा परब्रह्म के धाम, स्वरूप, और लीला से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर यथार्थ रूप से परमात्मा ही जानते हैं।"

बद्रीदास की इस स्पष्टवादिता से छत्रसाल जी बहुत प्रसन्न हुए।

पूर्ण ज्ञानवान तो मात्र सच्चिदानन्द परब्रह्म ही हैं। अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर लेना ही ज्ञानी का लक्षण है। केवल विवाद करना और अपने को सर्वोपरि विद्वान समझना अज्ञानी की पहली पहचान है।

जब बद्री अपने घर गया, तो सभी पण्डितों ने पूछा—

"शास्त्रार्थ में क्या हुआ ? क्या तुम विजयी होकर लौटे हो?"

बद्रीदास ने उत्तर दिया— "छत्रसाल जी ने जिस तरह के प्रश्न पूछे थे, उनका उत्तर सच्चिदानन्द परमात्मा के सिवाय कोई भी नहीं जानता। यह बात मैंने स्पष्ट रूप से कह दी है।"

अब तो सारे पण्डित बरस पड़े— "तुम शास्त्रार्थ हार कर आये हो, इससे तो अच्छा था कि मर ही गये होते। अपनी हार के साथ-साथ तुमने हम सबकी नाक भी कटवा दी है। हार जाने पर इस संसार में कोई भी नहीं पूछता। अब हम लोग कुछ प्रश्न बना कर देते हैं, उन प्रश्नों का उत्तर तुम प्रातः जाकर पूछना।"

प्रातःकाल बद्रीदास ने बलदीवान से आग्रह किया—

"शास्त्रार्थ पुनः कराया जाये। मुझे कुछ प्रश्न पूछने हैं।"

जब पुनः शास्त्रार्थ शुरू हुआ, तो वे प्रश्न पूछे गये, जो पण्डितों ने बनाये थे। उनका कोई मूल नहीं था और उनमें सूक्ष्म ज्ञान भी नहीं था। छत्रसाल जी ने तुरन्त ही उन सबका उत्तर दे दिया।

बद्रीदास ने कहा— "पण्डितों ने मुझे जबरन भेजा है, अन्यथा मुझे तो कल ही सन्तुष्टि हो गयी थी।"

उस समय एक बात तो स्पष्ट हो ही गयी कि सुन्दर, वल्लभ, और बद्री भले ही चौदह विद्याओं में निपुण कहलाते हैं, लेकिन एक अद्वितीय ब्रह्म की इन्हें पहचान नहीं है।

निर्विवाद रूप से सबने यह स्वीकार कर लिया कि श्री प्राणनाथ जी ब्रह्म स्वरूप हैं, जिनकी कृपा दृष्टि से

महाराजा छत्रसाल जी ने सर्वश्रेष्ठ पण्डितों को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया है।

एक बार श्री जी और महाराजा छत्रसाल पन्ना नगर के बाहर एकान्त में धर्म चर्चा कर रहे थे कि अचानक ही शेर अफगन ने दूसरी बार आक्रमण कर दिया। उस समय छत्रसाल जी के सुरक्षाकर्मी बहुत थोड़े से थे।

अचानक इस हमले से महाराजा छत्रसाल घबरा गये। उन्होंने श्री जी से प्रार्थना की— "धाम धनी! यह अफगन खान अपनी दुष्टता नहीं छोड़ रहा है। इसका क्या हल है?"

श्री प्राणनाथ जी ने कहा— "आज विजय दशमी का पर्व है। आज के दिन ही रावण मारा गया था। इस आततायी की भी हार निश्चित है।"



तब श्री जी ने महाराजा छत्रसाल जी की तलवार को अपने हाथों में लेकर उस पर अपनी मेहर की नजर कर दी और उसे देते हुए कहा- "छत्ता! जब तक यह तलवार तुम्हारे पास रहेगी, तब तक कभी भी तुम्हारी हार नहीं होगी। तुम युद्ध में निश्चिन्त होकर जाओ।"

महाराजा छत्रसाल उस तलवार को लेकर युद्ध करने गये। उस दोधारी तलवार की चमक ऐसी अलौकिक थी कि हर मुगल सैनिक दूसरे मुगल सैनिक को छत्रसाल के ही रूप में देखने लगा। परिणाम, सारी मुगल सेना आपस में ही लड़ मरी। शाम तक घायल शेर अफगन के लिए भागने के सिवाय कोई भी चारा नहीं था।

जिस प्रकार मुहम्मद साहिब ने अली को "जुल्फिकार तलवार" दी थी, उसी प्रकार श्री जी ने छत्रसाल जी को ऐसी अलौकिक तलवार दी, जिससे संसार में उन्हें कोई

भी नहीं जीत सका।

महाराजा के सिवाय सबके मन में एक संशय बना रहता था कि पाँच हजार सुन्दरसाथ के प्रतिदिन के भोजन का खर्च कहाँ से आता है? ऐसा लगता है कि इनके पास लोहे से सोना बनाने वाली पारस मणि है, जिसके द्वारा भोजन, वस्त्र इत्यादि का सारा खर्च वहन किया जाता है।

एक दिन महाराजा छत्रसाल ने श्री जी से पूछा— "प्राणेश्वर! सबके मन में इस बात का वहम है कि इतने लोगों का खर्च कहाँ से आता है?"

श्री जी ने उत्तर दिया— "मेड़ता के राजाराम और झाँझन भाई ने पिछले लगभग ९ वर्षों से यह सारी सेवा ले रखी है।"

यह सुनकर छत्रसाल जी हतप्रभ रह गये। कुछ भी बोल नहीं सके। श्री जी के चरणों में प्रणाम करके चुपचाप अपने निवास में चले गये।

एकान्त में उन्होंने अपने को शोक सागर में डुबो लिया। वे सोचने लगे— "छत्ता! जिनको ध्यान में खोजते-खोजते सभी योगेश्वर थक गये, लेकिन वे किसी को मिले नहीं। वे तुम्हारे यहाँ गत तीन वर्षों से रह रहे हैं, तूने सेवा की कोई व्यवस्था की ही नहीं। उनका खर्च बाहर से आ रहा है। तुम्हारे इस जीवन को धिक्कार है। परमधाम में अक्षरातीत के सामने तू कौन सा मुँह लेकर खड़ा होगा? क्या तू झूठी प्रशंसा और शोभा लेने के लिये ही पैदा हुआ है, सेवा के लिये नहीं?"

सोचते-सोचते उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। प्रातः से दोपहर तक अपने कक्ष के द्वार बन्द

करके रोते रहे। भोजन तैयार था, लेकिन महारानी में यह साहस ही नहीं था कि वे द्वार खुलवा सकें।

चाचा बलदीवान तक सूचना भिजवायी गयी। महारानी ने व्यथित स्वरों में बताया – "प्रातः से अब तक महाराज ने द्वार खोला ही नहीं है। केवल आप ही जाकर उनको उठा सकते हैं।"

बलदीवान महारानी को सान्त्वना देकर महाराज के कक्ष की ओर चल पड़े। कक्ष के बाहर से उन्होंने आवज दी – "छत्ता! छत्ता! द्वार खोलो।"

छत्रसाल जी ने द्वार खोला। विचित्र दृश्य था। रोते-रोते छत्रसाल जी की आँखे सूजी हुई थीं। इस दृश्य को सहन करने का सामर्थ्य बलदीवान में भी नहीं था। रूँद्वे गले से छत्रसाल जी के कन्धे पर अपने हाथ रखते हुए वे

बोले- "छत्ता! भ्राता श्री चम्पतराय के देहान्त के बाद मैंने तुझे कभी रोने नहीं दिया। तेरे आँसुओं को देखने की शक्ति मेरे पास नहीं है। जो तू कहेगा, मैं उसे अवश्य करूँगा। बता, तू क्या चाहता है?"

छत्रसाल बोले- "तात श्री! राजमहल के सभी लोगों में यह बात फैली हुई है कि श्रीजी के पास पारस मणि है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण सुन्दरसाथ का खर्च चलता है। वास्तविकता यह है कि यह सारा खर्च मेड़ता के सुन्दरसाथ देते हैं। हमारे यहाँ श्री जी तीन साल से विराजमान हैं, लेकिन हमने कोई भी सेवा नहीं की।"

बलदीवान ने कहा- "छत्ता! तेरी भुजाओं की शक्ति तो कहीं नहीं चली गयी। सम्पूर्ण भारत तुम्हारी वीरता का लोहा मानता है। स्वयं श्री जी तुम्हारे ऊपर मेहरबान हैं। फिर, तू चिन्ता किस बात की करता है? तू सेना लेकर

निकल। राजाओं और जागीरदारों से कह दो कि वे औरंगज़ेब को कर देना बन्द करें और तुम्हें देवें। इससे जो धनराशि आयेगी, उसका चौथा हिस्सा सुन्दरसाथ की सेवा में लगा देना। इससे दोनों लाभ होंगे। एक तो राज्य भी बढ़ेगा, दूसरा सुन्दरसाथ की सेवा भी होगी।"

छत्रसाल जी बोले— "तात श्री! यह बहुत ही अच्छा विचार है, लेकिन इसे लिखित रूप में दीजिए, ताकि भविष्य में कभी सेवा में व्यवधान न हो।"

इसके पश्चात् महाराजा छत्रसाल जी सायंकाल श्री जी की सेवा में आये। उन्होंने प्रार्थना की— "हे धाम धनी! मैं सम्पूर्ण सुन्दरसाथ की सेवा करना चाहता हूँ। मेरी यही इच्छा है कि श्री राजाराम और झाँझन भाई भी सपरिवार यहाँ आ जायें तथा आपके चरणों की सान्निध्यता का आनन्द लें।"

श्री जी ने कहा- "तुम प्रातःकाल अपना घोड़ा लेकर आना, कुछ अति आवश्यक कार्य है।"

"जो आज्ञा" कहकर छत्रसाल जी चले गये। अगले दिन निश्चित समय पर अपने प्रिय घोड़े "भले भाई" के साथ उपस्थित हुए।

श्री जी ने कहा- "छत्ता! मेरा आदेश है कि तुम अपने घोड़े पर सवार होकर सूर्यास्त से पहले ही जहाँ तक घोड़ा दौड़ा सकते हो, दौड़ाओ। पुनः मेरे पास आओ।"

श्री जी के आदेश के अनुसार छत्रसाल जी का घोड़ा दिन भर दौड़ता रहा। शाम को वे श्री प्राणनाथ जी के समक्ष उपस्थित हुए। श्री जी ने मुस्काराते हुए कहा- "छत्ता! तेरा घोड़ा आज जितनी धरती तक दौड़ आया

है, वहाँ तक की धरती हीरा उगलती रहेगी, लेकिन यह हीरा तभी तक पूर्ण रूप से निकलेगा, जब तक तुम्हारे वंशज एक अक्षरातीत पर निष्ठा रखेंगे।"

छत्रसाल जी बोले- "धाम धनी! यह तो मेरी सेवा नहीं हुई। मेरी प्रार्थना है कि मैं सेना सजाऊँ। आपको हाथी पर सर्वेश्वर के रूप में बैठाऊँ तथा मैं स्वयं सेनापति के रूप में चलूँ। राज्यों पर हमले करूँ तथा वहाँ के पण्डितों और मौलवियों से आपका शास्त्रार्थ कराऊँ। उनसे लिखित भी ले लूँ कि आप ही श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध तथा आखरूल इमाम मुहम्मद महदी हैं। हारे हुए राजाओं से मैं कर वसूलूँ तथा उसका चौथाई भाग सुन्दरसाथ की सेवा में खर्च करूँ।"

श्री प्राणनाथ जी की स्वीकृति मिल जाने पर महाराजा छत्रसाल जी ने सेना तैयार की और स्वयं



सेनापति बने। स्वयं श्री जी हाथी पर सवार थे। राठ, खड़ोत, जलालपुर, तथा कालपी पर उन्होंने चढ़ाई की।

यहाँ पर काजियों तथा मुल्लाओं को एकत्रित किया। उनसे श्री जी की कुरआन-हदीसों पर चर्चा करवायी गयी। उन्होंने हार मानकर लिखित में दे दिया कि ये श्री प्राणनाथ जी ही आखरूल इमाम मुहम्मद महदी हैं।

जब बादशाह के पास कालपी के मौलवियों का लिखा हुआ पत्र पहुँचा तो उसने सिर नीचा कर लिया, लेकिन उसके अहंकार ने उसे श्री जी के चरणों में नहीं आने दिया।

जब से, दिल्ली में श्री जी का सन्देश लेकर गए हुए सुन्दरसाथ को यातना दी गयी, तभी से उसका पतन प्रारम्भ हो गया। दिन-प्रतिदिन उसकी फौज तथा

खजाने में कमी आती गई। औरंगज़ेब के देह-त्याग के समय तक खजाना बिल्कुल खाली हो गया था।

औरंगज़ेब ने बुन्देलखण्ड पर सबसे अधिक आक्रमण किया। उसने दर्जनों बड़े-बड़े सेनापतियों को बड़ी-बड़ी सेनाओं के साथ भेजा, लेकिन जिस प्रकार सूखी घास अग्नि में जलकर राख हो जाती है, वैसे ही सभी मुगल सेनापतियों तथा उनके सैनिकों का हाल हुआ। स्थिति यह बन गयी कि बड़ा से बड़ा सेनापति भी छत्रसाल से युद्ध टल जाने पर खुश होता था और खुदा को धन्यवाद देता था।

फिदाई खान पचहत्तर हजार फौज लेकर आया था, वह हारकर भाग गया। मुहम्मद हाशिम खान से चार बार लड़ाई हुई। सभी में वह हार कर भागा। रणदुल्लाह खान ९५ हजार की फौज लेकर आया, जिसे हार खानी पड़ी।

इसी प्रकार खान दिलावर, दाराब खान, तहब्बर खान, लतीफ खान, अब्दुल समद, मिर्जा सदरुद्दीन, हामिद खान, बहलोल खान, शेख अनवर, मुहम्मद अफजल, शमशेर खान आदि बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर आए, किन्तु या तो वे हारकर भाग गये या बन्दी बनाये गए या मृत्यु का वरण किए।

महाराजा छत्रसाल जी ने लगभग २५२ लड़ाइयाँ लड़ीं, जिसमें ५२ प्रमुख थीं। श्री जी का वरद हस्त इस प्रकार था कि किसी में भी पराजय नहीं हुई।

एक दिन औरंगज़ेब ने अपने सभी पुत्रों को बुलाया और कहा कि तुम कभी भी छत्रसाल पर आक्रमण नहीं करना। पुत्रों ने पूछा कि इसका क्या कारण है ? क्या उनके पास हमसे अधिक सेना है या अधिक धन है ?

औरंगज़ेब ने कहा— "यह बात नहीं है। छत्रसाल के पास खुदाई ताकत है। छत्रसाल आखरूल इमाम मुहम्मद महदी की सेवा में हैं। इसलिए उनसे कोई भी नहीं जीत सकता।"

जीवन के अन्तिम समय में भी औरंगज़ेब ने पत्र द्वारा अपने पुत्रों को सावधान किया तथा अपनी भूलों का पश्चाताप किया।

## औरंगज़ेब का आजम के नाम अन्तिम पत्र—

औरंगज़ेब का इतिहास

यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित

भाग ५ पृष्ठ २९०

"अल्लाह तुम्हें शान्ति बरख्शे,

मेरा बुढ़ापा आ गया है और कमजोरी निरन्तर बढ़

रही है। मेरे पुष्टों में ताकत नहीं रही। मैं अकेला आया था और अकेला ही जा रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ और मैं क्या करता रहा हूँ?

आत्म-संयम के दिनों के अलावा जो मेरी जिन्दगी के दिन गुजरे हैं, उनके लिए मुझे खेद और पछतावा है। मैंने राज्य को कतई सच्ची और पालन-पोषण करने वाली सरकार नहीं दी।

मेरा अमूल्य जीवन व्यर्थ में ही चला गया। मेरे घर "मालिक" (मुहम्मद इमाम महदी) आये थे, परन्तु मेरी अन्धी आँखें उनका तेज और प्रताप (नूर) नहीं देख सकी। जीवन का अन्त नहीं होता। उन वाक्यों का कोई अवशेष नहीं है। वे अब नहीं हैं और न ही भविष्य में कोई आशा है।

मेरे वे सभी सिपाही मेरी तरह से असहाय, व्याकुल, और घबराये हुए हैं, जिन्होंने मेरे मालिक (मुहम्मद इमाम महदी) को पीठ दी। मैं अब आशंका तथा कम्पन की स्थिति में हूँ, जैसे पिघलती हुई चाँदी।

मैंने कभी सोचा ही नहीं कि कभी मेरा परवरदिगार मेरे साथ था। मैं दुनिया में अपने साथ कुछ लेकर नहीं आया और अपने किये हुए पापों का प्रतिफल उठाकर जा रहा हूँ। मुझे नहीं मालूम कि मुझे क्या सजा भोगनी होगी? यद्यपि मुझे उस खुदा की महानता और मेहर की आशा है, वरना मेरे कर्म और मेरी महत्वाकाक्षाएँ मुझे नहीं बख्शेंगी। जब मैं अपने आप से ही जुदा हो रहा हूँ तो मुझे कौन बक्शेगा।

अलविदा अलविदा अलविदा"

(४०)

बदरुन्निसा, आलमगीर औरंगज़ेब की लाडली बेटी, जिसकी सुन्दरता और सौम्यता पर चाँद की चाँदनी भी नतमस्तक थी।

अपने हृदय में उसने जिस आराध्य को बैठाया, वह थे सागर के सौभाग्यशाली राजकुमार दलपति राय। उनसे मिलने की तमन्ना में उसने दिल्ली के शाही महलों को छोड़ दिया और बुन्देलखण्ड चली आयी।

उसका प्रेम गंगा की धारा के समान पवित्र था। वहाँ वह पुरुष वेश में रहने लगी, क्योंकि दलपति राय का प्रण था कि जब तक बुन्देलखण्ड स्वतन्त्र नहीं होगा, तब तक वे गृहस्थ जीवन को स्वीकार नहीं करेंगे।

बुन्देलखण्ड की स्वतन्त्रता का युद्ध चम्पत राय जी

ने प्रारम्भ किया था और अब उसका बोझ श्री छत्रसाल जी के कन्धों पर था। दलपति राय उनके परम सहयोगी थे। प्रियतम प्राणनाथ जी की कृपा की छाँव तले सारा बुन्देलखण्ड स्वतन्त्रता का शंखनाद कर रहा था। औरंगज़ेब के भेजे हुए सभी सेनानायक या तो हारकर ही लौटते थे या वीर गति को प्राप्त होते थे। किन्तु , औरंगज़ेब कुछ भी सबक लेने के बदले कोई न कोई सेनानायक भेजता ही रहता था।

एक बार छत्रसाल जी की अनुपस्थिति में रणदुल्लाह खान श्री प्राणनाथ जी को कहीं एकान्त स्थान में पा गया। उसे विदित था कि प्राणनाथ जी की कृपा से ही छत्रसाल इतने शक्तिशाली बन गये हैं। उसने सोचा कि यदि प्राणनाथ जी को ही खत्म कर दिया जाये, तो सारा खेल खत्म हो सकता है।



इसी उद्देश्य से उसने श्री जी को सम्बोधित करते हुए कहा— "अब आपको इस दुनिया में रहने का अधिकार नहीं है।"

फिर अपने एक सिपाही को सम्बोधित करते हुए कहा— "कासिम! तुरन्त इनकी गर्दन उड़ा दो।"

कासिम ने फिर अपने पास खड़े सिपाही को हुक्म दिया— "हैदर खान! क्या देखते हो? चलाओ तलवार।"

हैदर खान ने अपने बगल में खड़े साथी से कहा— "क्या खड़े हो? एक ही झटके में उड़ा दो सिर।"

लेकिन, उस सिपाही ने टालमटोल करते हुए उत्तर दिया— "हुजूर! आपकी मौजूदगी में ऐसा करने की मेरी जुर्रत कहाँ? आप खुद ही 'बिस्मिल्लाह' कीजिए।"

इस प्रकार की आनाकानी को देखकर रणदुल्लाह

खान क्रोध से आग-बबूला हो गया। वह स्वयं नंगी तलवार लेकर आगे आया।

तभी, एक अति सुन्दर किशोर बहुत तेजी से आकर श्री प्राणनाथ जी के आगे खड़ा हो गया। इस सारी प्रक्रिया में अब तक श्री जी मन्द-मन्द मुस्कराते रहे थे। उस किशोर ने रणदुल्लाह को हुक्म दिया- "खबरदार जो तलवार चलायी! नीचे करो अपनी तलवार।"

रणदुल्लाह खान क्रोध से गुराया- "दूर हट जा, नादान लड़के! नहीं तो मेरी तलवार पहले तुम्हारा ही रक्तपान करेगी।"

यह बात सुनते ही वह सुन्दर किशोर जोर से खिलखिलाकर हँसने लगा। तत्पश्चात् उसने शीघ्रतापूर्वक अपनी पाग तथा ऊपरी वस्त्र उतार दिया।

यह क्या! पुरुष वेश हटते ही वह अति सुन्दर नवयौवना के रूप में दृष्टिगोचर होने लगी। उसने गर्जती हुई आवाज में कहा— "ओ शैतान के बच्चे! होश में आ। मेरा हुक्म है कि तू अभी अपने सिपाहियों को लेकर यहाँ से चला जा।"

अपने सामने शहजादी बदरुन्निसा को देखकर रणदुल्लाह खान सिर से पैर तक काँप उठा। वह आदाब बजाते हुए बोला— "शहजादी बदरुन्निसा! आप यहाँ?" इतने शब्द वह बहुत मुश्किल से लड़खड़ाते हुए बोल सका था।

"यदि तुझे जिन्दा रहना है, तो मेरे परवरदिगार हादी-ए-आजम श्री जी से माफी माँगनी पड़ेगी। इस तरह के दुष्कर्म करने में तुझे शर्म नहीं आती। तू इसी क्षण यहाँ से चला जा।"

रणदुल्लाह खान श्री प्राणनाथ जी के कदमों में झुकते हुए बोला – "हुजूर! मुझे माफ कर दीजिए।"

इसके पश्चात् शहजादी बदरुन्निसा को फिर से आदाब बजाते हुए अपने सिपाहियों के साथ वह चला गया।

सागर के राजकुमार दलपति राय और बदरुन्निसा के पवित्र प्रेम को देखते हुए श्री जी ने दोनों को विवाह – बन्धन में बाँध दिया।



काशी के अद्वितीय विद्वान भट्टाचार्य जी की विद्वता का डंका चारों ओर बज रहा था। कोई भी विद्वान उनके सामने ठहर नहीं पाता था। इतना कुछ होते हुए भी उनके हृदय में शान्ति नहीं थी। विद्वता का गर्व अवश्य उनके अन्दर हो गया था।

**श्रद्धा और प्रेम से रहित शाब्दिक ज्ञान हृदय में**

शुष्कता पैदा करता है। शुष्क हृदय वाला व्यक्ति अध्यात्म के चरम लक्ष्य तक कदापि नहीं पहुँच सकता।

अपने शुष्क ज्ञान के अहम् में वे स्वयं को अवतारी पुरुषों की श्रेणी में मानने लगे थे। उन्होंने अपनी पत्नी को आरती उतारने के लिए कहा।

उनकी पत्नी बोली— "जब तक आप पन्ना में विराजमान श्री प्राणनाथ जी को ज्ञान के क्षेत्र में नहीं हरा देंगे, तब तक मैं आपकी आरती नहीं उतारूँगी।"

गाड़ी पर ग्रन्थों का बोझ लादकर वे पन्ना के लिये चल पड़े। वे जैसे ही नगर में प्रवेश किए, सात-आठ साल की पाँच-छः बालिकायें, खेलते हुए गा रही थीं। भट्टाचार्य जी सावधान होकर उनका गायन सुनने लगे। उसका भाव यह था— "मैं उस समय की बात कहता हूँ,

जब न आदिनारायण (ईश्वर) थे और न मूल प्रकृति थी। उस समय केवल अक्षर और अक्षरातीत थे। अक्षर ब्रह्म की लीला सृष्टि करने की है और उनकी इच्छा को मूल प्रकृति कहते हैं।"

यह सुनकर भट्टाचार्य जी चौंक गये। उनका सारा ज्ञान तो नारायण और प्रकृति तक ही सीमित था। अक्षर से परे अक्षरातीत की उन्हें कोई भी खबर नहीं थी।

भट्टाचार्य जी के आगमन की बात जानकर श्री जी ने उन बालिकाओं के सिर पर अपना वरद् हस्त रख दिया था। भट्टाचार्य जी ने उन बालिकाओं की परीक्षा हेतु कई प्रश्न पूछे, जिनका यथोचित उत्तर उन्होंने दे दिया।

अब तो भट्टाचार्य जी का अहम् छू-मन्तर हो गया। उन्होंने सोचा कि जिनकी कृपा मात्र से ये छोटी-छोटी

बालिकायें भी मुझसे अधिक तत्वज्ञान रखती हैं, तो मुझे आत्म-कल्याण के लिये उन्हीं की शरण में जाना चाहिए।

बस, फिर क्या था? उन्होंने अपना तन-मन श्री जी के चरणों में सौंप दिया। उनके लिखे हुए संस्कृत ग्रन्थ "विद्वत दमनी" और "निगमार्थ दीपिका" हैं, जो उच्च स्तरीय विद्वता के भावों से भरपूर हैं।



श्री जी की ब्रह्मवाणी की अमृत धारा पन्ना जी में प्रवाहित हो रही थी। हजारों सुन्दरसाथ उस अखण्ड रस में डूबकर स्वयं को कृतार्थ मानते थे। उनके लिये संसार के सारे सुख नश्वर थे। महाराजा छत्रसाल जी राज्य-व्यवस्था सम्भालने के साथ-साथ आध्यात्मिक दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ थे।

उनका राज्य न्याय और धर्म का राज्य था। उनके हृदय में हिन्दू-मुस्लिम के लिये किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था। एक बार दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह की भतीजी के निकाह में छत्रसाल जी ने एक लाख रुपया अपने दोनों पुत्रों के हाथ से भिजवा दिया। मुहम्मद शाह का कथन था- "यदि महाराजा आते तो कोई जागीर ही दे देते।"

सभी सुन्दरसाथ श्री प्राणनाथ जी को पूर्ण ब्रह्म का स्वरूप मानते थे। जब श्री जी चर्चा करते थे, तो सुन्दरसाथ को बाह्य नेत्रों से ही परमधाम में विराजमान परब्रह्म के युगल स्वरूप के दर्शन होने लगते थे। सुन्दरसाथ के आनन्द की कोई सीमा नहीं थी।



लच्छी दास जी एक सन्त पुरुष थे, जिनके मन में



यह इच्छा थी कि मैं श्री प्राणनाथ जी का मन्दिर शुद्ध सोने की ईंटों से बनवाऊँ। उनके पास एक पारस मणि थी, जिससे सोना बनाने का काम भी उन्होंने शुरू कर दिया।

एक दिन शाम के समय वे टहलने हेतु श्री जी के साथ जा रहे थे। श्री जी ने उनसे पारस मणि माँगी और एक गहरे तालाब में फेंक दी। लच्छी दास जी को बुरा तो बहुत लगा, लेकिन वे कुछ भी बोले नहीं।

अगले दिन पुनः टहलने के लिये जाते समय श्री जी ने लच्छी दास जी से कहा— "लच्छी दास! जरा उस तालाब में जाकर देखो तो।"

लच्छी दास जी ने जाकर देखा तो उनको अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। सारा तालाब लाखों

पारस मणियों से भरा पड़ा था। उन्होंने सोचा, कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ। अपनी आँखें भी मलीं, लेकिन यह तो सपना नहीं, बल्कि वास्तविकता थी। उन्हें बोध हो गया कि श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में परब्रह्म की ही लीला हो रही है।

वापस आकर वे श्री जी के चरणों से लिपट गये –  
 "धाम धनी! मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं आपके स्वरूप को पहचान नहीं पाया था।"

श्री जी ने कहा – "लच्छी दास! तुम्हें यह नहीं मालूम है कि भविष्य में क्या-क्या होने वाला है। भविष्य में धार्मिक आस्था कम हो जायेगी। सोने का मन्दिर बना देने पर लोग उसकी ईंटें तक चोरी करके ले जाना शुरू कर देंगे। यहाँ उन मायावी लोगों की संख्या ज्यादा बढ़ जायेगी, जिनका उद्देश्य केवल दीवारों की सुन्दरता

देखना होता है। आध्यात्मिकता से जिनका स्वप्न में भी कोई सम्बन्ध नहीं होता, वे ही यहाँ पर भीड़ लगाये रहेंगे।

"तुम्हारे मन में अपनी सेवा के बदले अपने नाम की प्रसिद्धि की तृष्णा है, इसलिये मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि मेरे मन्दिर के दरवाजे पर तुम्हारे हाथ का कड़ा लगवा दिया जायेगा। जो भी उसे जल से धोकर उसका श्रद्धापूर्वक पान करेगा, उसके असाध्य रोग भी ठीक हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त यह कड़ा भावी घटनाओं की सूचना भी सांकेतिक रूप में दिया करेगा।"



दुःख की वह विशेष घड़ी आयी, जिसमें श्री बाई जी ने अपने पञ्चभौतिक तन का परित्याग कर दिया। सुन्दरसाथ के लिये यह असह्य कष्ट था। जब उनके

शरीर का दाह संस्कार किया गया, तो सुन्दरसाथ अपने को रोक न सके। न जाने कितने पुरुषों, स्त्रियों, और बच्चों ने स्वयं को उस जलती हुई चिता में झोंक दिया। इस घटना के बाद किसी भी विरक्त या आध्यात्मिक व्यक्तित्व वाले लोगों के दाह संस्कार पर रोक लगा दी गयी।

श्री बाई जी की आत्मा सुन्दरसाथ के इस कष्ट को सहन नहीं कर सकी। उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर सान्त्वना दिया कि मैं कहीं भी गयी नहीं हूँ। उनके दर्शन से सभी सुन्दरसाथ में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। जिस स्थान पर उन्होंने सुन्दरसाथ को प्रत्यक्ष दर्शन दिया था, आज भी उसी स्थान पर उनका मन्दिर है, जो सबकी अटूट श्रद्धा का केन्द्र है।



इस संसार में सात चिरंजीवी व्यक्ति हैं , जिनकी कभी भी मृत्यु नहीं होती। महाप्रलय तक अपने तन को रखने का उन्हें अधिकार है। वे व्यक्ति हैं – हनुमान, विभीषण, बलि, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और वेद व्यास।

यद्यपि योग द्वारा पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त करके योगाग्निमय शरीर प्राप्त कर लेने पर जरा और मृत्यु के ऊपर विजय पा ली जाती है, लेकिन अधिकतर महापुरुषों ने ऐसा नहीं किया , क्योंकि उन्हें अपने पञ्चभौतिक तन के प्रति मोह था ही नहीं।

सावन का महीना, कृष्ण पक्ष की तृतीया। श्री महामति जी उस दिन मौन धारण कर समाधिस्थ हो गये। उन्होंने कुछ भी भोजन नहीं किया था। उन्हें अपने जीवन का सर्वस्व मानने वाले सुन्दरसाथ, भला कैसे

भोजन कर सकते थे। सन्ध्या समय श्री जी का ध्यान टूटा। उन्होंने सब सुन्दरसाथ को बिना कुछ खाये-पीये उदास मन बैठे देखा। श्री जी ने सबको सान्त्वना दी और भोजन करने का निर्देश दिया।

सुन्दरसाथ अपने-अपने घर गये और जल्दी से हल्का आहार लेकर चले आये। इधर श्री जी समाधिस्थ हो गये थे। सुन्दरसाथ पुनः उदास मन से चुपचाप बैठ गये।

तृतीया की रात्रि जब बीत गयी और चतुर्थी के ब्रह्म मुहूर्त का प्रथम प्रहर था, उसमें दो घड़ी (४५ मिनट) जब बाकी थी, तो श्री जी बहुत ही गहन समाधि में चले गये। उनके हाथ-पैरों का थोड़ा भी हिलना-डुलना बन्द था। श्वास-प्रश्वास की गति बन्द होने जैसी थी।

सुन्दरसाथ इस स्थिति को सहन करने का अभ्यस्त नहीं था। परिणाम स्वरूप, यह बात फैल गई कि श्री जी का अन्तर्धान हो गया है। इस बात को जिसने जहाँ सुना, वहीं गिरा और तत्क्षण शरीर छोड़ दिया। बहुत से सुन्दरसाथ ने विरह की अग्नि में उसी दिन शरीर छोड़ दिया।

छत्रसाल जी को जैसे ही श्री जी की अन्तःप्रेरणा से यह सूचना मिली, वे तुरन्त ही अपने घोड़े "भले भाई" पर सवार होकर चल दिये। उस समय केन नदी में भयंकर बाढ़ आयी हुई थी। प्रियतम प्राणनाथ से मिलने की ज्वाला ने उन्हें अधीर कर दिया और उन्होंने घोड़े सहित केन नदी में छलाँग लगा दी। अत्यन्त तीव्र धारा में वे घोड़े सहित बहने लगे थे, किन्तु धनी की कृपा से किसी तरह सकुशल बाहर आये।

महाराजा छत्रसाल जी पन्ना आते हैं। चारों ओर उन्हें रोते-बिलखते सुन्दरसाथ दिखायी पड़ते हैं, तो कहीं पर धनी के वियोग में संसार छोड़े हुए ब्रह्ममुनियों के तन नजर आते हैं। बंगला जी दरबार में सिंहासन पर श्री जी की जगह श्रीमुखवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) को पधराया गया देखकर छत्रसाल जी मन ही मन काँप उठते हैं। श्री जी को अन्यत्र पधराया हुआ देखकर किसी अनिष्ट की आशंका से वे व्याकुल हो जाते हैं।

वे विरह में डूबकर अपने प्राणवल्लभ प्राणनाथ को पुकारते हैं। लेकिन जब श्री जी कुछ भी नहीं बोलते, तो छत्रसाल जी अपना अन्त करने के लिये ज्योंहि अपनी तलवार निकालते हैं, हँसते हुए श्री जी ने छत्रसाल जी का हाथ पकड़ लिया। बोले- "छत्ता! क्या तूने केवल मेरे तन को ही प्राणनाथ समझा। यह देख! केन नदी में जब



तुम्हारा घोड़ा डूब रहा था, तो मैंने ही उसे बचाया था। तुम्हारे घोड़े के पाँवों के निशान अब भी मेरी पीठ पर हैं।"

मैं तो अब गहन समाधि में जा रहा हूँ, लेकिन यह न समझ लेना कि मैं तुमसे अलग हो गया हूँ। मैं पल-पल हर सुन्दरसाथ के पास रहूँगा। देश-विदेश में जहाँ-जहाँ भी सुन्दरसाथ हैं, उनको परमधाम की तरफ ले चलना और ब्रह्मवाणी की ज्योति को फैलाना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है।"

*जिस विजयी तलवार से जीता, वीर बुन्देलों का भूखण्ड।*

*जिसकी तेज धार से काटे, कुटिल रिपु दल के नर मुण्ड॥*

*आज वही तलवार करेगी, मेरे भी जीवन का अंत।*

*रह सकता मैं नहीं एक छिन, जग में बिना तुम्हारे कन्त॥*

और कमर से फेंट खैंच ली, छत्रसाल ने भर आवेश।  
 उसी समय कुछ पलक प्रकम्पित, मुस्कराये श्री प्राणेश॥  
 कर अम्बुज से असि पकड़ कर, बोले बानी मधुर ललाम।  
 छत्रसाल मरने से पहले, जग में तो कुछ कर लो काम॥  
 बैठा है यह साथ तुम्हारा, जिसमें दोनों कुल परिवार।  
 बिखरे हुए देश देशों में, उनका करना तुम्हें विचार॥  
 ("मुक्ति पीठ" से)

इसके पश्चात् श्री जी पुनः समाधिस्थ हो गये और  
 उनके तन को गुम्मत जी मन्दिर में झूले पर पधराया  
 गया। यह झूला जमीन की सतह से काफी नीचे था।  
 ऊपर से सतह को ढक दिया गया था, तथा ऊपर भी

श्रीमुखवाणी को श्री प्राणनाथ जी का ज्ञानमय स्वरूप मानकर पधराया गया और सेवा-पूजा प्रारम्भ की गयी।

किन्तु, अभी भी सुन्दरसाथ की विरह-व्यथा नहीं जा पा रही थी। जिस तन के माध्यम से सुन्दरसाथ ने इस झूठी दुनिया में परमधाम का आनन्द पाया था, उस तन को अपनी आँखों से ओझल होते देखना किसी के भी लिये सह्य नहीं था।

इसलिए, श्री जी ने छत्रसाल जी, लालदास आदि विशिष्ट ब्रह्ममुनियों को प्रत्यक्ष दर्शन देकर जागनी का मार्गदर्शन करना प्रारम्भ किया। पूरे वर्ष भर यह लीला चलती रही। अचानक उसी गुप्त मार्ग से एक बुढ़िया भी चली गयी, जिसे अपनी बेटी के विवाह की चिन्ता थी। श्री जी ने उसे अपनी अँगूठी देकर आशीर्वाद दिया कि उसका विवाह हो जायेगा।

इस घटना के बाद श्री जी ने उस गुप्त मार्ग को बन्द करने का आदेश दे दिया, जिससे जाकर ब्रह्ममुनि श्री जी का दर्शन किया करते थे। अन्तर्धान लीला के बाद एक वर्ष तक दर्शन देने और वार्ता करने की जो लीला हुई, उसे समझना सामान्य लोगों के लिये सम्भव नहीं था। इसलिये तरह-तरह की उठती हुई बातें देखकर उसे बन्द कर देना ही उचित समझा गया।

दसवें द्वार में प्राणों को चढ़ाकर सामाधिस्थ हो जाने पर हृदय की धड़कन भी बन्द हो जाती है, श्वास-प्रश्वास की गति भी बन्द रहती है, किन्तु सिर गर्म रहता है। ऐसी अवस्था में वह भूख प्यास से रहित हो जाता है, किन्तु सामान्य व्यक्ति तो यही मानता है कि शरीर छूट गया।

माहेश्वर तन्त्रम् का कथन है कि भगवान शिव ने अक्षरातीत को जानने की इच्छा से जो समाधि लगायी,

वह पाँच हजार वर्षों के बाद टूटी थी। कुछ योगियों के मतानुसार भगवान शिव की समाधि बीस हजार वर्षों तक बनी रहती है।

अभी भी बड़े-बड़े योगी वर्षों तक समाधिस्थ रहते हैं। श्री जी भी उसी तरह समाधिस्थ हैं। उनके देह-त्याग की बातें करना सत्य को कलंकित करने का क्षुद्र प्रयास है और घोर अपराध भी।

जिनके हृदय में अटूट श्रद्धा है, विरह की रसधारा है, प्रेम की प्यास है, उनके लिये श्री प्राणनाथ जी आज भी वैसे ही हैं जैसे ३०० वर्ष पहले थे। आत्मा का प्रियतम न तो कभी अलग था, न है, और न कभी होगा। हाँ! जिनके अन्तःचक्षु बन्द हैं, श्रद्धा और आस्था है नहीं, उन शुष्क हृदय वाले जीवों के लिये अवश्य ही उनका धामगमन (देह त्याग) हो गया है।

शाश्वत प्रेम, शान्ति, और आनन्द के लिये श्री प्राणनाथ जी के चरणों में जाने के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

॥ इति पूर्णम् ॥



## गीत

ब्रह्मज्ञान का प्रकाश चाहिए,

अनुमान और कल्पनाओं पर आश्रित नहीं बल्कि  
यथार्थ सत्य ज्ञान,

जो सबकी आत्मा में सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान  
करा सके,

साक्षात्कार करा सके, वही शुभ ब्रह्मज्ञान है।

आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व,

गुजरात की धरती से एक अलौकिक व्यक्तित्व प्रकट  
होता है,

उसके हृदय में ब्रह्मज्ञान का अखण्ड भण्डार है,

मुखमण्डल पर दिव्य तेज है।

वह गाँव-गाँव, नगर-नगर घूम रहा है।

उसकी दिव्य वाणी से मन्त्रमुग्ध हुए साथ में हजारों  
व्यक्तियों का समूह चल रहा है,

जो अपना घर-बार हमेशा के लिए छोड़ चुके हैं।

वह सम्पूर्ण विश्व में ब्रह्मज्ञान की ज्योति जलाना चाहता  
है,

इसलिए नहीं कि उसे झूठा सम्मान मिले बल्कि,

वह सारी मानवता के अन्धकार को दूर कर परम सत्य  
का साक्षात्कार कराना चाहता है।

सबको प्रेम की शाश्वत डोर में बाँधना चाहता है और  
एक दिन,

उसका मिलन होता है उस नरवीर केशरी से,



जो समर्पण, श्रद्धा, और वीरता की प्रतिमूर्ति है।

छत्ता, अहो छत्ता!

यह अद्भुत मिलन रंग लाता है।

चारों ओर शान्ति का साम्राज्य छा जाता है।

ब्रह्मवाणी की गूँज सारे देश में सुनाई पड़ने लगती है।

महान आश्चर्य! जैसे तपती दोपहरी में भी शीतल और  
सुगन्धित हवा के झोंके।

